हिन्दी साहित्य में आदिवासी और दलित विमर्श

Course Code : B21HD02DE

Discipline Specific Elective Course
Undergraduate Programme
Hindi Language and Literature

Self Learning Material

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

The State University for Education, Training and Research in Blended Format, Kerala

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Vision

To increase access of potential learners of all categories to higher education, research and training, and ensure equity through delivery of high quality processes and outcomes fostering inclusive educational empowerment for social advancement.

Mission

To be benchmarked as a model for conservation and dissemination of knowledge and skill on blended and virtual mode in education, training and research for normal, continuing, and adult learners.

Pathway

Access and Quality define Equity.

हिन्दी साहित्य में आदिवासी और दलित विमर्श

Course Code: B21HD02DE

Semester - IV

Discipline Specific Elective Course
Undergraduate Programme
Hindi Language and Literature
Self Learning Material

SREENARAYANAGURU
OPEN UNIVERSITY

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

The State University for Education, Training and Research in Blended Format, Kerala

हिन्दी साहित्य में आदिवासी और दलित विमर्श

Course Code: B21HD02DE
Semester - IV

Discipline Specific Elective Course
BA Hindi Language and Literature

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from Sreenarayanaguru Open University. Printed and published on behalf of Sreenarayanaguru Open University by Registrar, SGOU, Kollam.

www.sgou.ac.in

ISBN 978-81-970238-0-4

DOCUMENTATION

Academic Committee

Dr. Jayachandran R.
Dr. P.G. Sasikala
Dr. R. Sethunath
Dr. B. Ashok
Dr. Pramod Kovvaprath
Dr. Jayakrishnan J.
Dr. Vijayakumar B.

Development of the content

Dr. Sophia Rajan, Dr. Sudha T., Krishna Preethi A.R., Dr. Kathika M.S., Dr. Indu G. Das.

Review

Content : Dr. N. Mohanan
Format : Dr. I.G. Shibi
Linguistics : Dr. N. Mohanan

Edit

Dr. N. Mohanan

Scrutiny

Dr. Sophia Rajan, Dr. Indu G. Das, Dr. Sudha T., Krishnapreethi A.R.

Co-ordination

Dr. I.G. Shibi and Team SLM

Design Control

Azeem Babu T.A.

Cover Design

Lisha S.

Production

July 2024

Copyright

© Sreenarayanaguru Open University 2024

YouTube

MESSAGE FROM VICE CHANCELLOR

Dear learner,

I extend my heartfelt greetings and profound enthusiasm as I warmly welcome you to Sreenarayanaguru Open University. Established in September 2020 as a state-led endeavour to promote higher education through open and distance learning modes, our institution was shaped by the guiding principle that access and quality are the cornerstones of equity. We have firmly resolved to uphold the highest standards of education, setting the benchmark and charting the course.

The courses offered by the Sreenarayanaguru Open University aim to strike a quality balance, ensuring students are equipped for both personal growth and professional excellence. The University embraces the widely acclaimed "blended format," a practical framework that harmoniously integrates Self-Learning Materials, Classroom Counseling, and Virtual modes, fostering a dynamic and enriching experience for both learners and instructors.

The university aims to offer you an engaging and thought-provoking educational journey. Major universities across the country typically employ a format that serves as the foundation for the UG programme in Hindi Language and Literature. Given Hindi's status as a widely spoken language throughout India, its pedagogy necessitates a particular focus on language skills and comprehension. To address this, the University has implemented an integrated curriculum that bridges linguistic and literary elements. The learner's priorities determine the endorsed proportion of these elements. Both the Self Learning Materials and virtual modules are designed to fulfil these requirements.

Rest assured, the university's student support services will be at your disposal throughout your academic journey, readily available to address any concerns or grievances you may encounter. We encourage you to reach out to us freely regarding any matter about your academic programme. It is our sincere wish that you achieve the utmost success.

Regards,
Dr. Jagathy Raj V. P.

01-07-2024

Contents

Block 1: दलित विमर्श 1

इकाई 1: दलित अस्मिता.. 2

इकाई 2: दलित आंदोलन 8

इकाई 3: दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र 18

इकाई 4: दलित साहित्य 23

Block 2: हिन्दी साहित्य में आदिवासी 29

इकाई 1: आदिवासी कौन 30

इकाई 2: भारत में आदिवासी समस्याएँ 35

इकाई 3: अस्मितामूलक विमर्श और आदिवासी 39

इकाई 4: आदिवासी आन्दोलन 44

Block 3: दलित साहित्य - आत्मकथा 49

इकाई 1: दलित आत्मकथा-सामान्य परिचय 50

इकाई 2: प्रमुख दलित आत्मकथाकार और उनकी आत्मकथाएँ 58

इकाई 3: अक्करमाशी - शरणकुमार लिंबाले 71

Block 4: दलित साहित्यः कहानियाँ 88

इकाई 1: 'सलाम'- ओमप्रकाश वाल्मीकि 89

इकाई 2: 'आवाज़ें' - मोहनदास नैमिशराय 95

इकाई 3: 'तलाश'- जयप्रकाश कर्दम 100

इकाई 4: 'दलित' - ब्राह्मण - सत्य प्रकाश 104

Block 5: दलित साहित्य : कविता 108

इकाई 1: सुनोब्राह्मण - कविता 109

इकाई 2: कबीर तुम ज़िन्दा हो! - बाल गंगाधर 'बागी' 116

इकाई 3: ठाकुर का कुआँ - ओमप्रकाश वाल्मीकि 121

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

इकाई 4: जाति की बू - असंगघोष 125

Block 6: आदिवासी साहित्य - कविता 130

इकाई 1: 'स्टेज' - वाहरू सोणवणे 131

इकाई 2: 'मैं ने अपने आंगन में गुलाब लगाई'- निर्मला पुतुल 137

Model Question Paper Sets 143

SGOU

BLOCK - 01

दलित विमर्श

SGOU

इकाई 1

दलित अस्मिता

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- 'दलित' शब्द के व्यापक अर्थबोध से परिचित कराना
- वर्ण व्यवस्था, जाति और अस्पृश्यता पर टिकी सामाजिक व्यवस्था के आयामों को समझा देना
- दलितों के उत्पीड़न से परिचित कराना
- हिन्दु धर्म व्यवस्था द्वारा विभिन्न नामों से अभिहित जैसे शूद्र, अन्त्यज, अछूत, हरिजन आदि नामों के बरक्स दलित अस्मिता से परिचित कराना
- भारतीय समाज व्यवस्था और ब्राह्मणवाद के वर्चस्व को परखना

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

भारत स्वतंत्र होने के बाद भारतीय समाज और मनुष्य के मन में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। शिक्षा और जनतंत्र का विचार समाज के अनेक भागों तक पहुँचा। अलग-अलग प्रदेशों में रहने वाले लोग, देहात और देहात के बाहर के दलित, यायावर और आदिवासी, शिक्षा के कारण जागृत होने लगे। शिक्षा का जनतांत्रिकरण प्रारंभ हुआ। समता, स्वतंत्रता और न्याय जैसे मानवीय मूल्यों का ज्ञान हो जाने के कारण समाज और व्यक्ति के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन तो हुआ, लेकिन विषम व्यवस्था और उसके विरुद्ध असंतोष के कारण, समाज के मन में वेदना और विद्रोह भी सुलग उठे। जन्म, जाति और वर्ण की विभेदात्मकता के आधार पर एक बड़े जन समूह को दीर्घकाल तक सामाजिक न्याय और मानवाधिकार से वंचित रखा गया। उन्नीसवीं सदी के भारतीय नवजागरण काल में सामाजिक,धार्मिक सुधार आन्दोलन चले। इसी दौरान भारतीय समाज की निम्न समझे जाने वाली जातियों से ऐसे विचारक उभरे, जो सुधार आन्दोलनों से असंतुष्ट थे। इन श्रेणियों से उभरे बुद्धिजीवियों का विचार है कि भारत के पिछड़ेपन और लंबी गुलामी का एकमात्र कारण छुआछूत पर आधारित जाति प्रथा रही है। भारत में हिन्दु धर्म प्रणीत समाज व्यवस्था इतनी जटिल है कि आज भी भारतीय समाज हज़ारों जातियों में बँटा हुआ है और यह बंटवारा असमानता और शोषण पर आधारित है। इस इकाई के माध्यम से सदियों से मानवीय अधिकारों से वंचित और तिरस्कृत भारतीय समाज के उस वर्ग की वेदना से आप परिचित होंगे जो आज भी वर्ण व्यवस्था और अस्पृश्यता का दंश झेल रहा है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

दलित चेतना, वर्ग चेतना, नीग्रो साहित्य, सर्वहारा, अनुसूचित जाति, वर्ण व्यवस्था, अस्मिता, अस्पृश्यता

Discussion / चर्चा

'दलित' शब्द व्यापक अर्थबोध की अभिव्यंजना देता है। यह शब्द 'सर्वहारा' शब्द का समानार्थी ज़रूर लगता है, लेकिन इन दोनों शब्दों में भेद है। 'दलित' शब्द और मार्क्स द्वारा प्रणीत 'सर्वहारा' शब्द में पर्याप्त भेद भी है।

'दलित' की व्याप्ति अधिक है, तो 'सर्वहारा' की सीमित। 'दलित' के अंतर्गत सामाजिक,धार्मिक,आर्थिक एवं राजनीतिक शोषण का अन्तर्भाव होता है, तो 'सर्वहारा' केवल आर्थिक शोषण तक ही सीमित है। सच तो यह है कि प्रत्येक 'दलित' व्यक्ति, 'सर्वहारा' के अंतर्गत आ सकता है, लेकिन प्रत्येक सर्वहारा दलित नहीं। ठीक उसी प्रकार 'दलित' और 'अमेरिकन नीग्रो' दोनों की व्यथा कथा में भी समानता है। 'दलित' बहिष्कृत भारत का नायक है तो 'नीग्रो' ब्लैक अमेरिका का नायक है। दोनों ही गुलाम हैं। नीग्रो श्वेत समाज की ओर से लूटा गया तो दलित सवर्ण समाज की ओर से। नीग्रो साहित्य ने दलित साहित्य और आंदोलन दोनों को आलोकित एवं आंदोलित किया।

वर्ण व्यवस्था का मूल स्रोत हिन्दु धर्म का प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद है। जिसमें चार वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र) की उत्पत्ति का वर्णन है। ब्राह्मण की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रीय उनकी भुजाओं से, वैश्य उनकी जंघाओं से तथा शूद्र की उत्पत्ति उनके पैरों से। कालांत्तर में ऋग्वेद का यह सिद्धांत व्यवहार में मज़बूत होता चला गया। हिन्दु धर्म में इसको शास्त्र का दर्जा प्राप्त हुआ। इसके माध्यम से वर्ण व्यवस्था के प्रावधानों को और अधिक विस्तार मिला। उल्लेखनीय है कि वर्णाश्रम व्यवस्था पुनर्जन्म और कर्मफल के तर्क पर आधारित है। इसके तर्कों के अनुसार पूर्व जन्म में किए गए कर्म के अनुसार ऊँची या नीची जातियों में जन्म होता है,यानी जाति व्यवस्था स्वयं ईश्वर का करिश्मा है।

जाति एक सामाजिक पदानुक्रम है जो लोगों को चार मुख्य समूहों में विभाजित करती है। पिरामिड के शीर्ष पर ब्राह्मण या पुजारी समूह हैं, जिन्हें हिंदू ग्रंथों में सबसे बुद्धिमान माना जाता है। ग्रंथों के अनुसार शिक्षा का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही है। उनके बाद क्षत्रिय या योद्धा कबीले हैं जो सेना में सेवा करते हैं और राजा हैं। तीसरी श्रेणी वैश्यों की है। उनका व्यवसाय मुख्य रूप से कृषि, पशुपालन, व्यापार और व्यावसायिक गतिविधियाँ हैं। जाति पदानुक्रम में सबसे निचले पायदान पर शूद्र हैं। उन्हें ही ऊँची जातियों की 'सेवा' करनी है। अंतिम समूह, जिसे ब्राह्मणवादी वर्ण व्यवस्था से बाहर रखा गया है, दलित या 'अछूत' हैं। इन्हें ही जाति पिरामिड का बोझ उठाना पड़ता है और ऊंची जातियाँ इन्हें गुलाम मानती हैं।

दलित साहित्य के स्वरूप एवं लक्ष्य पर विचार करने से पहले यह जानना ज़रूरी है कि आखिर 'दलित' कौन है?

1.1.1 'दलित' शब्द-अर्थ एवं परिभाषा

'दलित' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत धातु 'दल' से हुई है जिसका अर्थ 'फटना', 'खंडित होना', 'द्विधा होना' आदि है। कई विद्वानों का मानना है कि दलित मराठी के 'दलान' से आया है जिसका अर्थ है– दमित किया गया। संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में दलित का अर्थ 'विनष्ट किया हुआ', 'दबाया हुआ', 'रौंदा हुआ' दिया गया है। अंगेज़ी में इसका समानार्थी है– The Subaltern, The Depressed, The Oppressed. भवदेव पाण्डेय के अनुसार 'दलित' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग उन्नीसवीं सदी में आर्य समाज के 'दलितोद्धार' कार्यक्रम में किया गया था। 1919 में सरकारी भाषा में 'दलित वर्ग' सर्वग्राही बना। इसमें अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ तथा अन्य पिछड़े वर्ग के लोग शामिल हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी इन्हें प्यार से 'हरिजन' पुकारते थे। लेकिन 'दलितों के मसीहा' कहलाए जाने वाले बाबा साहब अम्बेडकर जी को 'दलित' शब्द ही मान्य था। आत्मसम्मान और आत्मविश्वासहीन, मनोबल की कमी, अपमान, शोषण, उत्पीडन और प्रताड़ना को जिसने अपनी नियति मान ली हो वही 'दलित' है।

स्पष्ट है कि 'दलित' शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयोग किया जाता है जो समाज-व्यवस्था के तहत सबसे निचले पायदान पर है। वर्ण-व्यवस्था ने जिसे अछूत या अन्त्यज की श्रेणी में रखा, उसका दलन हुआ, शोषण हुआ उस समूह को ही भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति (Scheduled Caste) कहा गया है जो जन्मना अछूत है।

1.1.2 'दलित' कौन?

आखिर दलित कौन है? डॉ. अम्बेडकर के अनुसार -दलित जातियाँ वे हैं जो अपवित्रकारी होती हैं। इनमें निम्न श्रेणी के कारीगर, धोबी, मोची, भंगी, बसौर, सेवक जातियाँ जैसे चमार, डंगारी, सउरी, ढोला आते हैं। 'दलित' केवल-हरिजन और नवबौद्ध नहीं। गाँव की सीमा के बाहर रहने वाली सभी अछूत जातियाँ, आदिवासी, भूमिहीन, खेत मज़दूर, श्रमिक, कष्टकारी जनता और यायावर जातियाँ सभी की सभी 'दलित' शब्द की परिभाषा में आती हैं। 'दलित' शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयोग किया जाता है- जो समाज व्यवस्था के तहत सबसे निचले पायदान पर

है। वर्ण-व्यवस्था ने जिसे अछूत या अन्त्यज की श्रेणी में रखा, जिसका दलन हुआ, शोषण हुआ, और संविधान में जिसे अनुसूचित जाति कहा गया है।

Manifesto of Dalit Panthers (1972) read—Who all are Dalits?

'All Scheduled Castes and Scheduled Tribes, Neo Buddhists, labourers, landless and destitute peasants, woman and all those who have been exploited politically and economically and in the name of religion are 'Dalits'.

उपर्युक्त व्याख्याओं के आधार पर कहा जा सकता है कि विभिन्न समय में अस्पृश्य, शूद्र, दास, हरिजन, अछूत, बहिष्कृत, डिप्रेस्ड क्लासेज आदि शब्दों का प्रयोग 'दलित' शब्द के विभिन्न अर्थों में होता रहा है जो मूलतः दलित शब्द और स्वरूप के परिचायक हैं। 'दलित' उसे ही मानना अच्छा रहेगा जो कि सामाजिक व्यवस्था में सदियों से मनुवादियों के शिकार बने हैं, सामाजिक सहूलियत से पिछड़ चुके हैं, जिस कारण इन लोगों की आर्थिक स्थिति दुष्कर है, जिन्हें समाज में सम्मान योग्य जीने का अधिकार प्राप्त नहीं था, ऐसे लोगों को ही दलित कहा जाए।

उपर्युक्त व्याख्याओं के मुताबिक जिन्होंने अस्पृश्यता को झेला है, वे दलित हैं। वैसे तो समाज में कई प्रकार के उत्पीड़न हैं लेकिन जिन्होंने हिन्दु अस्पृश्यता और उत्पीड़न झेला है, वे ही दलित हैं। जिसमें अनुसूचित जाति और जनजाति दोनों शामिल हैं।

1.1.3 अस्मितामूलक विमर्श

अस्मिता (Identity) एक ऐसा दायरा है जिसके तहत व्यक्ति एवं समुदाय यह बताते हैं कि वे खुद को क्या समझते हैं। अपनी अस्मिता या स्व की पहचान को लेकर वैसे तो मानव समाज में बहुत पहले से चर्चा होती रही है परंतु अस्मिता संबंधी विमर्शों के जन्म का सीधा संबंध यूरोप के पुनर्जागरण (Renaissance) या नवजागरण के फलस्वरूप उत्पन्न हुई आधुनिकता से जोड़ा जा सकता है। पुनर्जागरण ने धर्म के स्थान पर तर्क को वरीयता दी और पुरानी धार्मिक मान्यताएँ ध्वस्त हुईं। लोगों ने अपने शोषण और पीड़ा के कारणों को धार्मिक ग्रंथों की जगह इतिहास और स्मृति के आईने में देखना शुरु किया। यूरोप में पुनर्जागरण के कारण जो आधुनिक चेतना पैदा हुई, उसके कारण स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के नारे उठने लगे। इसी के फलस्वरूप मार्क्सवाद, नारीवाद, अश्वेत आंदोलन जैसे कई विचारधाराओं की नींव तैयार हुई। साठ के दशक में यूरोपीय देशों में नव सामाजिक आंदोलन के तहत नए तरह के विचारकों और विचारों को प्रतिष्ठा मिली। खासकर उत्तर-संरचनावादी(Post Structuralist) विचारों के प्रवृत्तक मिशेल फूको और विखंडनवाद(Deconstruction) के पुरस्कर्ता देरिदा का नाम अस्मिता विमर्श(Identity Discourse) की सैद्धांतिकी से जोड़ा जाता है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखें तो ज्योतिबा फुले, बाबा अम्बेडकर और पेरियार ने हिन्दु धर्म में अभिव्यक्त पुनर्जन्म एवं कर्मफल के सिद्धांतों को चुनौती दी। मनुस्मृति पर आधारित वर्णाश्रम एवं जाति व्यवस्था के सिद्धांतों को अपने तर्कों से ध्वस्त किया। इन्होंने अब तक अछूत समझी जाने वाली जातियों को एक अस्मिता के सूत्र में बांधने का प्रयास किया। अतः कहा जा सकता है कि व्यक्तिगत या सामुदायिक अस्मिता के बोध को जागृत करने के लिए किया गया विमर्श ही अस्मिता विमर्श है। अस्मिता जब संकट में होती है, तभी विमर्शों की स्थिति उत्पन्न होती है। उपेक्षित वर्ग को अपनी पहचान को बनाए रखने और अपने दमित- वंचित होने के अनुभव से ऊपर उठने के लिए विमर्श की आवश्यकता पड़ती है। इस विमर्श के द्वारा ही उपेक्षित वर्ग समाज की मुख्यधारा में अपना स्थान बनाने का प्रयास करता है।

हिन्दी में 'विमर्श' शब्द का प्रयोग अंग्रेज़ी के डिस्कोर्स (Discourse) शब्द के लिए किया जाता है। अंग्रेज़ी में Discourse शब्द का प्रयोग लिखित या वाचिक संप्रेषण या बहस के लिए किया जाता है। इसे हम वाद-विवाद और संवाद भी कह सकते हैं। इस प्रकार के वाद-संवाद से ही किसी तर्क संगत निष्कर्ष या निर्णय पर पहुँचा जा सकता है। तात्पर्य यह है कि विमर्श शब्द जागरूकता का परिचायक है और बिना जागरूकता के अस्मिता बोध संभव नहीं है। अस्मिताओं ने अपनी दावेदारी की अभिव्यक्ति के लिए साहित्य को महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया। इसके चलते ही दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य, स्त्री साहित्य की नयी कोटियाँ सामने आईं। अस्मिता विमर्श के साहित्यिक हस्तक्षेप का बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू अतीत की पुनर्व्याख्या है। यहाँ तक कि आत्मकथा को अभिव्यक्ति का प्रधान रूप बनाकर

इन विमर्शों ने ज्ञान और अनुभव के चले आ रहे पुराने बहस में नए सिरे से हस्तक्षेप किया। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अस्मितामूलक विमर्श विभिन्न विचारधाराओं का योगदान है। इन विचारधाराओं ने विभिन्न प्रकार की अस्मिताओं को उभारने, उन्हें स्वर और पहचान देने का कार्य किया है।

1.1.3.1 दलित अस्मिता

'दलित' अस्मिता बोधक शब्द है। यह संबोधन उत्पीड़न और शोषण का बोध भी कराता है। शोषक वर्ग के कृत्यों को याद दिलाते रहने वाला क्रांतिकारी भाव भी इस शब्द में निहित है। इसमें चेतना की अनुगूँज भी है। अस्मिता का अर्थ है- अपनी सत्ता का भाव। या कहें अस्मिता का सीधा संबंध पहचान है। अस्मिता बोध जितना व्यक्तिगत हो सकता है उतना ही सामूहिक भी। अस्मिता व्यक्ति की निजी पहचान के साथ-साथ उस क्षेत्र और समाज की पहचान भी है जो उस व्यक्ति के संदर्भ तय करते हैं। ये संदर्भ जाति, रंग, वर्ग, भाषा, नस्ल, जेंडर इत्यादि कुछ भी हो सकता है। अस्मिताबोध की आवश्यकता तब पड़ती है जब हमारी पहचान पर खतरा हो। तात्पर्य यह है कि अगर किसी व्यक्ति या समुदाय के जाति, धर्म, कुल, वंश, भाषा आदि पहचानों को मिटाने या हीन साबित करने की कोशिश की जाती है तब वह व्यक्ति या समुदाय इन पहचानों को बचाने की चेष्टा करता है। और यह चेष्टा आंदोलन, साहित्य, विचारधारा, कला आदि अनेक रूपों में अभिव्यक्त होती है। दलित अस्मिता की शुरुआत व्यक्तिगत या सामुदायिक तौर पर अपने वंचित, पीड़ित और प्रताड़ित होने के एहसास से ही होती है। इसमें अपनी पहचान प्राप्त करना ही सबसे बड़ा उद्देश्य हो जाता है।

'दलित' शब्द का अर्थ नकारात्मक भले प्रतीत हो, लेकिन दलित संस्कृति कर्मियों ने इसे सकारात्मक अर्थ में स्वीकार किया है। जिस नाम पर हमेशा शोषण होता रहा, उसी नाम को वे अपना हथियार बना रहे हैं। इस तरह दलित शब्द शोषण के विरूद्ध आक्रोश, प्रतिकार और संघर्ष का प्रतीक है। अस्मिता प्राप्ति के लिए किए गए संघर्ष व्यक्ति और समुदाय को जागरूक बनाते हैं। दलित अस्मिता की सैद्धांतिकी में स्त्री व पुरुष का कोई भेद तो नहीं, लेकिन व्यावहारिक स्तर पर दलित स्त्रीयाँ प्रायः छूट ही जाती हैं। इसका एक कारण तो यह है कि वे पुरुषों की अपेक्षा कई अधिक शोषण का शिकार हैं, दूसरे यह कि दलित पुरुष भी आखिरकार पुरुष ही हैं, वह भी सामान्य पुरुष की दुष्प्रवृत्तियों से मुक्त नहीं हो सका है। तो दलित समाज में भी वर्चस्व पुरुषों का ही है।

1.1.3.2 दलित चेतना

दलित चेतना का सीधा सरोकार "मैं कौन हूँ ?" से बहुत गहरे तक जुड़ा हुआ है। चेतना (Consciousness) स्वयं के और अपने आस-पास के वातावरण के तत्वों का बोध होने, उन्हें समझने तथा उनकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है। चेतना मनुष्य की वह विशेषता है जो उसे जीवित रखती है और जो उसे व्यक्तिगत विषय में तथा अपने वातावरण के विषय में ज्ञान कराती है। इसी ज्ञान को विचार शक्ति कहा जाता है। चेतना का संबंध दृष्टि से होता है। मानव अधिकारों से वंचित सामाजिक तौर पर नकार दिया जाना यानी दलित होना है। उसके अस्तित्व और अस्मिता की लड़ाई यानी चेतना ही दलित चेतना है जो दलित आंदोलनों के एक लंबे इतिहास की देन है। दलित चेतना दलितों की सांस्कृतिक ऐतिहासिक और सामाजिक भूमिका के तिलस्म को तोड़ती है।

1.1.3.3 दलित विमर्श

'दलित विमर्श' वर्तमान समय की आलोचना दृष्टियों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह शुद्ध साहित्यिक सिद्धांत नहीं है। इस सिद्धांत का सम्बन्ध दलित समाज के सामाजिक संघर्ष और आंदोलन से जुड़ा हुआ है। साहित्य की दलित दृष्टि की समझ बनाने के लिए भारतीय समाज में दलितों की स्थिति को समझना ज़रूरी है; उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि जानना ज़रूरी है। भारतीय साहित्य में इसकी शुरुआत मराठी से हुई। इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला यह कि महाराष्ट्र में दलितों का शोषण चरम पर था। दूसरा महत्वपूर्ण कारण महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले और सावित्री फुले का कार्यक्षेत्र रहा। 'दलितों के मसीहा' बाबा साहब अंबेडकर भी महाराष्ट्र से ही जुड़े हुए थे।

दलित विमर्शकार मानते हैं कि हज़ारों वर्ष तक भारतीय समाज ने उनको अमानवीय जीवन जीने को मजबूर किया था। उनका मानना था कि हिन्दू धर्म एक तरफ कहता है कि सब भगवान की संतानें हैं। दूसरी ओर सामाजिक व्यवहार में उनसे दूरी बनाए रखते हैं। इस सामाजिक बनावट के लिए मिथक गढ़े जाते हैं। इन मिथकों में दलित जीवन को बांध दिया जाता है। उनसे कहा जाता है कि वे

अपने कर्मों का फल भुगत रहे हैं। इस जन्म में कुछ गलत नहीं करेंगे तो उनका अगला जन्म सफल होगा। ये मिथक भारतीय समाज में रूढ़ी बन चुके हैं। भारत में दलितों ने अपनी दास्ताँ को अपनी नियति मानकर स्वीकार कर लिया था। कई पीढ़ियों से होता हुआ यह संस्कार उनके स्वभाव का हिस्सा बन गया था। उनके भीतर की विद्रोही चेतना खत्म हो गई थी। दलित लेखन इस सोई हुई चेतना को जगाती है। इस प्रकार दलित विमर्श समाज में रूढ़ी बन चुके इन मिथकों को तोड़ने का प्रयास करता है। दूसरे तरीके से कहें तो यह साहित्य अस्पृश्यता और ततजन्य बहुदिशीय कुप्रभावों का चित्रण और विरोध तो कर ही रहा है, परन्तु यही एकमात्र इसका प्रतिमान बनने का हकदार कदापि नहीं हो सकता।

Critical Overview / अवलोकन

अस्पृश्यता भारतीय समाज का वह आयाम है, जिसने हमारे देश की संवृद्धि और विकास को अवरूद्ध किया। यह एक सामाजिक चलन है जिसकी जड़ें जाति और वर्ण पर आधारित हिन्दू समाज के सामाजिक मूल्यों में हैं। बाबा साहब अंबेडकर ने दलितों को संगठित होने की प्रेरणा दी और जाति व्यवस्था को दैवीय मानने से इन्कार कर दिया। वे कहते हैं कि इस पवित्रताबोध और दैवीयगुणबोध को खत्म किया जाना चाहिए। अर्थात् शास्त्रों की सत्ता समाप्त किए बिना जाति व्यवस्था समाप्त नहीं हो सकती। बाबा साहब अंबेडकर के चिन्तन ने तत्कालीन एवं वर्तमान भारतीय समाज को समझने की नई दृष्टि दी। उस दृष्टि की पहल पर बीसवीं सदी के अन्तिम दो तीन दशकों में दलित विमर्श तेज़ी से उभरा। एक नई सामाजिक दृष्टि से संपन्न साहित्य में ऐसा आंदोलन उभरा, जिसका अभिप्राय था मनु द्वारा समर्थित ब्राह्मणवादी वर्ण व्यवस्था का उच्छेद और उसमें अस्पृश्यता, दमन और शोषण उत्पीड़न के शिकार अछूतों के दुख दर्द को केन्द्रीय चित्रण के रूप में स्वीकृति।

Recap / पुनरावृत्ति

- दलित वो है जिसे वर्ण-व्यवस्था ने अछूत या अन्त्यज की श्रेणी में रखा, जिसका दलन हुआ, शोषण हुआ, और संविधान में जिसे अनुसूचित जाति (Scheduled Caste) कहा गया है।
- वैसे तो समाज में कई प्रकार के उत्पीड़न हैं लेकिन जिन्होंने हिन्दु अस्पृश्यता और उत्पीड़न झेला है, वे ही दलित हैं।
- भारतीय साहित्य में दलित विमर्श की शुरुआत मराठी से हुई।
- भारतीय संविधान में दलितों को अनुसूचित जाति(Scheduled Caste) कहा गया है।
- 1919 में सरकारी भाषा में 'दलित वर्ग' सर्वग्राही बना।
- नीग्रो साहित्य ने दलित साहित्य और आंदोलन दोनों को आलोकित एवं आंदोलित किया।
- बाबा साहब अंबेडकर ने दलितों को संगठित होने की प्रेरणा दी और जाति व्यवस्था को दैवीय मानने से इन्कार कर दिया।
- राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी दलितों को प्यार से 'हरिजन' पुकारते थे।
- अंग्रेज़ी में Discourse शब्द का प्रयोग लिखित या वाचिक संप्रेषण या बहस के लिए किया जाता है।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'दलित' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के किस धातु से हुई है?
2. अंग्रेज़ी में दलित का समानार्थी शब्द क्या-क्या हैं?

3. भारतीय संविधान में दलितों को किस नाम से पुकारा जाता है?
4. भारतीय साहित्य में दलित विमर्श की शुरुआत किस भाषा से हुई?
5. 'दलितों का मसीहा' किसे कहा जाता है?
6. दलित लेखन दलित समाज पर क्या प्रभाव डालता है?
7. दलितों से जुड़े हुए मिथक क्या हैं?
8. अस्मिता विमर्श से क्या तात्पर्य है?

Answers / उत्तर

1. संस्कृत के 'दल' धातु से।
2. The Subaltern, The Depressed, The Oppressed.
3. अनुसूचित जाति
4. मराठी।
5. डॉ. अम्बेडकर
6. दलित लेखन दलित समाज की सोई हुई चेतना को जगाता है।
7. इस जन्म में अगर दलित कुछ गलत नहीं करेंगे तो उनका अगला जन्म सफल होगा। ये मिथक भारतीय समाज में रूढ़ी बन चुके हैं।
8. व्यक्तिगत या सामुदायिक अस्मिता के बोध को जागृत करने के लिए किया गया विमर्श ही अस्मिता विमर्श है।

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. भारत में दलित साहित्य की शुरुआत मराठी में होने का कारण क्या है?
2. दलित किसे माना जा सकता है?
3. दलित और सर्वहारा में क्या-क्या भिन्नताएँ हैं?
4. दलित विमर्श पर टिप्पणी लिखिए।
5. अस्मितामूलक विमर्श से क्या तात्पर्य है।

Reference सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - डॉ. शरण कुमार लिंबाले
2. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - ओमप्रकाश वाल्मीकि
3. चिन्तन की परंपरा और दलित साहित्य - मैनेजर पांडेय
4. दलित चिन्तन का विकास - डॉ. धर्मवीर
5. दलित चेतना की पहचान - डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे
6. दलित विमर्श, दशा और दिशा - मुकेश मिरोठा
7. आधुनिकता के आईने में दलित - सं उदयकुमार दुबे

इकाई 2

दलित आंदोलन

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- दलित मुक्ति के संदर्भ में अंबेडकर के विचारों के प्रभाव को देख सकेंगे
- दलित आंदोलन की उत्पत्ति के विषय में जान पाएंगे
- दलित आंदोलन से समाज पर पड़े प्रभाव से अवगत होंगे
- दलित पैंथर्स के बारे में जानकारी हासिल करते हैं
- दलित चेतना जगाने में पत्रिकाओं का योगदान समझ पाएंगे
- दलितों की मुक्ति में गाँधीजी का योगदान जान पाएंगे
- प्रमुख दलित क्रांतिकारों के क्रांतिकारी विचारों से परिचित होंगे
- असमानता, अन्याय और शोषण के विरुद्ध छेड़े गए साहित्येतर और साहित्यिक आंदोलनों से परिचित होंगे

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

इतिहास भारतीय समाज में जाति, लिंग, वर्ग जैसे सामाजिक विभाजनों की व्यापकता को प्रमाणित करता है। ऐसे विभाजनों ने पूरे भारतीय समाज को बदल दिया है। चाहे दलित हों, निचली जातियाँ हों या महिलाएँ, शोषित वर्गों को पारंपरिक ब्राह्मणवादी दमनकारी ढांचे द्वारा लगातार किनारे पर धकेला जा रहा है। दलित वे लोग हैं जिनका सदियों से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से शोषण किया जाता रहा है। 'आंदोलन' का अर्थ हुआ सभी प्रकार के भेदभाव के विरुद्ध और अपने अधिकारों की रक्षा के लिए विरोध प्रदर्शन। स्वाभाविक रूप से 'दलित आन्दोलन' सूचित करता है दलितों द्वारा भेदभाव के विरुद्ध एवं अपने अधिकारों की रक्षा के लिए विरोध प्रदर्शन।

दलित आंदोलन भारतीय समाज में सशक्तिकरण और समानता की आभा को बनाए रखने के लिए है। वह उच्च वर्ग के लोगों और ब्राह्मणवादी विचारों के खिलाफ समूहों या निचली जाति के लोगों की एक संगठित सामूहिक कार्रवाई है। दलित आंदोलन एक सामाजिक आंदोलन था। उसका लक्ष्य सदियों पुरानी पदानुक्रमित भारतीय संस्कृति को स्वतंत्रता, समान व्यवहार, सामाजिक न्याय आदि के लोकतांत्रिक मूल्यों के साथ बदलना था। वह बहुत पहले शुरू हुआ था, वर्ष 1970 में गंभीर हो गया और अब गति पकड़ रहा है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

अस्पृश्यता, बहिष्कार, भक्ति आंदोलन, प्रगतिशील आंदोलन

Discussion / चर्चा

भारत में तीन प्रमुख सांस्कृतिक आंदोलन हुए हैं- भक्ति आंदोलन, प्रगतिशील आंदोलन और दलित आंदोलन। तीनों सामाजिक विषमताओं, शास्त्र विदित मर्यादाओं एवं हर तरह के मानवीय शोषणों के विरुद्ध है। दलित मानव

समाज में नहीं रह सकते थे। वे गाँव के बाहर रह रहे थे, कम स्तर के काम पर वे निर्भर रहे हैं। वे 'अछूत' थे। यह हिंदू समाज की सदियों पुरानी जाति पदानुक्रम प्रणाली पर आधारित भेदभाव का परिणाम है। दलित आंदोलन का मुख्य उद्देश्य भारतीय समाज में सामाजिक समानता पर आधारित आभा का निर्माण करना था। मनुस्मृति में समाज को वर्णों में बाँट दिया गया था। माना जाता है कि यह विभाजन श्रम के आधार पर हुआ था। बाद में यह विभाजन जन्म के आधार पर होने लगा। सबसे निन्दनीय बात यह है कि इसके सब से निचले तबकों को अछूत करार दिया गया। उन्हें अक्षर ज्ञान से वंचित रखा। उन्नीसवीं सदी में इस सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ आवाज़ उठाई जाने लगी। वैसे व्यवस्था के खिलाफ अतीत में भी आवाज़ उठाई गई थी। लेकिन वह आवाज़ नैतिक स्तर पर उठाई गई जिसमें शोषकों के हृदय परिवर्तन पर ज़ोर दिया गया था। हृदय परिवर्तन की बात गांधिजी भी करते हैं। लेकिन यह परिवर्तन सीमित है, क्योंकि यह व्यवस्था को बदलने में सक्षम नहीं है। इसलिए बाबा साहब अंबेडकर मानते हैं कि यह ज़रूरी है कि दलितों की राजनीतिक चेतना जागृत हो।

1.2.1 दलित आंदोलनः मुद्दे और चुनौतियाँ

शोषण चाहे मानसिक हो या सामाजिक, आर्थिक हो या धार्मिक उसके विरुद्ध विद्रोह होगा ही। उसके लिए समय कितना भी लग सकता है। जैसे भारत में शताब्दियाँ बीत गई, धर्म के नाम पर एक वर्ग को सामाजिक, मानसिक और आर्थिक शोषण सहते हुए। उसका ही परिणाम है- दलित आंदोलन। दलित आंदोलन एक सामाजिक क्रांति है। उसका लक्ष्य सदियों पुराने पदानुक्रमित भारतीय समाज को बदल कर सामाजिक परिवर्तन लाना और यह स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय पर केंद्रित लोकतांत्रिक आदर्शों को स्थापित करना था।

1.2.1.1 छुआछूत का सामाजिक चलन

'अस्पृश्यता' भारतीय समाज का वह आयाम है, जिसने हमारे देश की संवृद्धि और विकास को अवरुद्ध कर दिया था। यह एक सामाजिक चलन है जिसकी जड़ें जाति और वर्ण पर आधारित हिन्दु समाज के सामाजिक मूल्यों में है। अस्पृश्यता का शाब्दिक अर्थ है- न छूना। इसे सामान्य भाषा में 'छूआ-छूत' की समस्या भी कहते हैं। अस्पृश्यता का अर्थ है किसी व्यक्ति या समूह के लोगों के शरीर को सीधे छूने से बचना या रोकना। मान्यता यह है कि अस्पृश्य लोगों को छूने, यहाँ तक कि उनकी परछाई भी पड़ने से उच्च जाति के लोग 'अशुद्ध' हो जाते हैं। अपनी शुद्धता वापस पाने के लिये उन्हें पवित्र गंगा-जल से स्नान करना पड़ता है। भारत में अस्पृश्यता की प्रथा को संविधान के अनुच्छेद 17 के अंतर्गत एक दंडनीय अपराध घोषित कर दिया गया है। अनुच्छेद 17 निम्नलिखित है-

'अस्पृश्यता' का अन्त किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। 'अस्पृश्यता' से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा।

साधारण शब्दों मे 'अस्पृश्यता' का अर्थ ऐसी वस्तुओं से लिया जाता है जिनको स्पर्श करना वर्जित हो। भारत में इस शब्द का अर्थ विशेषकर उन जातियों से दूर रहने के लिये किया जाता रहा है जो निम्न जाति की है। उनका मुख्य कार्य कूड़ा, मैला उठाना या सफाई करना है। कुछ समय पूर्व इस श्रेणी की जाति के लोगों को भंगी, चमार, मेहतर, बसौड़ आदि नामों से सम्बोधित किया जाता था। इन्हें समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था। किन्तु आज स्वतंत्र भारत में अनेक समाज सुधारकों और सरकार के अथक प्रयासों से इनका सामाजिक सम्मान बढ़ा है और उनकी स्थितियों में परिवर्तन हो रहा है। अस्पृश्य जातियों को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है जैसे– दलित वर्ग, बाहरी जाति, हरिजन आदि। सन् 1935 के अधिनियम में इन अस्पृश्य जातियों को कुछ विशेष सुविधायें देने की दृष्टि से एक अनुसूची तैयार की गयी। इसलिए इन जातियों को अनुसूचित जातियों के नाम से भी पुकारा जाता है।

1.2.2 दलित आंदोलन में गाँधीजी का योगदान

गांधीजी इस बात के पक्षधर थे कि राष्ट्र का विकास और निर्माण अत्यधिक महत्वपूर्ण है इसके लिए अछूतों की सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाना अनिवार्य है। उनका मानना था कि व्यक्ति की जाति जन्म से नहीं बल्कि उसके कर्म से निर्धारित होनी चाहिए। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए गांधीजी ने जो रचनात्मक कार्यक्रम देश के सामने रखा, उसमें अस्पृश्यता का निवारण भी था। उन्होंने अस्पृश्यता को हिन्दूवाद का एक विकृत रूप माना और सुझाव दिया

कि इसका समाधान हिन्दुओं के नैतिक सुधार द्वारा किया जा सकता है। उन्होंने 'हरिजन' शब्द इसी उद्देश्य से गढ़ा था कि दलित अथवा अछूत भी उच्च जाति के लोगों जैसा ही 'ईश्वर की प्रजा' है। हरि का अर्थ है 'ईश्वर या भगवान' और जन का अर्थ है 'लोग'। महात्मा गाँधी ने हरिजन शब्द का प्रयोग हिन्दू समाज के उन समुदायों के लिये करना शुरु किया था जो सामाजिक रूप से बहिष्कृत माने जाते थे। इनके साथ ऊँची जाति के लोग छुआछूत का व्यवहार करते थे अर्थात उन्हें अछूत समझा जाता था। सामाजिक पुनर्निर्माण और इनके साथ भेदभाव समाप्त करने के लिये गाँधीजी ने उन्हें यह नाम दिया था। गांधीजी ने हरिजन शब्द के ज़रिए दलितों को एक सहानुभूति के दायरे में बांधने की कोशिश की। लेकिन गांधीजी द्वारा दिए गए हरिजन शब्द का विरोध दलित वर्ग निम्न तत्वों के आधार पर करते हैं-

- हरिजन शब्द में दया का भाव निहित है।
- उसमें हीनता का बोध निहित है।
- मंदिरों में देवदासियों की संतानों को भी हरिजन नाम दिया गया था, जिनकी सामाजिक पहचान 'अवैध संतान' की थी।

1932 में यरवदा जेल में बन्द गांधी ने अस्पृश्य कही जाने वाली जातियों को नए संविधान में पृथक निर्वाचन का अधिकार दिए जाने के विरोध में अनशन कर अपने प्राणों की बाजी लगा दी। गांधीजी द्वारा उपवास की खबर ने सारे देश को हिला दिया। गांधीजी के लिए उपवास का उद्देश्य हिन्दु समाज की आत्मा को जगा कर उसे धार्मिक स्तर पर सही दिशा में कार्यशील बनाना था। 1932 में गांधीजी जेल में ही थे कि उनकी प्रेरणा से अस्पृश्यता का विरोध करने के लिए हरिजन सेवक संघ की स्थापना हुई। गांधीजी ने जेल के अंदर से ही हरिजन आंदोलन को व्यापक और सक्रिय बनाने की दृष्टि से तीन साप्ताहिक पत्रिकाओं का प्रकाशन कराया- अंग्रेज़ी में 'हरिजन', हिन्दी में 'हरिजन सेवक' और गुजराती में 'हरिजन बंधु'। अपने लेखों में उन्होंने छुआछूत की समस्या को जड़ से ख़त्म करने पर ज़ोर दिया। उनका मानना था कि हिंदू धर्म वास्तव में छुआछूत की अनुमति नहीं देता। वे हमेशा अस्पृश्यता को एक क्रूर और अमानवीय संस्था मानते थे।

लेकिन अब हरिजन शब्द को प्रतिबन्धित कर दिया गया है। 'हरिजन' शब्द के स्थान पर 'अनुसूचित जाति' का इस्तेमाल करना अनिवार्य कर दिया गया है। एक महात्मा और राष्ट्रपिता के रूप में गांधीजी की स्थिति शांतिपूर्ण तरीकों से भारत को स्वतंत्रता प्राप्त करने में उनके शानदार नेतृत्व के कारण सुरक्षित है। लेकिन सच तो यह है कि गांधीजी के प्रति दलितों का रवैया निराशाजनक ज़रूर है, नाराजगी और पूरी तरह से अस्वीकृति तक भिन्न-भिन्न है। निराशा है कि वह उनके हित के लिए और अधिक कर सकते थे, लेकिन नहीं किया।

1.2.3 दलित नेता और दलित आंदोलन के विभिन्न चरण

भारत में दलित आंदोलन को दो कालों में बाँटा जा सकता है- स्वतंत्रतापूर्व काल और स्वातंत्र्योत्तर काल। स्वतंत्रतापूर्व काल में भारत में दोनों स्तरों पर दलित आन्दोलन हुए-राष्ट्रीय तथा प्रांतीय। राष्ट्रीय स्तर पर गांधीजी और भीमराव अंबेडकर ने दलितों की समस्या को उठाया। उन्होंने उन्हें सुलझाने के लिए भिन्न मार्ग अपनाए। गांधीजी ने अस्पृश्यता को हिन्दुवाद का एक विकृत रूप माना और सुझाव दिया कि इसका समाधान हिन्दुओं के नैतिक सुधार द्वारा किया जा सकता है। उन्होंने 'हरिजन' शब्द इसी उद्देश्य से गढ़ा था कि दलित अथवा अछूत भी उच्च जाति के लोगों के जैसे ही ईश्वर की प्रजा हैं। दूसरी ओर अंबेडकर ने अस्पृश्यता का वास्तविक कारण हिन्दुवाद के स्वभाव में ही देखा। वैसे भारत में दलित आंदोलन की शुरुआत ज्योतिबा फुले के नेतृत्व में हुई। इन्होंने भारतीय समाज में दलितों को एक ऐसा पथ दिखाया था जिस पर आगे चलकर दलित समाज और अन्य समाज के लोगों ने दलितों के अधिकारों के लिए कई लड़ाईयाँ लड़ीं। यूं तो ज्योतिबा फुले ने भारत में दलित आंदोलनों का सूत्रपात किया था लेकिन इसे समाज की मुख्य धारा से जोड़ने का काम बाबा साहब भीमराव अंबेडकर ने किया।

1.2.3.1 ज्योतिबा फुले और दलित सुधार

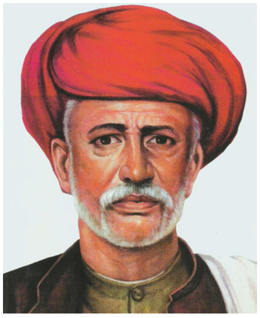

19वीं सदी के भारत के प्रमुख समाज सुधारक, सामाजिक कार्यकर्ता, विचारक एवं लेखक थे ज्योतिराव फुले। भारत में दलित आंदोलन की शुरूआत उनके नेतृत्व में हुई। इन्होंने भारतीय समाज में दलितों को एक ऐसा पथ दिखाया था जिस पर आगे चलकर दलित समाज और अन्य समाज के लोगों ने दलितों के अधिकारों की लड़ाईयाँ लड़ीं। उन्हें अस्पृश्यता, जाति व्यवस्था उन्मूलन और महिलाओं को शिक्षित करने के प्रयासों के लिए काम करने के लिए जाना जाता है। ज्योतिराव ने ब्राह्मणों और अन्य उच्च जातियों की रूढ़िवादी मान्यताओं का विरोध किया तथा उन्हें 'पाखंडी' करार दिया। देश में सामाजिक क्रांति के अग्रदूत महात्मा फुले ने गरीबों, महिलाओं, दलितों एवं पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया। वह लैंगिक समानता में विश्वास रखते थे और अपनी सभी सामाजिक सुधार गतिविधियों में पत्नी को शामिल कर उन्होंने अपनी मान्यताओं का अनुकरण किया। ज्योतिबा ने विधवाओं की दयनीय स्थिति को समझा तथा युवा विधवाओं के लिये एक आश्रम की स्थापना की। अंततः वे विधवा पुनर्विवाह के विचार के पैरोकार बन गए। वर्ष 1848 में उन्होंने अपनी पत्नी (सावित्रीबाई) को पढ़ना-लिखना सिखाया। उसके बाद इस दंपति ने पुणे में लड़कियों के लिये पहला स्वदेशी रूप से संचालित स्कूल खोला। वे दोनों वहाँ शिक्षक का कार्य करते थे।

1873 में ज्योतिबा फुले ने सत्य शोधक समाज का गठन किया। सत्य शोधक समाज का उद्देश्य समाज को जातिगत भेदभाव से मुक्त कराना और उत्पीड़ित निचली जाति के लोगों को ब्राह्मणों द्वारा लगाए गए कलंक से मुक्त कराना था। उन्होंने रूढ़िवादी ब्राह्मणों और अन्य ऊँची जातियों की निन्दा की। उनके अधिनायकवाद के खिलाफ अभियान चलाया। ज्योतिबा फुले महाराष्ट्र के ही नहीं, संपूर्ण देश के समाज सुधारकों में सबसे अधिक आक्रामक, प्रतिभा संपन्न और विद्रोही व्यक्ति थे। उन्होंने वर्ण व्यवस्था की नयी व्याख्या देते हुए पौराणिक तथा वैदिक व्यवस्था का विरोध किया। सर्व धर्म समभाव व धर्म निरपेक्षता का व्यापक आदर्श उन्होंने संपूर्ण भारतीयों के सामने रखा।

1.2.3.2 डॉ. भीमराव अंबेडकर और दलित आंदोलन

डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर, जिन्हें बाबा साहब अम्बेडकर के नाम से जाना जाता है एक न्यायविद्, समाज सुधारक और राजनीतिज्ञ थे। उन्हें भारतीय संविधान के जनक के रूप में भी जाना जाता है। अपने पूरे बचपन में, अम्बेडकर को जातिगत भेदभाव के कलंक का सामना करना पड़ा। हिन्दू महार जाति से होने के कारण,उनके परिवार को अछूत माना जाता था।

20वीं सदी में डॉ. अम्बेडकर ने उत्पीड़ित वर्गों की चेतना को तेज किया और उन्हें वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था का एक शक्तिशाली घटक बनाने के लिए तैयार किया। दलित चेतना के जागरण में उनका राजनीतिक और साहित्यिक योगदान अतुलनीय है और वे दलित चेतना के जनक के रूप में सर्वमान्य हैं। दरअसल डॉ. अम्बेडकर एक ऐसा समाज का स्वप्न देख रहे थे जिसमें मनुष्य की पहचान मनुष्य के रूप में हो। समाज में केवल किसी जाति या वर्ण के कारण उसे न विशेष सुविधाएं प्राप्त हों, न उसकी अवहेलना हो। आर्थिक व बौद्धिक रूप से कमज़ोर व पिछड़े लोगों को सुविधाएं व अधिकार देकर वे समतावादी समाज व्यवस्था, स्थापित करना चाहते थे। वे बीसवीं सदी के सबसे बड़े बुद्धिजीवी और समाज सुधारकों में से थे। उन्होंने कथित तौर पर 25 दिसंबर 1929 को मानव धर्मशास्त्र या मनुस्मृति को जला दिया था। वह हिंदू धर्म के प्रमुख आलोचकों में से एक थे और बाद में उन्होंने बौद्ध धर्म को अपने धर्म के रूप में अपनाया।

1.2.3.2.1 दलित चेतना जगाने में अम्बेडकर का योगदान

बाबा साहब का जीवन और कार्य बहिष्कृतों के हित के लिए व्यतीत हुए। उन्होंने धर्म, अर्थ, साहित्य, राजनीति, कानून और स्वतंत्रता का अस्पृश्यों के हितों के संदर्भ में विचार किया।

1. अम्बेडकर ने 1930 के दशक के दौरान दलित अधिकारों के लिए पूर्ण आंदोलन चलाया। उन्होंने सार्वजनिक पेयजल स्रोतों को सभी के लिए खोलने और सभी जातियों के लिए मंदिरों में प्रवेश के

अधिकार की माँग की।

2. उन्होंने भेदभाव की वकालत करने वाले हिन्दू धर्मग्रंथों की खुले तौर पर निंदा की।
3. अंबेडकर अनुसूचित जाति के लोगों को ठोस वैधानिक सुरक्षा देने के संघर्ष में निकटता से शामिल थे। उन्होंने दलितों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र की मांग की।

1.2.3.2.2 मार्क्सवाद और अंबेडकर

मार्क्सवाद जहाँ सामाजिक विषमता के मूल में आर्थिक विषमता को कारण मानता है वहीं अम्बेडकर का मानना था कि मात्र आर्थिक विषमता अछूतों की भयावह स्थिति के लिए मूल कारण नहीं है। उनकी दुरवस्था के लिए सामाजिक रचना, पारंपरिक शास्त्र, धर्म तथा अनेक इकाइयाँ ज़िम्मेदार हैं, उनमें अर्थ भी एक कारण है, एकमात्र कारण नहीं। बाबा साहब को मार्क्सवाद अपूर्ण लगता है, क्योंकि मार्क्सवाद में जाति अंत का विचार नहीं है। वे कहते हैं, "जातिभेद और छूआछूत यह दोनों कम्यूनिज़्म में नहीं हैं।" बाबासाहब को लगता है कि भारत में कंम्यूनिस्टों ने ब्राह्मण शाही के विरुद्ध संघर्ष नहीं किया। इसलिए वे कहते हैं- लेनिन ने हिन्दुस्तान में जन्म लिया होता तो पहले उन्होंने जातिभेद और छूआछूत को पूरी तरह नष्ट किया होता और वैसा किए बिना क्रांति की कल्पना उनके मन में आई ही न होती।

दलित साहित्य न मार्क्सवाद का विरोधी है,न जनवाद का। दलित रचनाकार उस दोहरी मानसिकता का विरोधी है जो बाहर से मार्क्सवादी, साम्यवादी और भीतर से फासिस्टों के पक्षधर है। बस मांग इतनी है कि शोषणविहीन समाज की परिकल्पना को साकार करने के लिए मार्क्सवादी विचारक 'वर्ग' के साथ 'वर्ण' को भी अपनी लड़ाई का लक्ष्य बनाए।

1.2.3.2.3 अंबेडकर और गांधी

राष्ट्रीय स्तर पर गाँधीजी और अंबेडकर दोनों ने दलितों की समस्या को उठाया। लेकिन उन दोनों ने उसे सुलझाने के लिए भिन्न मार्ग अपनाए। गांधीजी ने अस्पृश्यता को हिन्दुवाद का एक विकृत रूप माना, और सुझाव दिया कि इसका समाधान हिन्दुओं के नैतिक सुधार द्वारा किया जा सकता है। उन्होंने 'हरिजन' शब्द इसी उद्देश्य से गढ़ा था कि दलित अथवा अछूत भी उच्च जाति के लोगों के जैसे ही ईश्वर की प्रजा हैं। उन्होंने अस्पृश्यता का वास्तविक कारण हिन्दुवाद के स्वभाव में ही देखा। और कहा कि अस्पृश्यता अथवा जातिभेद का एकमात्र समाधान हिन्दुवाद के उन्मूलन अथवा दलितों का अन्य किसी धर्म में परिवर्तित होने में निहित है। अछूतों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र के मुद्दे पर गांधीजी से विवाद होने के साथ ही वे भारत में अछूतों के राष्ट्रीय स्तर की राजनीति में आ गए।

जाति, अस्पृश्यता पर गांधी के विचार और अंबेडकर के साथ उनके पुराने झगड़े सर्वविदित हैं। इस विषय पर कई विद्वतापूर्ण रचनाएँ तैयार की गई हैं। यह निष्कर्ष निकालना एक बात है कि गांधी के पास दलितों के भविष्य के लिए कुछ भी नहीं है और यह आरोप लगाना बिल्कुल दूसरी बात है कि उन्होंने उनकी स्थिति में सुधार के लिए कुछ नहीं किया।

1.2.3.2.4 अंबेडकर का साहित्यिक विचार

बाबा साहब अंबेडकर की मान्यता है कि साहित्य से समाज और मानव की केवल उन्नति ही नहीं होनी चाहिए बल्कि नीतिमत्ता का भी पोषण होना चाहिए। वे कहते हैं- विषमता का समर्थन करने वाली मनुस्मृति हमें मान्य नहीं है। ऐसी पोथी को हम क्यों न जलाएं। उनके अनुसार साहित्य में जीवनवादी और यथार्थवादी भूमिका है। वे कहते हैं ऋग्वेद, अथर्ववेद मैंने कितनी बार पढ़े हैं। पर उसमें समाज और मानव की उन्नति के लिए क्या है, यह मेरी समझ में नहीं आता। बाबा ने मानवतावाद को सर्वोच्च स्थान दिया है। उन्होंने साहित्य के केन्द्र में मानव को रखा है और मनुष्य की स्वतंत्रता की घोषणा की है। मानव की मुक्ति को प्रोत्साहित करने वाला, मनुष्य को महान मानने वाला, वंश, वर्ण और जाति श्रेष्ठत्व का कठोर विरोध करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य होता है।

> "मैं पैदा हिन्दु ज़रूर हुआ हूँ
>
> लेकिन मरूँगा हिन्दू नहीं"
>
> -डॉ. बी आर अंबेडकर

1.2.3.3 दलित पैंथर्स

दलित पैंथर्स दलित मुक्ति संग्राम का एक जुझारू संगठन है। उसका प्रमुख सान्निध्य राजनीतिक और सामाजिक

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

क्षेत्र में है। दया पवार, अर्जुन डांगले, नामदेव ढसाल आदि दलित युवा रचनाकार अमरीका के अश्वेत साहित्य (Black Literature) और क्रांतिकारी आंदोलन ब्लैक पैंथर्स (Black Panthers) से परिचित हो गए थे। ब्लैक पैंथर पार्टी एक समाजवादी राजनीतिक दल था। उसने संयुक्त राज्य अमेरिका में नागरिक अधिकार आंदोलन के दौरान अफ्रीकी-अमेरिकियों के खिलाफ नस्लीय और आर्थिक भेदभाव का मुकाबला करने की मांग की। यह 20 वीं शताब्दी के मध्य की बात है। इसी आंदोलन से प्रेरणा लेकर दया पवार, अर्जुन डांगले,नामदेव ढसाल आदि दलित युवा रचनाकारों ने 9 जुलाई 1972 को दलित पैंथर्स की स्थापना की। दलित पैंथर्स ने दलितों पर हो रहे अत्याचारों के निषेधार्थ उस वर्ष के स्वतंत्रता दिवस को काले दिवस के रूप में मनाया और काले झंडों के साथ दलित पैंथर के नेतृत्व में कार्यकर्ताओं ने शहर में पदयात्रा की। दलित पैंथर उग्र और क्रांतिकारी संगठन के रूप में जाने लगा। इस संगठन से अनेक दलित लेखक भी जुड़े हैं। यह ऐसा संगठन है जो जातिगत भेदभाव का मुकाबला करना चाहता है।

दलित पैंथर्स आंदोलन का उत्कर्ष 1970 से 1980 के दशक तक चला, और बाद में इसमें कई दलित-बौद्ध कार्यकर्ता भी शामिल हो गए। दलित पैंथर्स ने कार्ल मार्क्स की विचारधारा को अंबेडकर और ज्योतिराव फुले जैसे भारतीय लेखकों के साथ जोड़ते हुए कट्टरपंथी राजनीति की वकालत की और अभ्यास किया। इस प्रकार उन्होंने वर्ग संघर्ष के विचार को अपनाया। अपनी आलोचना को उच्च जाति के पूंजीपतियों और दलितों पर अत्याचार करने वालों की ओर निर्देशित किया। यदि आवश्यक हो तो उन्होंने खुले तौर पर हिंसक रणनीतियों के उपयोग का निर्णय लिया। उन्होंने माना कि दलितों की मुक्ति को पूरा करने के लिए एक संपूर्ण क्रांति की आवश्यकता है।

1.2.4 दलित संस्थाओं की भूमिका

1980 के बाद ही दलित साहित्य एक नयी शक्ल लेकर अभिजात सवर्ण साहित्यकारों के मंच को चुनौती देने लगा था। यह सच है कि शुरू में दलित साहित्यिक संस्थाएं चंद लोगों के लिए अपने राजनीतिक लक्ष्य की सीढ़ी बनी रहीं। इन संस्थाओं द्वारा सोच के स्तर पर कोई क्रांति तो नहीं लाई जा सकी, लेकिन इन संगठनों का इस्तेमाल कतिपय प्रतिबद्ध बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों तथा कुछ नेताओं ने दलित अस्मिता के संघर्ष के लिए करना शुरू किया था। उन्होंने हिन्दी में दलित साहित्य की पत्रिकाएं भी निकाली हैं। डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर के नेतृत्व में भारतीय दलित साहित्य अकादमी के राष्ट्रीय सम्मेलन हर वर्ष करने लगे।

भारतीय दलित साहित्य अकादमी ने निम्नलिखित कार्यों पर ज़ोर दिया-

1. हर वर्ष अनेक दलित लेखकों और हज़ारों की संख्या में दलित चेतना के समर्थकों एवं गैर दलित लेखक को एक साथ, एक मंच पर जुटाने का कार्य किया जाय।
2. डॉ. अंबेडकर के नाम पर फेलोशिप और राष्ट्रीय अवार्ड आदि देना शुरू करें।

1981 में दिल्ली में दलित साहित्य मंच नाम से एक संस्था राजपालसिंह राज और लक्ष्मी नारायण सुधाकर द्वारा स्थापित की गयी, जो छोटे पैमाने पर ही सही दलित साहित्यिक गतिविधियों का संचालन करती आ रही है। 1990 में दिल्ली में सेंटर फॉर आल्टरनेटीव दलित मीडिया(Centre for Alternative Dalit Media) अस्तित्व में आया और इन्होंने दलित साहित्य के प्रचार प्रसार तथा 'अभिमूक नायक' अखबार का प्रकाशन कार्य शुरू किया। डॉ. श्यौराजसिंह बेचैन की अध्यक्षता में दलित राईटर्स फॉरम (Dalit Writers Forum) गठित हुआ। उसने पत्रकारिता में दलितों की भागीदारी का अभियान विभिन्न गोष्ठियों एवं सेमिनारों के माध्यम से चलाया तथा दलित साहित्य की समीक्षा एवं दलित अजेंडा पर विमर्श शुरू किया।

1.2.5 गैर दलित संस्थाओं की भूमिका

गैर दलित संस्थाओं में पहले पहल 1997 में बिहार के हज़ारीबाग में रमणिका फाउण्डेशन नामक एक संस्था

गठित हुई। विनोबा भावे विश्वविद्यालय द्वारा हज़ारीबाग में अखिल भारतीय स्तर पर दलित साहित्य लेखक सम्मेलन आयोजित किया गया। इसमें दलित साहित्य को पाठ्यक्रम में शामिल करने, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र और उसकी अवधारणा आदि पर पहली बार खुलकर बहस की गई।

इस प्रकार बीसवीं सदी में लगभग अस्सी के दशक के बाद विभिन्न दलित व कतिपय गैर दलित संस्थानों द्वारा दलित चिंतन और दलित साहित्य के विकास हेतु कार्य शुरू किया गया। दलित साहित्य को पृष्ठभूमि बनाने, दलित अस्मिता का निर्माण करने एवं दलित अजेंडा बनाने के मुद्दों पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। साथ ही परस्पर बहस चलाकर दलित-गैर दलित संवाद भी कायम रखा।

1.2.6 हिन्दी पत्रिकाओं की भूमिका

दलित साहित्य आंदोलन को आगे बढ़ाने में और नई दिशाओं का बोध कराने में कुछ पत्रिकाओं का बहुत बड़ा योग रहा है। इसमें अस्मितादर्श त्रैमासिक पत्रिका का योगदान सबसे अधिक है। दलित साहित्य आंदोलन को उसके गंतव्य तक पहुँचाने में यह पत्रिका आंदोलन की शुरुआत से लेकर आज तक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती आ रही है। इसी पत्रिका के द्वारा दलित साहित्य सम्मेलन आयोजित किए गए। इन सम्मेलनों में दलित लेखकों, कवियों ने बड़ी संख्या में उपस्थित होकर साहित्य संबंधी चर्चाएँ कीं और दलित साहित्य के अन्तर्गत पनप रही अनेक अनिष्ट प्रवृत्तियों को रोककर दलित साहित्य की संभावनाओं को बढ़ाने की कोशिश की। इस प्रकार का कार्य बाबा अंबेडकर ने मूक नायक, बहिष्कृत भारत, जनता आदि समाचार पत्रों के द्वारा किया था।

कुछ गैर दलित व्यावसायिक एवं लघु पत्रिकाओं ने भी मराठी दलित साहित्य का हिन्दी अनुवाद छाप कर हिंदी के सवर्ण-अवर्ण साहित्यकारों एवं बुद्धिजीवियों को चौंकाया। 'सारिका' (व्यावसायिक पत्रिका) के कमलेश्वर जी और उनके बाद 'संचेतना' (अव्यवसायिक लघु पत्रिका) के डॉ. महीप सिंह ने यह पहल की। हिन्दी के दलित साहित्यकारों को बृहद पैमाने पर छापने की शुरुआत पहले पहल 'युद्धरत आम आदमी' और 'हंस' जैसी लघु पत्रिकाओं ने की। 'युद्धरत आम आदमी' में ही 1987 में पहली दलित कहानी 'लटकी हुई शर्त' प्रहलाद चंद दास की छपी। युद्धरत आम आदमी और हंस में दलित चेतना पर निरंतर चर्चा हुई। इसके बाद 'युद्धरत आम आदमी' के चार दलित विशेषांकों के छपने के बाद ही बाकी गैरदलित पत्रिकाओं ने अपने दलित विशेषांकों की घोषणा की।

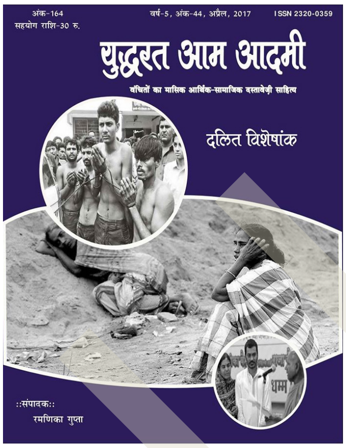

इस से यह मिथक टूटा कि हिन्दी में दलित लेखक नहीं है। इस बीच हिन्दी क्षेत्र में कई दलित पत्रिकाएँ निकलीं, कई बंद हो गई, कई आज तक चल रही हैं। दलित आलोचक मैनेजर पांडेय और 'हंस' के संपादक राजेन्द्र यादव ने दलित साहित्य को एक सबल समर्थन ही नहीं दिया बल्कि दलित विरोधियों का कड़ा जवाब भी दिया।

1.2.7 दलित चेतना और बौद्ध विचार प्रणाली

बौद्ध धर्म में जाति व्यवस्था को कोई स्थान नहीं है। बौद्ध धर्म समता का समर्थन करने वाला और विषमता नकारने वाला धर्म है। बुद्ध ने जाति प्रथा को नकारा और संघ में सभी को प्रवेश दिया। अंबेडकर लंबे समय से हिंदू धर्म के आलोचक रहे थे और मानते थे कि यह भारतीय समाज के लिए अंग्रेजों से भी बड़ा खतरा है। मई 1936 में, उन्होंने कहा था: "मैं आप सभी को बहुत स्पष्ट रूप से बताता हूँ, धर्म मनुष्य के लिए है, न कि मनुष्य धर्म के लिए। मानवीय उपचार पाने के लिए, स्वयं को परिवर्तित करें।"

14 अक्टूबर, 1956 को, बी आर अंबेडकर ने अपने 3,65,000 दलित अनुयायियों के साथ उस समय इतिहास रचा जब उन्होंने हिंदू धर्म को छोड़कर बौद्ध धर्म अपनाने का फैसला किया। अम्बेडकर के बौद्ध धर्म में रूपांतरण ने भारत में दलित आंदोलन को नई गति दी, जिससे समूह को हिंदू धर्म में चार-स्तरीय वर्ण व्यवस्था के बंधनों से मुक्त आवाज़ मिल सकी। अंबेडकर के निधन के बाद

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

दलित समाज ने बौद्ध धर्म का प्रचार किया। धर्मांतरण के कारण दलित समाज में बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धा, उत्सुकता और प्रचार की भावना में वृद्धी हुई। बौद्ध जाति से विवाह करना, बुद्ध जयंती मनाना, बौद्ध भिक्षु का आदर करना, दलित समाज में से बौद्ध धर्म प्रचारक बनना, छोटे बच्चों एवं घरों के नाम बौद्ध धर्म के अनुरूप रखना आदि विविध प्रकार के आचार-व्यवहार द्वारा दलितों ने बौद्धमय होने की प्रक्रिया शुरू की।

Critical Overview / अवलोकन

भारतीय समाज में 'वर्ण' एक सच्चाई है जिसने सदियों से इस देश के जनमानस को सिर्फ टुकड़ों में ही नहीं बाँटा, उनके मानवीय सरोकारों को भी छिन्न-भिन्न किया है। यह लड़ाई किसी एक व्यक्ति की नहीं, उन तमाम लोगों की है जो मनुष्य की बेहतरी के लिए चिन्तित है। सहमति असहमतियों के बावजूद साहित्य को अपनी भूमिका पूरी ईमानदारी और ज़िम्मेदारी से निभानी होगी, तभी शोषणमुक्त समाज की परिकल्पना साकार होगी। सामाजिक उत्पीड़न, सामंती सोच और वर्ण व्यवस्था से उपजी ऊँच-नीच ने दलितों को शताब्दियों से मानसिक गुलामी में जकड़कर रखा है। उसकी मुक्ति के तमाम रास्ते बन्द थे। इस गुलामी से मुक्त होने का विचार ही दलित चेतना है, जिसे ज्योतिबा फुले और डॉ. अंबेडकर ने दार्शनिक आधार दिया। संक्षेप में कह सकते हैं कि दलित चेतना का सीधा संबंद्ध अंबेडकर दर्शन से है। वही प्रेरणास्रोत भी है। स्वातंर्त्र्योत्तरकाल में विविध साहित्यिक धाराओं की अपेक्षा दलित साहित्य का स्वरूप और लक्ष्य भिन्न होने के कारण यह साहित्य बहुचर्चित सिद्ध हुआ।

Recap / पुनरावृत्ति

- दलित आंदोलन का मुख्य उद्देश्य भारतीय समाज में सामाजिक समानता पर आधारित आभा का निर्माण करना था।
- अंबेडकर ने भेदभाव की वकालत करने वाले हिन्दू धर्मग्रंथों की खुले तौर पर निंदा की।
- दलित पैंथर्स एक सामाजिक संगठन है जो जातिगत भेदभाव का मुकाबला करना चाहता है।
- भारतीय दलित साहित्य अकादमी ने डॉ. अंबेडकर के नाम पर फेलोशिप और राष्ट्रीय अवार्ड आदि देने शुरू किए।
- डॉ. अंबेडकर विषमता का समर्थन करने वाली मनुस्मृति को मान्यता देने के पक्षधर नहीं हैं।
- हिन्दी के दलित साहित्यकारों को बृहद पैमाने पर छापने की शुरुआत पहले पहल 'युद्धरत आम आदमी' और 'हंस' जैसी लघु पत्रिकाओं ने की।
- डॉ. अंबेडकर ने साहित्य के केन्द्र में मानव को रखा है और मनुष्य की स्वतंत्रता की घोषणा की है।
- दलित आलोचक मैनेजर पांडेय और 'हंस' के संपादक राजेन्द्र यादव ने दलित साहित्य को सबल समर्थन दिया।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारत में घटित तीन प्रमुख सांस्कृतिक आंदोलन कौन-कौन से हैं?
2. भारत में अस्पृश्यता की प्रथा को संविधान के किस अनुच्छेद के अंतर्गत एक दंडनीय अपराध घोषित कर दिया गया है?
3. 1932 में गांधीजी ने अस्पृश्यता का विरोध करने के लिए किस संघ की स्थापना की?
4. डॉ. अंबेडकर के नाम पर फेलोशिप और राष्ट्रीय अवार्ड आदि देने की शुरुआत किस ने की?
5. 'युद्धरत आम आदमी' में छपी पहली दलित कहानी कौन सी थी?
6. हरिजन आंदोलन को व्यापक और सक्रिय बनाने की दृष्टि से गांधीजी ने किन साप्ताहिक पत्रों को प्रकाशित किया?
7. हंस पत्रिका के संपादक का नाम लिखिए जिन्होंने दलित साहित्य को एक सबल समर्थन ही नहीं दिया बल्कि दलित विरोधियों को कड़ा जवाब भी दिया?
8. किसने 1873 में 'सत्य शोधक समाज' का गठन किया?
9. गांधीजी दलितों को किस नाम से पुकारते थे?
10. हरिजन का अर्थ क्या है?
11. बी आर अंबेडकर ने किस वर्ष बौद्ध धर्म अपनाने का फैसला किया?

Answers / उत्तर

1. भक्ति आंदोलन, प्रगतिशील आंदोलन और दलित आंदोलन।
2. संविधान के अनुच्छेद 17 के अंतर्गत
3. हरिजन सेवक संघ
4. भारतीय दलित साहित्य अकादमी
5. प्रहलाद चंद दास की 'लटकी हुई शर्त'
6. अंग्रेज़ी में 'हरिजन', हिन्दी में 'हरिजन सेवक' और गुजराती में 'हरिजन बंधु'।
7. राजेन्द्र यादव
8. ज्योतिबा फुले ने
9. हरिजन
10. हरि का अर्थ है 'ईश्वर या भगवान' और जन का अर्थ है 'लोग'।
11. 14 अक्टूबर, 1956 को

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. अस्सी के दशक में समाज में दलित चेतना जगाने में दलित संस्थाओं की क्या भूमिका रही?
2. दलित चेतना जगाने में अम्बेडकर का क्या योगदान रहा?
3. दलित पैंथर्स पर टिप्पणी लिखिए?
4. बौद्ध विचार प्रणाली ने दलितों पर क्या प्रभाव डाला?
5. दलितों के विषय में गाँधीजी और अंबेडकर के विचारों में क्या मतभेद था?
6. सत्य शोधक समाज का उद्देश्य क्या था?

Reference सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - डॉ. शरण कुमार लिंबाले
2. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - ओमप्रकाश वाल्मीकि
3. चिन्तन की परंपरा और दलित साहित्य - मैनेजर पांडेय
4. दलित चिन्तन का विकास - डॉ. धर्मवीर
5. दलित चेतना की पहचान - डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे
6. दलित विमर्श, दशा और दिशा - मुकेश मिरोठा
7. आधुनिकता के आईने में दलित - सं उदयकुमार दुबे

इकाई 3

दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र से अवगत कराना है
- पारंपरिक सौन्दर्यशास्त्र और दलित सौन्दर्यशास्त्र की विशेषताओं से अवगत होता है
- शरणकुमार लिंबाले द्वारा लिखे दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र के एहम मुद्दों से परिचित कराना है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

दलित आंदोलन के विकास के साथ-साथ दलित साहित्य का भी विकास हुआ। इसने जनवाद-प्रगतिवाद के सांस्कृतिक मुद्दों को अपने अनुभव और यथार्थ के अनुभवों से टकराकर, साहित्य की विधाओं को प्रखरतम बना दिया। दलित साहित्य वर्ण व्यवस्था से उपजे जातिवाद का विरोध करता है। इस विरोध में नकार का स्वर मुख्य है। उसकी भाषा, बिंब, प्रतीक एवं भावबोध परंपरावादी साहित्य से नितान्त भिन्न है। इसलिए वह पारंपरिक साहित्य के मूल्यों और मानदंडों से अलग नए सौन्दर्य शास्त्र की स्थापना करता है। रचना का मापदंड क्या हो? कैसे हो? इसके लिए ज़रूरी है उसके उद्‌गम और भावबोध पर चर्चा और समाजशास्त्रीय आलोचना का विकास। उन मापदंडों में भी परिवर्तन की आवश्यकता है, जो सामंती सोच के पक्षधर है। इस इकाई में दलित साहित्य के सौंदर्य तत्वों पर चर्चा होगी तथा दलितों द्वारा अलग सौन्दर्य शास्त्र की मांग की प्रासंगिकता जान पाएंगे।

Keywords / मुख्य बिन्दु

सौन्दर्यशास्त्र, कलात्मक सौन्दर्य, अलौकिक अनुभूति, सौन्दर्य मीमांसा, उत्पीड़न

Discussion / चर्चा

वर्ण व्यवस्था के अमानवीय बंधनों ने शताब्दियों से दलितों के भीतर हीनता भाव को पुखता किया है। धर्म और संस्कृति की आड़ में साहित्य ने भी इस भावना की नींव सुदृढ़ की है। ऐसे सौंदर्यशास्त्र का निर्माण किया गया जो अपनी सोच और स्थापनाओं में दलित विरोधी है। जो समाज के अनिवार्य अंर्तसंबंधों को खंडित करने में ही सहायक रहा है। हिन्दी साहित्य में समाजशास्त्रीय समीक्षा का नितान्त अभाव है, बल्कि नहीं के बराबर है। हिन्दी समीक्षा पद्धति में अन्तर्निहित मानदंडों से दलित साहित्य की समीक्षा संभव नहीं है। क्योंकि हिन्दी समीक्षा पद्धति में मुख्य तर्क होता है मुख्यधारा का जो वास्तविक अर्थो में सवर्ण मुख्यधारा है जो अपनी रचनात्मक स्वायत्तता को लेकर सदैव आत्ममुग्ध होती रही है। इस आत्ममुग्धता की सबसे प्रबल मान्यता है कि जिसे वह अपना सौन्दर्यबोध समझता है, वही मूल्य सार्वभौम होता है। कला और शिल्प के प्रति भी यही धारणा है। लेकिन सच तो यह है कि यह पारंपरिक सौन्दर्यबोध दलित रचनाओं के साथ न्याय नहीं कर सकती, क्योंकि दलितों का सच सवर्णो की सच्चाई से नितांत भिन्न है।

वैसे तो हिन्दी में कोई विकसित सौन्दर्यशास्त्र नहीं है लेकिन जो है उसके पीछे एक ओर संस्कृत के काव्यशास्त्र की लम्बी परम्परा है तो दूसरी ओर पश्चिम के सौन्दर्यशास्त्र

का प्रभाव। स्वयं पश्चिम में सौन्दर्यशास्त्र का विकास कई सदियों से हुआ है। सौन्दर्यशास्त्र कला की अलौकिक अनुभूति नहीं है। वह कलात्मक सौन्दर्य के बोध और मूल्यों का शास्त्र है, और बोध की प्रक्रिया तथा मूल्यों के निर्माण में जाति, वर्ग और लिंग से जुड़ी विचार धाराओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसीलिए दलित सौन्दर्यशास्त्र का विकास दलित समाज, उसकी चेतना, संस्कृति और विचारधारा पर निर्भर है, जो एक लम्बी प्रक्रिया का परिणाम है।

1.3.1 दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र

दलित लेखक पारम्परिक सौन्दर्यशास्त्र को नकारते हैं। सौन्दर्य शास्त्र के क्षेत्र में हिन्दी अभी अपनी मौलिक पहचान नहीं बना पाई। या तो वह संस्कृत सौन्दर्य शास्त्र पर निर्भर है या फिर पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्र पर। संस्कृत साहित्य का मूल आधार सामन्तवादी एवं ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण है। उसी प्रकार पाश्चात्य साहित्य की सौन्दर्य दृष्टि भी पूँजीवादी एवं सामंतवादी है। संस्कृत साहित्य के प्रति हिन्दी लेखकों का मोह संस्कारगत था। वर्ण व्यवस्था और संस्कृत साहित्य से उपजी सामाजिक दृष्टि से सामाजिक मूल्यों को संकीर्ण दायरे में बाँधने की चेष्टा हमेशा से की जा रही है। इसलिए दलित लेखक पारम्परिक सौन्दर्य शास्त्र को नकारते हैं। उनका मानना है कि हमारे पारम्परिक सौन्दर्य शास्त्र का स्थायी भाव आनन्द है। जिस रचना को पढ़कर जितना अधिक आनन्द आएगा उसे उतना ही श्रेष्ठ माना जाता है। हिन्दी साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र जहाँ आनन्द पर आधारित है वहीं दलित साहित्य वेदना या व्यथा पर। दलित साहित्य में व्यक्त हुई वेदना और विद्रोह पढ़कर पाठक बेचैन होगा या आनंदित? दलित साहित्य पाठक को बेचैन करने वाला साहित्य है।

- ▶ प्रश्न उठता है कि- क्या मनुष्य केवल सौंदर्य का दीवाना है।
- ▶ क्या मनुष्य को केवल आनन्द चाहिए?

इसका उत्तर नकारात्मक है क्योंकि हज़ारों लाखों मनुष्य स्वतंत्रता, न्याय और समता के लिए आत्म-बलिदान दिए हैं। आनन्द अथवा सौन्दर्य के लिए कभी भी क्रांति नहीं हुई। समता, स्वतन्त्रता और न्याय के लिए सत्ता-पलट हुए हैं, यही इतिहास है। इन्हीं कारणों के कारण दलित लेखकों का मानना है कि उनके साहित्य की समीक्षा समाज शास्त्रीय दृष्टि से होना चाहिए और समाज शास्त्रीय समीक्षा में सौन्दर्य की अपेक्षा सामाजिक मूल्यों की चर्चा अधिक होना लाजमी है। इसलिए दलित लेखकों ने अपने साहित्य की सौन्दर्य मीमांसा के लिए अलग कसौटियों की माँग की है। उनका दृढ़ मत है कि कसौटियाँ बदलेगी तो सौन्दर्य चेतना भी बदलेगी। पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्र के प्रतिमानों एवं संस्कृत के शास्त्र से भिन्न प्रतिमानों की आवश्यकता जब दलित लेखक महसूस करते हैं तो हिन्दी के स्थापित समीक्षक सदैव उँगली उठाते हैं। दलित लेखक दृढ़ रूप से मानते हैं कि जीवन-दर्शन, अनुभूति और अनुभव की वास्तविकता भारतीय साहित्य में कभी आई ही नहीं। दलित समाज की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक आकांक्षाएँ साहित्य की भाषा में व्यक्त हो रही है। इसलिए वह हिन्दी की मुख्य धारा के उस सौन्दर्यशास्त्र के वर्चस्व से मुक्त है, जो संस्कृत के काव्यशास्त्र से जुड़ा है।

शरण कुमार लिंबाले उन दलित लेखकों में प्रमुख हैं जिन्होंने सबसे पहले 'दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र'(2000) प्रकाशित किया। अतः इस विषय में उनके विचार एहम स्थान रखती है। शरण कुमार लिंबाले पारम्परिक सौन्दर्य शास्त्र के सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की अवधारणा को काल्पनिक मानते हुए उसे नकारते हैं। उनका मानना है कि सत्यं, शिवम् और सुन्दरम् ये भेदभाव की कल्पनाएँ हैं– जिसके आधार पर आम आदमी का शोषण हुआ है। दरअसल सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् की धारणा को लिंबाले जी सवर्ण समाज के स्वार्थ साधन के लिए रची गई साजिश मानते हैं। वे अपने 'दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र' में पूछते हैं कि आखिर सत्य, शिव और सुन्दर क्या है?

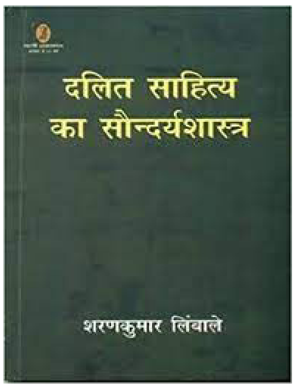

1. ब्राह्मण की ब्रह्मा के मुख से और शूद्र की ब्रह्मा के पैर से उत्पत्ति हुई है। क्या यह सत्य है?

2. गत जन्म में पाप किया इसलिए शूद्र का जन्म मिला क्या यह सत्य है?
3. शूद्र गाँव के बाहर रहें, सर पर मल-मूत्र-विसर्जन ढोए, इसमें कौन सा शिव है?
4. शूद्र संपत्ति न इकट्ठा करें, संस्कृत न सीखें, वेद न सीखें और अगर उसने ऐसा करने की कोशिश की तो उसकी अवस्था एकलव्य की जैसी हो जाएगी। शंबूक ने तप किया तो उसका वध कर दिया गया।

शरण कुमार लिंबाले जी सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की पुनर्व्याख्या करते हुए कहते हैं–

- मनुष्य सर्वप्रथम मनुष्य है यही सत्य है।
- मनुष्य की स्वतंत्रता ही शिव है।
- मनुष्य की मनुष्यता ही सौन्दर्य है।

काल्पनिक सत्य, काल्पनिक शिव, काल्पनिक सौन्दर्य ये सब मूर्खता की बातें हैं। विश्व में मनुष्य से 'सत्य और सुन्दर' दूसरी कोई चीज़ नहीं है। इसी तत्व को आधार बनाकर दलित साहित्य के सौन्दर्य शास्त्र की चर्चा होगी।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने 2001 में 'दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र' की रचना की जिसमें उन्होंने भी अलग सौन्दर्यशास्त्र की आवश्यकता पर यों लिखा– "हिन्दी साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र संस्कृत और पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्र पर आधारित है। इसलिए उसकी कसौटियाँ दलित साहित्य के मूल्यांकन में अक्षम साबित होती हैं।

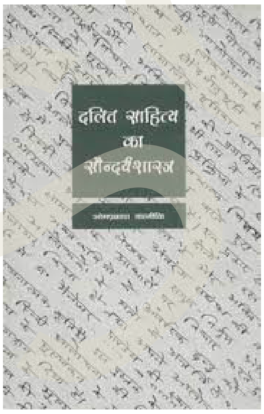

दलित साहित्य के सौन्दर्य शास्त्र के बुनियादी तत्वों पर विचार प्रकट करते हुए लिंबाले जी लिखते हैं- "दलित गुलाम हैं, परतन्त्र हैं, उन्हें स्वतन्त्रता चाहिए। अतः दलित सौन्दर्य शास्त्र स्वतंत्रता के मूल्य को मानता है। इसके लिए प्रेरित करने वाली रचना सुन्दर है। जो रचना गुलाम को गुलामी के प्रति चेतती है, वही सुन्दर है।

Critical Overview / अवलोकन

हिन्दी साहित्य में समाजशास्त्रीय समीक्षा का नितांत अभाव है, बल्कि नहीं के बराबर है। जैसे-जैसे समाजशास्त्रीय दृष्टि पर विचार किया जाएगा वैसे-वैसे जीवन के प्रश्न, उनका भीषण स्वरूप, उनके विरुद्ध संघर्ष, इन सबकी पड़ताल साहित्य में होगी। पारंपरिक सौन्दर्यशास्त्र पंडित जगन्नाथ के 'वाक्यम् रसात्मकं काव्यम्' को सूत्र की तरह दोहराता है जबकि दलित लेखकों की दृष्टि में साहित्य आचार्यों द्वारा निर्मित रस अधूरे एवं पूर्वाग्रहों से पूर्ण है। दलित साहित्य विद्रोह और नकार के संघर्ष से उपजा है। घोषित रसों के द्वारा दलित रचनाओं के केन्द्रीय भाव का मूल्यांकन नहीं हो सकता।

संक्षेप में कह सकते हैं कि दलित साहित्य आगे बढ़ रहा है। साहित्य की मूर्तता और अमूर्तता का अध्ययन करने की प्रविधियाँ जो पूर्व से परम्परा-स्वरूप चली आ रही हैं, ध्वस्त हो रही हैं, साथ ही साथ नयी प्रविधियाँ आकार ग्रहण कर रही हैं। दलित साहित्य की पहचान वर्तमान आलोचना के प्रतिमान करने में असमर्थ हैं। दलित साहित्य की गुणवत्ता को उचित सम्मान दिलाने में इसके आलोचकों को दीर्घ-कालीन वैचारिक संघर्ष से गुज़रना पड़ेगा क्योंकि वर्ग संस्कारों की तरह ही व्यापक साहित्यिक-सांस्कृतिक-अकादमिक संस्थानों में जातिगत संस्कार जड़ें जमाए हुए हैं। वैसे दलित साहित्य को सम्मान अपने आप मिल रहा है। दलित साहित्य के आलोचना सन्दर्भ ग्रन्थों की अभी भरमार नहीं हो सकी है। यह साहित्य कहीं अन्य सभी सरोकारों से छिटक कर केवल अस्पृश्यता तक ही न सिमट जाए ऐसा डर बना रहता है दलित चेतना के प्रमुख बिन्दु हैं-

1. मुक्ति और स्वतंत्रता के सवालों पर डॉ. अंबेडकर के दर्शन को स्वीकार करना।
2. वर्ण व्यवस्था विरोध
3. जाति भेद विरोध
4. स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय की पक्षधरता
5. ब्राह्मणवाद का विरोध

दलित साहित्य के सौंदर्य तत्वों में शामिल समता, स्वतंत्रता और बंधुता के विचार ने समाज में बदलाव की प्रक्रिया को तेज़ किया। दलित साहित्य में मनुष्य की

पक्षधरता स्थापित की है। कल्पना पर आधारित साहित्य की जगह जीवंत यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाया है। दलित साहित्य में वेदना, नकार और विद्रोह साफ लक्षित होता है जिसकी झलक आगामी अध्यायों में देखने को मिलेगी।

Recap / पुनरावृत्ति

- दलित लेखकों ने अपने साहित्य की सौन्दर्य मीमांसा के लिए अलग कसौटियों की माँग की है।
- सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् की धारणा को लिंबाले जी सवर्ण समाज के स्वार्थ साधन के लिए रची गई साजिश मानते हैं।
- शरण कुमार लिंबाले पारम्परिक सौन्दर्य शास्त्र के सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की अवधारणा को काल्पनिक मानते हुए उसे नकारते हैं।
- शरण कुमार लिंबाले उन दलित लेखकों में प्रमुख हैं जिन्होंने सबसे पहले 'दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र'(2000) प्रकाशित किया।
- दलित साहित्य का लक्ष्य है- दलित समाज को गुलामी से अवगत कराना, उसे इस गुलामी के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए प्रेरित करना, और सवर्ण समाज के समक्ष अपनी व्यथा और वेदनाओं का बयान करना।
- ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने 2001 में 'दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र' प्रकाशित किया।
- दलित लेखकों का मानना है कि उनके साहित्य की समीक्षा समाज शास्त्रीय दृष्टि से होना चाहिए।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सर्वप्रथम 'दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र' किसने प्रकाशित किया?
2. किन दो लेखकों ने दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र प्रकाशित किया?
3. पारंपरिक सौंदर्यशास्त्र किस पर आधारित है?
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित साहित्य के सौन्दर्य शास्त्र की रचना कब की?
5. सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् के बारे में लिंबाले जी की अवधारणा क्या है?
6. दलित चेतना का सीधा संबंद्ध किस दर्शन से है?

Answers / उत्तर

1. शरणकुमार लिंबाले
2. शरणकुमार लिंबाले और ओम प्रकाश वाल्मीकि
3. संस्कृत सौंदर्यशास्त्र पर।
4. 2001
5. सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् की धारणा को लिंबाले जी सवर्ण समाज के स्वार्थ साधन के लिए रची गई साजिश मानते हैं।
6. अंबेडकर दर्शन से

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. दलित चेतना के प्रमुख बिंदु क्या-क्या हैं?
2. शरणकुमार लिंबाले जी सत्यं शिवम् सुंदरम की व्याख्या किस प्रकार करते हैं?
3. दलित लेखक अपनी रचनाओं को आंकने के लिए एक अलग सौंदर्यशास्त्र की मांग क्यों करते हैं?
4. पारंपरिक सौंन्दर्यशास्त्र और दलित सौंन्दर्यशास्त्र की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

Reference सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - डॉ. शरण कुमार लिंबाले
2. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - ओमप्रकाश वाल्मीकि
3. चिन्तन की परंपरा और दलित साहित्य - मैनेजर पांडेय
4. दलित चिन्तन का विकास - डॉ. धर्मवीर
5. दलित चेतना की पहचान - डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे
6. दलित विमर्श, दशा और दिशा - मुकेश मिरोठा
7. आधुनिकता के आईने में दलित - सं उदयकुमार दुबे

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

इकाई 4

दलित साहित्य

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- दलित साहित्य के स्वरूप से अवगत कराता है
- दलित साहित्य के लक्ष्य से अवगत होता है
- दलित साहित्य की शैलीगत विशेषताओं से परिचित कराता है
- दलित साहित्य के मूल सूत्र से अवगत कराता है
- दलित पीड़ा की अभिव्यक्ति की पहचान पाएंगे

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

भारत में समतामूलक सामाजिक न्याय पर आधारित नए समाज के निर्माण के लिए कई परिवर्तनकामी चिन्तकों का सर्जनात्मक योगदान रहा। इसका ही साहित्यिक रूप 'दलित साहित्य' के रूप में उभरकर सामने आया। 'दलित साहित्य' यानी दलित लेखकों द्वारा दलित चेतना के तहत दलितों के विषय में किया गया लेखन। उसका लक्ष्य स्पष्ट है- दलित समाज को गुलामी से अवगत कराना, उसे इस गुलामी के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए प्रेरित करना, सवर्ण समाज के समक्ष अपनी व्यथा और वेदनाओं का बयान करना। उनका दलित साहित्य सृजन डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा के आधार पर ज़ारी रहा। दलित चेतना डॉ. अम्बेडकर के लेखन एवं जीवन दर्शन से मुख्य ऊर्जा ग्रहण करती है। उससे प्रभावित होकर समाज के विविध स्तरों में नए लेखकों का उदय हुआ। इन लेखकों ने अपनी भाषा, अपना परिवेश, अपनी परिस्थिति और अपने प्रश्न को अपने साहित्य में प्रस्तुत किए। स्वातंत्र्योत्तर काल में विविध साहित्यिक धाराओं की अपेक्षा दलित साहित्य का स्वरूप और लक्ष्य भिन्न होने के कारण यह साहित्य बहुचर्चित सिद्ध हुआ।

Keywords / मुख्य बिन्दु

स्वतंत्रता, समता, बन्धुत्व, जन साहित्य, उत्पीड़ित, शोषित, गटर साहित्य

Discussion / चर्चा

दलित लेखक के मन की, लेखन की, सृजन की प्रक्रिया को जान लेने पर साफ होगा कि दलित चेतना ही वह लक्षण है जो गैर दलित के लेखन से उसे अलग व्यक्तित्व प्रदान करता है। दलित साहित्य की अवधारणा या इसके व्यावहारिक रूप में यह तो सही है कि दलित जीवन की प्रामाणिक अभिव्यक्ति वही लेखक कर सकता है, जिसे इसके निकट का अनुभव हो। जिसने भोगा हो झेला हो उसके अनुभव ही प्रामाणिक हो सकते हैं। बाकी सब सहानुभूति पर आधारित है। जिसके बिवाई फटी होगी, उसे ही पीड़ा का अधिक अनुभव होगी। दलितों की मुक्ति और इनके लिए समानता का पक्षधर सारा साहित्य दलित साहित्य कहलाने का अधिकारी होकर रहेगा। तब दलित साहित्य को दलित साहित्य के मानदण्डों में मापा जाएगा, न कि रचनाकार की पृष्ठभूमि से।

1.4.1 दलित साहित्य क्या है ?

दलित साहित्य 'जन साहित्य' अथवा Mass Literature है। सिर्फ इतना ही नहीं, लिटरेचर ऑफ एक्शन (Literature of Action) भी है जो मानवीय मूल्यों की भूमिका पर सामन्ती मानसिकता के विरुद्ध आक्रोशजनित संघर्ष है। इसी संघर्ष और विद्रोह से उपजा है दलित साहित्य। 1960 तक कोई दलित साहित्य प्रकाशित ही न करता था। उसे 'गटर साहित्य' कहकर उसकी निन्दा की जाती थी। वर्तमान साहित्य जगत में 'दलित' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम मराठी साहित्य में लगभग 1936 ई में हुआ था। किन्तु हिन्दी साहित्य में यह शब्द 1980 में समकालीन लेखन में दृष्टिगोचर हुआ। तब से आज तक इस शब्द ने न केवल अपनी एक अलग पहचान बनाई अपितु सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में इस शब्द की सर्वाधिक आवश्यकता महसूस की जा रही है। अनेक विद्वानों ने 'दलित साहित्य' की व्याख्या करते हुए उसे परिभाषित किया है। दलित चिन्तकों की धारणा है कि 'दलित साहित्य' से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है, अपने जीवन-संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला नहीं, बल्कि जीवन की जिजीविषा का साहित्य है।

प्रमुख दलित लेखक एवं चिन्तक डॉ. शरणकुमार लिंबाले ने अपने 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' में दलित साहित्य को यों परिभाषित किया है- "दलितों का दुख, परेशानी, गुलामी, अधःपतन और उपहास के साथ ही दरिद्रता का कलात्मक शैली से चित्रण करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है। आह का उदात्त स्वरूप अर्थात् दलित साहित्य।" उनका मानना है कि हर एक मनुष्य को स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और भयमुक्त सुरक्षा मिलनी चाहिए। उसी पृष्ठभूमि पर निर्मित एक प्रवृत्ति जो साहित्य में अभिव्यक्त हो रही है उसे ही दलित साहित्य माना जा सकता है। दलित साहित्य समाज सापेक्ष्य है। उसके केन्द्र में व्यक्ति न होकर जन समूह होता है। साहित्य की मूल संवेदना के साथ-साथ दलित साहित्य मानव की स्वतंत्रता, समता और बन्धुत्व की भावना को सर्वोपरि मानता है। साहित्य के साथ दलित शब्द के जुड़ते ही उसकी व्यापकता और अधिक क्रान्ति बोधक हो जाती है।

Dalit Literature is a literature of community or group. Dalit writer does not write as an individual but as a member of a group or community. Not tales of individual suffering but of group or community. In this regard Dalit Literature differs from Mainstream Literature whose primary concern is an individual.

विद्वानों में मतभेद है कि आखिर दलित साहित्य किसे माना जाए? गैर दलित और दलित का सवाल वे उठाते हैं। तर्क कुछ इस प्रकार उठाया जाता है–

- लेखन, लेखन होता है, दलित और सवर्ण कुछ नहीं।
- सवर्णों द्वारा बरसों पहले ही दलित चेतना से पूर्ण साहित्य लिखा गया।
- दलित द्वारा लिखे गए साहित्य को ही दलित साहित्य माना जाना चाहिए।

अजीब बात यह है कि जब कला का वर्गीकरण करते समय उस कला से सम्बन्धित कलाकारों की स्वीकृति भी वर्ग विभाजित होने लगती है। यह विभाजक रेखा जब साहित्य के पटल पर अंकित की जाती है, तो एक प्रश्नचिह्न जैसे लगती है। जहाँ यह सुनने को मिलता है, 'दलितों द्वारा दलितों पर दलितों के लिए लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है' तो यह दूसरा प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या गैर दलित द्वारा दलितों के जीवन को लेकर रचित साहित्य कितना भी संवेदनशील और सशक्त हो उसे दलित साहित्य की परिभाषा में सम्मिलित नहीं किया जाएगा? इस पर विचार करते हुए प्रसिद्ध साहित्यकार एवं विचारक भगवान सिंह कहते हैं- "इसमें क्षोभ, असंतोष, ग्लानी और विद्रोह का एक ऐसा विपाक सम्भव है जो सरलीकृत सहानुभूति कातर लेखनों में सम्भव नहीं।"

अतः दलित समस्या पर सवर्ण लेखन और दलित लेखन में अन्तर तो होना स्वाभाविक ही है। समस्त सहानुभूति के बावजूद सवर्ण संवेदनशीलता और क्रूरता को या तो ईमानदारी से रख नहीं सकता या अपने बचाव का रास्ता निकालते हुए रखेगा। कुछ अन्य लेखकों ने दलित साहित्य की परिभाषाएँ निम्न प्रकार दी हैं- "दलितों के लिए, दलितों के द्वारा लिखा जा रहा साहित्य दलित साहित्य है, यह विलास का नहीं आवश्यकता का साहित्य है। सम्पूर्ण विज्ञान उसकी दृष्टि है और पीड़ित मानवता का

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

उद्धार उसके इष्ट है। दलित साहित्य दलितोत्थान साहित्य यानी दलितोत्थान हेतु लिखा गया, एक ऐसा साहित्य है जो भोगे हुए सच पर आधारित है। इसमें विद्रोह है। यह उत्पीड़ित और शोषित लोगों की बेहतरी के लिए दलित लेखकों द्वारा लिखा गया है। दलित साहित्य कल्पनाप्रसूत नहीं हो सकता।

1.4.2 दलित साहित्य का लक्ष्य

साहित्य की मूल संवेदना के साथ-साथ दलित साहित्य मानव की स्वतंत्रता एवं समता की भावना को सर्वोपरि मानता है। इसे हासिल करने के लिए उसका अपना सुनिश्चित लक्ष्य भी है- दलितों को उनकी गुलामी से अवगत कराना और सवर्णों के सामने अपनी पीड़ाओं एवं व्यथाओं का बयान करना।

दलित साहित्य का मूल सूत्र हैं-

- वेदना
- नकार की जिन्दगी
- विद्रोह की भावना

दलित साहित्य के माध्यम से दलित वर्ग में एक जन जागृति पैदा हुई और इसके माध्यम से हमारे भारतीय समाज के दलित वर्ग ने एक नई दिशा प्राप्त की। दलित साहित्य में वेदना एक 'मैं' की वेदना नहीं। वह पूरे बहिष्कृत समाज की वेदना है। इसलिए इस वेदना का स्वरूप सामाजिक बन गया है। दलित साहित्य में 'नकार' और 'विद्रोह' दलितों की वेदना के गर्भ से पैदा हुआ है। जाति प्रथा की विषम व्यवस्था को नकारते हुए समता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व की माँग करने वाली सोच है दलित साहित्य। वेदना और नकार के बाद की अवस्था 'विद्रोह' है। 'मैं मनुष्य हूँ, मुझे मनुष्य के सभी हक मिलने चाहिए।' इस चेतना से इस विद्रोह का जन्म हुआ है।

1.4.3 दलित साहित्य में अनुभव

दलित साहित्य में अभिव्यक्त अनुभव आज तक के किसी साहित्य में व्यक्त नहीं हुए हैं। यह अनुभव जाति विशेष के अनुभव हैं। इसलिए यह अनुभव एक व्यक्ति का होते हुए भी पूरी जाति का प्रतिनिधित्व करता है। दलित साहित्य में अनुभव स्वतंत्रता की आकांक्षा से व्यक्त होने के कारण उसका स्वरूप 'मैं' होने की अपेक्षा 'हम' जैसा है। इसलिए दलित लेखन को जन साहित्य Mass Literature कहा जाता है।

दलित साहित्य में अनुभवों को निम्न तत्वों के आधार पर प्रकट किया जाता है -

- मनुष्य को मनुष्य की तरह बर्ताव न किए जाने की वेदना की अभिव्यक्ति करना।
- आत्मसम्मान के विरोध में आने वाली परंपराओं और धर्म को नकारना।

1.4.4 दलित साहित्य में वेदना

हिन्दू धर्म व्यवस्था ने हज़ारों वर्षों से दलितों को सत्ता, संपत्ति और प्रतिष्ठा से वंचित रखा। दलित इस व्यवस्था के विरुद्ध बगावत न करें इसलिए यह व्यवस्था ईश्वर ने बनाई है ऐसा सिद्धांत प्रचारित किया गया। दलितों की हज़ारों पीढ़ियाँ यह अन्याय सहन करती हुई जा रही है। दलितों की यह वेदना ही दलित साहित्य का जन्मदात्री है। वह वेदना एक की नहीं, हज़ारों की है, हज़ारों वर्षों की है। पूरे बहिष्कृत समाज की वेदना है। इसलिए इस वेदना का स्वरूप सामाजिक बन गया है।

1.4.5 दलित साहित्य में नकार और विद्रोह

दलित साहित्य में व्यक्त नकार और विद्रोह उनके ऊपर लादी गई अमानवीय व्यवस्था के विरुद्ध है। जैसे दलित साहित्य में वेदना सामूहिक स्वर में व्यक्त होता है वैसे ही यह विद्रोह, यह नकार समाज में व्याप्त विषम व्यवस्था को नकारते हुए समता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व की मांग करने वाली सोच है। वेदना और नकार के बाद की अवस्था विद्रोह है। "मैं मनुष्य हूँ, मुझे मनुष्य के सभी हक मिलने चाहिए।" इस चेतना से इस विद्रोह का जन्म हुआ।

1.4.6 दलित साहित्य में प्रतिबद्धता

दलित लेखक लिखते समय अपने अनुभवों को आधार बनाता है। उसके लेखन में एक अवधारणा हमेशा मुखर होती है कि इसके विरुद्ध विद्रोह करना है, नकारना है, निर्माण करना है। चूँकि पूर्व निश्चित अवधारणा से प्रेरित होकर दलित लेखक लिखता है इसलिए उसका लेखन सोद्देश्य होता है। दलित लेखक सामाजिक जिम्मेदारी से लिखता है। उसकी प्रतिबद्धता के कारण उसकी अभिव्यक्ति पर बुरा प्रभाव पड़ता है। दलित लेखकों को कार्यकर्ता और कलाकार इन दोनों में होने वाली सीमारेखा का ज्ञान होना आवश्यक है।

1.4.7 दलित साहित्य की शिल्पगत प्रवृत्तियाँ

दलित साहित्य प्रामाणिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है। उसके केन्द्र में मानवीय समूह के उस दर्दनाक अतीत को बयान करने की प्रवृत्ति प्रमुख रूप में मौजूद है। दलितों ने अपने जीवन-त्रासदी को अपने जीवन संदर्भों और परिवेशगत बिंब, प्रतीकों और मिथकों के माध्यम से जब प्रकट करना चाहा तो परंपरागत सौंदर्यशास्त्र की चौहद्दियों को स्वाभाविक रूप से पार करना ही पड़ा। पारंपरिक मान्यताओं और आदर्शों से भिन्न दलित साहित्य ने अपना रास्ता चुना है। हिन्दी समीक्षक दलित साहित्य की गुणवत्ता को लेकर कई प्रकार के आरोप लगाते रहे हैं। विशेष रूप से भाषा और शिल्प को लेकर। कुछ आलोचक दलित साहित्य में गन्दी और अश्लील भाषा के प्रयोग की और संकेत करते हैं। शरण कुमार लिंबाले की आत्मकथा का नाम ही अपने में एक गाली है -अक्करमाशी। अक्करमाशी यानी -अवैध संतान। सच तो यह है कि दलित साहित्य ने अपने लिए सहज, सरल और आम बोलचाल की भाषा को अपनाया है।

1.4.7.1 दलित साहित्य की भाषा

दलित साहित्य में अभिव्यक्त जीवन दर्शन आज तक व्यक्त हुए अनुभव संसार की अपेक्षा अलग है। पहली बार साहित्य में एक नया संसार, नया मनुष्य,नया समाज व्यक्त हुआ है। दलित साहित्य का यथार्थ अलग है। इस यथार्थ की भाषा अलग है। यह भाषा दलितों की गँवार, असभ्य भाषा है। यह भाषा शिष्ट संकेत और व्याकरण के नियम न मानने वाली भाषा है। दलित लेखकों ने अपने लेखन के लिए प्रमाण भाषा की बजाय टोली की भाषा का प्रयोग किया है। समाज में शिष्ट लोगों द्वारा लेखन के लिए मान्यता प्राप्त भाषा के रूप में 'प्रमाण भाषा की ओर' देखा जाता है। सच तो यह है कि यह शिष्ट मान्यता दलित लेखकों ने नकारी है, क्योंकि यह शिष्ट मान्यता 'एक दंभ से' भरी हुई है। वास्तविकता तो यह है कि प्रमाण भाषा में दलितों की बोली के सभी शब्द नहीं मिलते हैं।

दलित साहित्य की भाषा गद्यात्मक है जिसमें नकार और विरोध का स्वर मुख्य रूप से उभरता है। उसकी भाषा जटिल संरचना के साथ उन स्थितियों को उभारती है जो मनुष्य का शोषण कर उसे दासता की ओर ले जाती है। दलितों के जीवन की विसंगतियाँ, उत्पीड़न, शोषण और दमन की अभिव्यक्ति के लिए यही भाषा ज्यादा सटीक लगती है। दलित साहित्य की भाषा सिर्फ नकार और विद्रोह की भाषा ही नहीं है बल्कि परिवर्तन की छटपटाहट अपने भीतर संजोयी हुई भाषा है।

1.4.7.2 दलित साहित्य में मिथक

दलित कवियों ने अपनी रचनाओं में मिथकों का भरपूर प्रयोग किया है। अनुभव की अभिव्यक्ति के लिए मिथकों का प्रयोग उपयुक्त है। कर्ण, एकलव्य, शम्बूक आदि नायक की भूमिका में प्रतिष्ठित हुए। पुरातन और पौराणिक मिथकों के द्वारा विद्रोह और विद्रोहात्मक स्वर को अभिव्यक्ति मिली है। डॉ. दयानन्द बटोही की इस कविता में एकलव्य की पीड़ा को अतीत से लाकर वर्तमान से जोड़ा है। आज भी शिक्षा संस्थाओं में द्रोणाचार्य की परंपरा के वाहक अनेकों एकलव्यों की प्रतिभाओं को क्षत -विक्षत कर रहे हैं।

सुनो! द्रोण सुनो!
एकलव्य के दर्द में सनसनाते हुए घाव को
महसूसता हूँ
एकबारगी दर्द हरियाया है
स्नेह नहीं, गुरु ही याद आया है
जिसे मैंने हृदय में स्थान दिया
हाय! अलगनी पर टंगे हैं मेरे तरकश और बाण
तुम्हीं बताओ कितना किया मैंने तुम्हारा सम्मान!
लेकिन! एक बात दुनिया को बताऊँगा
तुम्हीं ने उछलकर
दान में माँगा अँगूठा

(द्रोणाचार्य सुनें: उनकी परम्पराएँ सुनें)

दलित साहित्य जहाँ प्रारंभिक दौर में कविताओं तक सीमित था, सातवें दशक में अनेक दलित रचनाकारों ने कहानी विधा को अपनाया। आज अनेक विधाओं में काम हो रहा है। जहाँ कवि रूप में रचनाकारों ने अपनी पहचान बनाई है, वहीं कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, पत्रकारिता, संस्मरण, नाटक, साहित्यिक टिप्पणियाँ आदि विविध विधाओं में अनेक पुस्तकें आ चुकी हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि दलित साहित्य अपने समय से लड़ते हुए आनेवाले कल की बेहतर ज़िन्दगी के लिए आशावादी

है। तमाम विपरीत परिस्थितियों, चुनौतियों के संकट के बावजूद दलित साहित्य ने अपनी ऊर्जा और संभावनाओं को क्षीण नहीं होने दी है।

Critical Overview / अवलोकन

साहित्य समाज का दर्पण है का प्रचार-प्रसार तो खूब हुआ, लेकिन भारतीय साहित्य के संदर्भ में इस सिद्धांत की व्यावहारिक परिणति नहीं हुई। दलित समुदाय जितना समाज में उपेक्षित रहा, उतना ही साहित्य में भी। समाज में अपने अस्तित्व और साहित्य में अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष दलितों द्वारा लगातार किया जाता रहा, जिसे पहचानने में भारतीयों को काफी समय लगा। उससे भी ज्यादा समय लगा दलितों की पहचान को स्वीकार करने में। दलित साहित्य इसी पहचान के लिए संघर्ष का दस्तावेज़ है।

दलित साहित्य आंदोलन मात्र एक साहित्यिक आंदोलन नहीं है। एक सांस्कृतिक एवं सामाजिक आंदोलन भी है। हज़ारों वर्षों से अंधेरे कुहासे में बंद दलित समाज ज्ञान से वंचित रह रहा है। दलित साहित्य इन शोषितों, पीड़ितों की इच्छाओं, आकांक्षाओं का चित्रण करने वाला साहित्य है। उनके उठकर खड़े होने का संघर्ष, दिन-प्रतिदिन होने वाले अपमान, उनके अनुभव और समूचे घटनाक्रमों को देखने का उनका दृष्टिकोण है। सबका प्रतिबिंब साहित्य में पड़ना अनिवार्य है। साहित्य के साथ दलित शब्द के जुड़ते ही उसकी व्यापकता और अधिक क्रांतिकारी हो जाती है। अर्थ और अधिक व्यंजनात्मक होकर साहित्य की भूमिका और सामाजिक उत्तरदायित्वों को और अधिक विश्लेषित करने की क्षमता हासिल कर लेता है। 'दलित' शब्द विरोध की अभिव्यक्ति का प्रतीक बन जाता है।

Recap / पुनरावृत्ति

- दलित साहित्य समाज सापेक्ष है क्योंकि उसके केन्द्र में व्यक्ति न होकर जन समूह है।
- दलित साहित्य की भाषा सिर्फ नकार और विद्रोह की भाषा ही नहीं है बल्कि परिवर्तन की छटपटाहट अपने भीतर संजोई हुई है।
- दलित लेखक सामाजिक जिम्मेदारी से लिखता है।
- दलितों को अपनी गुलामी से अवगत कराना और सवर्णों के सामने अपनी पीड़ाओं एवं व्यथाओं का बयान करना ही दलित साहित्य का लक्ष्य है।
- जाति प्रथा की विषम व्यवस्था को नकारते हुए समता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व की माँग करने वाली सोच है दलित साहित्य।
- 'मैं मनुष्य हूँ, मुझे मनुष्य के सभी हक मिलने चाहिए।' इस चेतना से विद्रोह का जन्म हुआ है।
- दलित समुदाय जितना समाज में उपेक्षित रहा,उतना ही साहित्य में भी।
- दलित साहित्य में वेदना एक 'मैं' की वेदना नहीं। वह पूरे बहिष्कृत समाज की वेदना है।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. शरण कुमार लिंबाले की आत्मकथा का नाम क्या है?
2. दलित साहित्य को समाज सापेक्ष क्यों कहा जाता है।
3. 1960 तक दलित साहित्य को क्या कहकर उसकी निन्दा की जाती थी।
4. दलित साहित्य का मूल सूत्र क्या-क्या हैं?
5. दलित कवियों ने अपनी रचनाओं में मिथकों का भरपूर प्रयोग क्यों किया है?

6. समाज में शिष्ट लोगों द्वारा लेखन के लिए मान्यता प्राप्त भाषा को क्या कहा जाता है?
7. दलित लेखकों ने अपने लेखन के लिए प्रमाण भाषा की बजाय किस भाषा का प्रयोग किया है?
8. दलित साहित्य को लिटरेचर ऑफ एक्शन क्यों कहा जाता है?
9. हिन्दी समीक्षक दलित साहित्य की गुणवत्ता को लेकर क्या आरोप लगाते हैं?

Answers / उत्तर

1. अक्करमाशी।
2. दलित साहित्य समाज सापेक्ष है क्योंकि उसके केन्द्र में व्यक्ति न होकर जन समूह होता है।
3. गट्टर साहित्य
4. वेदना, नकार की ज़िन्दगी, विद्रोह की भावना
5. अनुभव की अभिव्यक्ति के लिए मिथकों के प्रयोग उपयुक्त ठहरते हैं इसलिए
6. प्रमाण भाषा
7. टोली की भाषा
8. दलित साहित्य को लिटरेचर ऑफ एक्शन कहा जाता है क्योंकि वह मानवीय मूल्यों की भूमिका पर सामन्ती मानसिकता के विरुद्ध आक्रोशजनित संघर्ष है।
9. कुछ आलोचक दलित साहित्य में गन्दी और अश्लील भाषा के प्रयोग की ओर संकेत करते हैं।

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. दलित साहित्य की भाषा पर टिप्पणी लिखिए।
2. दलित साहित्य का लक्ष्य क्या है?
3. दलित साहित्य को नकार और विद्रोह का साहित्य क्यों कहा जाता है।
4. दलित साहित्य को जन साहित्य क्यों कहा जाता है।

Reference सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - डॉ. शरण कुमार लिंबाले
2. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - ओमप्रकाश वाल्मीकि
3. चिन्तन की परंपरा और दलित साहित्य - मैनेजर पांडेय
4. दलित चिन्तन का विकास - डॉ. धर्मवीर
5. दलित चेतना की पहचान - डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे
6. दलित विमर्श, दशा और दिशा - मुकेश मिरोठा
7. आधुनिकता के आईने में दलित - सं उदयकुकार दुबे

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

BLOCK - 02

हिन्दी साहित्य में आदिवासी

इकाई 1

आदिवासी कौन

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- आदिवासी जनजातियों से परिचित होता है
- आदिवासी इतिहास के बारे में समझता है
- आदिवासी परंपरा से परिचित होता है
- भारत के प्रमुख आदिवासी समुदायों को जानता है
- विश्व आदिवासी दिवस और उनके उद्देश्य की जानकारी प्राप्त करता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

हिन्दी में पिछले दो -तीन दशकों से आदिवासी लेखन चर्चा का विषय बना हुआ है। यही दौर है जिसमें दलित, आदिवासी, स्त्री, ट्रांसजेंडर आदि उत्पीडित एवं हाशिएकृत अस्मिताओं ने साहित्य में बढ़-चढ़कर हिस्सेदारी की। उन्होंने साहित्यिक आन्दोलन चलाये। आदिवासी विमर्श और आन्दोलन इनमें नवीनतम है। इन आन्दोलनों ने साहित्य को नई धारा दी और समाज को नयी दिशा प्रदान की। आदिवासी विमर्श चर्चा का विषय बनने के पहले बाहरी समाज आदिवासी दुनिया के बारे में बहुत कम जानता था।

मूलवासियों अथवा आदिवासियों को कभी भी अंतर्राष्ट्रीय नागरिक नहीं माना गया। उन्हें या तो राज्यों में आरक्षित राज्य क्षेत्रों तक रखा गया और सरकार द्वारा अपनायी गयी दमनकारी नीतियों से उन्हें विलोप होने के लिए उनके भाग्य पर छोड दिया गया, परंतु अब नयी अंतर्राष्ट्रीय सोच है जो उनकी अनूठी जीवन पद्धति को स्वीकारती है। इस इकाई में भारतीय संदर्भ में आदिवासियों के इतिहास से आप परिचित होंगे एवं उनकी परंपराओं और विभिन्न आदिवासी समुदायों पर प्रकाश डाला जाएगा। भारत में अनादि काल से निवास कर रही जातियों के समूह को 'आदिवासी' कहते हैं। भारत में आदिवासियों को 'जनजातीय लोग' के रूप में जाना जाता है। भारत के प्रमुख आदिवासी समुदायों में आंध, गोंड, खरवार, मुण्डा, खड़िया, बोडो, कोल, भील, कोली, सहरिया, संथाल, भूमिज, हो, उरांव, लोहरा, बिरहोर, पारधी, असुर, नायक, भिलाला, मीणा, धानका आदि हैं।

Keywords / मुख्य बिन्दु

मूलवासी, अनुसूचित जनजाति, सांस्कृतिक परिवेश, संविधान में स्थान

Discussion / चर्चा

भारतीय आदिवासियों के बारे में कई लोगों ने भिन्न-भिन्न दृष्टि से अपना मत व्यक्त किया है। सबका मानना है कि आदिवासियों के सन्दर्भ में वस्तुनिष्ठ अध्ययन तो हो रहे हैं लेकिन उनके सवाल आज भी पूर्ण रूपेण हल नहीं हो पाए। उनके प्रश्न ठीक-ठीक समझे नहीं जा पाने के कारण उनका उचित निदान ठीक प्रकार से या सही समय कर पाना संभव नहीं हो सका। कुछ सवालों के हल टूटते समय नए प्रकार के अन्य सवाल खडे हो जाते हैं।

सम्भवतः इन्हीं भिन्न-भिन्न कारणों से आदिवासी समस्याओं का उचित परिणामकारी उपाय मिलना संभव नहीं हो पाया।

साल 2011 की जनगणना के अनुसार देश में फिलहाल अनुसूचित जनजातियों की आबादी 10.45 करोड़ हो चुकी है। पूरे झारखंड में आदिवासियों की आबादी 86, 45, 042 है। इतनी जनसंख्या के होने के बावजूद इस समाज के बारे में आज भी लोगों को वांछितजानकारी नहीं है। लोग आज भी इनकी परंपरा और संस्कृति से अनभिज्ञ हैं।

अदिवासियों की समस्याएँ मुख्यतः दो प्रकार की हैं। अदिवासियों को अपने जीवन के परिवेश एवं परिसर में रहकर पारम्परिक पद्धति से जीवनयापन करते हुए, जो कठिनाईयाँ उत्पन्न हुई, वे पहले प्रकार में आती हैं। दूसरे प्रकार की समस्याएँ वे हैं, जो संपूर्ण भारतीय जीवन के प्रगतिवादी दृष्टिकोण से उत्पन्न हुई हैं जिसके अनुरूप आदिवासी जीवन में बदलाव लाना अनिवार्य समझ गया।

2.1.1 आदिवासी कौन?

'आदिवासी' शब्द दो शब्दों 'आदि' और 'वासी' के मेल से बना है। इसका अर्थ है मूल निवासी। 'आदि' का शाब्दिक अर्थ 'प्रारम्भ' या 'शुरू है' एवं 'वासी' का अर्थ 'निवास करने वाला'। अर्थात जो प्रारम्भ या शुरू से निवास करते आए हैं उन्हें आदिवासी या मूल वासी कहते हैं। भारतीय संविधान में आदिवासियों के लिए 'अनुसूचित जनजाति' शब्द का उपयोग किया गया है। विश्व भर में आदिवासी बिखरे पड़े हैं और विभिन्न नामों से उन्हें पहचाने जाते हैं।

Recognized as 'Aborigines' in Australia as 'Maori' in New Zealand as 'First Nations' in Canada, as 'Indigenous' in the United States as 'Janjatis' in India or as 'Tribes' in Anthropology, as 'Adivasis' in the terminology of Asian activists these variously described communities are far too numerous and dispersed in geographical locations to admit of any single inclusive description.

जनजातीय समुदाय भारतीय उपमहाद्वीप के सबसे पुराने निवासी हैं। आदिवासी समुदायों के पास कोई लिखित धर्म नहीं। उनके पास कोई खास वर्ग विभाजन नहीं है। उनकी कोई जाति नहीं। वे न तो हिंदू हैं और न ही किसान हैं। जनजातियों ने अपनी स्वतंत्रता को हमेशा से बरकरार रखा है। अपनी अलग संस्कृति को बनाए रखने के लिए वे आमतौर पर जंगलों, पहाड़ियों, रेगिस्तानों और मुश्किल स्थानों में रहते थे। आदिवासी लोगों ने समृद्ध रीति-रिवाजों और मौखिक परंपराओं को संरक्षित रखा है। सबसे बड़ी जनजातीय आबादी वाले राज्य मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, गुजरात आदि हैं।

2.1.2 आदिवासी इतिहास

प्राचीन सभ्यताओं से लेकर आधुनिक काल तक जनजातियों ने हमारे समाज को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके मूल में आदिवासी इतिहास है जो यह समझा जाता है कि समय के साथ समुदायों का विकास कैसे हुआ। अधिकांश आदिवासी प्राथमिक धरातल पर जीवनयापन करते हैं। वे सामन्यतः क्षेत्रीय समूहों में रहते हैं और उनकी संस्कृति अनेक दृष्टियों से स्वयंपूर्ण रहती है। इन संस्कृतियों में ऐतिहासिक जिज्ञासा का अभाव रहता है तथा ऊपर की थोड़ी ही पीढ़ियों का यथार्थ इतिहास क्रमशः किंवदंतियों और पौराणिक कथाओं में घुल मिल रहता है। आदिवासी बिल्कुल सरल तरीके से रहते हैं। वे बिल्कुल ही सरल कपड़े पहनते हैं। वे लोग त्योहारों के दौरान पत्तों तथा फूलों से बने वस्त्र पहनते हैं। वे जीविकोपार्जन के लिए जंगल पर निर्भर रहते हैं।

आदिवासी विपरीत स्थिति में जीता है। प्रकृति को नष्ट नहीं करता। वास्तविकता तो यह है कि आदिवासी के इतिहास समाज एवं संस्कृति को ठीक से पहचाने बिना अपने को सभ्य समझने वाले आधुनिक मनुष्य उसे जंगली मनुष्य के फ्राइम में बंद रखता है। उसे समाज और सभ्यता से बहिष्कृत रखता है। लेकिन सच तो यह है कि आदिवासी उनसे अधिक संवेदनशील, अधिक कलात्मक

सहनशील, ताल लय स्वर में पारंगत हैं। वह जीवन का व्यापार नहीं करता। बस जीने के नियम जानता है। आदिवासी अकेला नहीं समूह में रहता है। वह समूह में सोचता है समूह में जीता है। अपने समूह और समाज से जुड़कर, प्रकृति का साथी बनकर जीना ही उनकी शैली और स्वभाव है। दरअसल आदिवासी अपने काम के बल पर सदैव आत्मनिर्भर और स्वावलंबी बनकर रहता है।

2.1.3 आदिवासी परंपरा

प्राचीनकाल से आदिवासियों का जंगल एवं वन प्राणियों से गहरा लगाव रहा है। वे प्राचीनकाल से वन क्षेत्रों में निवास करते हुए जल, जंगल, ज़मीन और वन प्राणियों की रक्षा करते रहे हैं। इसलिए भारतीय संस्कृति में आदिवासियों को धरती पुत्र कहा गया है। आदिवासी का जीवन जंगल की गोद में होता है। उसके जन्म से लेकर मृत्यु तक वे उससे जुड़े रहते हैं। उनकी दैनिकी उसीसे जुडी हुई होती है। जंगल उसकेलिए सबकुछ है। प्रकृति को अपने कब्जे में लाने का लक्ष्य उसका कभी न रहा।

देश में स्वतंत्रता के पश्चात केन्द्र सरकार ने आदिवासी वर्ग के उत्थान के लिये संवैधानिक सुरक्षा प्रदान की। उनकी समस्याओं को दूर करने के लिये संविधान में अनेक प्रावधान भी किये। इसी के अनुरूप मध्यप्रदेश में आदिवासी वर्गों के सर्वांगीण विकास के लिये आदिवासी उपयोजना की रणनीति अपनायी गयी। विभिन्न विकास विभागों के माध्यम से आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, सामाजिक उत्थान एवं अनेक विकास कार्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं। आधुनिक समाज तथा सरकार द्वारा थोपी गयी रीतियाँ और पद्धतियाँ उनके लिए कष्टदायक होती जा रही हैं। अपनी मिट्टी से अलग की विकास योजना उनकी परंपरा के विरुद्ध है। विकास के नाम पर विस्थापित होनेवाला आदिवासी मिट्टी के लिए तडपता है और उसके जीने का अंदाज़ मिट जाता है।

2.1.4 भारत के प्रमुख आदिवासी समुदाय

भारत में आदिवासियों को प्रायः 'जनजातीय लोग' के रूप में जाना जाता है। आदिवासी मुख्य रूप से भारतीय राज्यों जैसे उड़ीसा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, झारखंड नॉर्थ ईस्ट के 8 राज्यों में बहुसंख्यक हैं। गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल में वे अल्पसंख्यक हैं। जबकि भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में बहुसंख्यक हैं, जैसे मिजोरम। भारत सरकार ने इन्हें भारत के संविधान की पांचवी अनुसूची में 'अनुसूचित जनजातियों' के रूप में मान्यता दी है। अक्सर इन्हें अनुसूचित जातियों के साथ एक ही श्रेणी 'अनुसूचित जाति एवं जनजाति' में रखा जाता है।

भारत के प्रमुख आदिवासी समुदायों में आंध, गोंड, खरवार, मुण्डा, खड़िया, बोडो, कोल, भील, कोली, सहरिया, संथाल, भूमिज, हो, उरांव, लोहरा, बिरहोर, पारधी, असुर, नायक, भिलाला, मीणा, धानका आदि हैं। गोंड भारत का सबसे बड़ा आदिवासी समूह है जिसकी आबादी 12 मिलियन से अधिक है। भारत में सर्वाधिक आदिवासी आबादी वाला राज्य - मध्य प्रदेश है। 2011 की जनगणना के अनुसार भील भारत का सबसे बड़ा आदिवासी समूह है। वे भारत की कुल अनुसूचित जनजातीय आबादी का लगभग 38% हैं।

2.1.5 विश्व आदिवासी दिवस

'विश्व आदिवासी दिवस'- इसे पहली बार संयुक्त राष्ट्र महासभा ने दिसंबर 1994 में घोषित किया। जो 1982 में मानवाधिकारों के संवर्धन और संरक्षण केलिए संयुक्त राष्ट्र कार्य समूह की जो पहली बैठक हुई उसी दिन को चिह्नित करता है। आबादी के बारे में जागरूकता बढ़ाने और उनके अधिकारों की रक्षा करने के लिए प्रत्येक वर्ष 9 अगस्त को विश्व के स्वदेशी लोगों का अंतर्राष्ट्रीय दिवस मनाया जाता है। विश्व आदिवासी दिवस के अवसर पर भारत के आदिवासी जल, जंगल, जमीन के संरक्षण में अपनी भूमिका की याद करते हुए प्रकृति के सच्चे सेवक बने रहने की प्रतिबद्धता दोहराते हैं। आदिवासी आबादी के अधिकारों को बढ़ावा देने और उनके मुद्दों पर ध्यान खींचने के लिए यह दिन दुनियाभर में मनाया जाता है। 'जारवा जनजाति' को विश्व की सबसे पुरानी जनजाति माना जाता है जो अभी भी पाषाण युग में जी रही है। जारवा भारत के अंडमान द्वीप समूह का स्वदेशी लोग हैं। वे दक्षिण अंडमान और मध्य अंडमान के कुछ हिस्सों में रहते हैं और उनकी वर्तमान संख्या 250-400 व्यक्तियों के बीच अनुमानित है।

2.1.6 आदिवासियों की विशेषताएँ

'जनजाति' लोगों का एक समूह है जो समान वंशावली और संस्कृति को साझा करते हैं। भारत की जनजातियाँ

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

देश के लगभग सभी राज्यों में फैली हुई हैं। अलग- अलग राज्यों में इनके रीति-रिवाज और रहन सहन भी एकदम अलग होते हैं। जनजातियाँ, भारतीय आबादी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। जनजातीय संस्कृति भारत की अमूर्त राष्ट्रीय विरासत का एक अभिन्न अंग है।

2.1.6.1 आदिवासियों के धार्मिक विश्वास

आदिवासियों का अपना धर्म है। ये प्रकृति-पूजक हैं। वन, पर्वत, नदियों एवं सूर्य की आराधना करते हैं। आधुनिक काल में जबरन बाह्य संपर्क में आने के फलस्वरूप इन्होंने हिन्दू, ईसाई एवं इस्लाम धर्म को भी अपनाया है। अंग्रेजी राज के दौरान बड़ी संख्या में ये ईसाई बने तो आजादी के बाद इनके हिंदूकरण का प्रयास तेजी से हुआ है। परंतु आज ये स्वयं की धार्मिक पहचान के लिए संगठित हो रहे हैं। भारत में आदिवासियों को दो वर्गों में अधिसूचित किया गया है- अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित आदिम जनजाति।

2.1.6.2 आदिवासी भाषाएँ

भारत में सभी आदिवासी समुदायों की अपनी विशिष्ट भाषाएँ हैं। भाषाविज्ञानियों ने भारत के सभी आदिवासी भाषाओं को मुख्यतः तीन भाषा परिवारों में रखा है- गोंडी, द्रविड़, आस्ट्रिक। लेकिन कुछ आदिवासी भाषाएँ भारोपीय भाषा परिवार के अंतर्गत भी आती हैं। आदिवासी भाषाओं में 'भीली' बोलने वालों की संख्या सबसे ज्यादा है जबकि दूसरे स्थान पर 'गोंडी' भाषा और तीसरे स्थान पर 'संथाली' भाषा है। चौथे स्थान पर कोरकू भाषा है। भारतीय राज्यों में एकमात्र झारखण्ड में ही 5 आदिवासी भाषाओं - संथाली, मुण्डारी, हो, कुड़ुख और खड़िया - को 2011 में द्वितीय राज्यभाषा का दर्जा प्रदान किया गया।

भारत की 114 मुख्य भाषाओं में से 22 को ही संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया है। इनमें हालही में शामिल की गयी संथाली और बोड़ो ही मात्र आदिवासी भाषाएँ हैं। अनुसूची में शामिल संताली (0.62), सिंधी, नेपाली, बोड़ो (सभी 0.25), मिताइ (0.15), डोगरी और संस्कृत भाषाएँ एक प्रतिशत से भी कम लोगों द्वारा बोली जाती हैं। जबकि भीली (0.67), गोंडी (0.25), टुलु (0.19) और कुड़ुख 0.17 प्रतिशत लोगों द्वारा व्यवहार में लाए जाने के बाद भी आठवीं अनुसूची में दर्ज नहीं की गयी हैं।

Critical Overview / अवलोकन

जनजाति, उस सामाजिक समुदाय को कहा जाता है जो राज्य के विकास से पहले अस्तित्व में था, लेकिन वह राज्य के बाहर निवास करता है। भारत के संविधान में अनुसूचित जनजाति शब्द का प्रयोग हुआ है। इसलिए इसके लिए विशेष प्रावधान लागू किए गए हैं। जनजाति, भारत के आदिवासियों के लिए इस्तेमाल होने वाला एक वैधानिक शब्द है।

आदिवासी का शाब्दिक अर्थ 'मूलवासी' होता है। संविधान में आदिवासियों के लिए 'अनुसूचित जनजाति' शब्द प्रयुक्त है। आदिवासी लोग क्षेत्रीय समूहों में रहते हैं और उनकी संस्कृति अनेक दृष्टियों से स्वयंपूर्ण है। आदिवासी प्राचीनकाल से वन क्षेत्रों में निवास करते हुए जल, जंगल, जमीन और वन प्राणियों की रक्षा करते रहते हैं।

Recap / पुनरावृत्ति

- आदिवासी-मूलवासी
- अधिकतर जंगलों में वास
- अनुसूचित जनजाति का पद
- धरती पुत्र नाम से प्रसिद्ध
- उत्थान के लिये संवैधानिक सुरक्षा
- प्रमुख आदिवासी समुदाय
- विश्व आदिवासी दिवस
- सरल तरीके से जीनेवाले

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. आदिवासी शब्द का अर्थ क्या है?
2. संविधान में आदिवासियों के लिए प्रयुक्त शब्द कौन-सा है?
3. सबसे बड़ी जनजातीय आबादी वाले राज्य कौन-सा है?
4. आदिवासियों की संस्कृति कैसी है?
5. धरती पुत्र किसे कहा गया है?
6. भारत का सबसे बड़ा आदिवासी समूह कौन-सा है?
7. किस दिन को विश्व आदिवासी दिवस मनाया जाता है?
8. किस जनजाति को विश्व की सबसे पुरानी जनजाति मानी जाती है?
9. आदिवासी भाषाओं में कौन सी भाषा बोलने वालों की संख्या सबसे ज्यादा है?

Answers / उत्तर

1. मूल निवासी
2. अनुसूचित जनजाति
3. मध्यप्रदेश
4. स्वयंपूर्ण
5. आदिवासियों को
6. भील
7. हर साल 9 अगस्त को
8. जारवा जनजाति
9. आदिवासी भाषाओं में 'भीली' बोलने वालों की संख्या सबसे ज्यादा है

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. आदिवासी कौन है? भारत के प्रमुख आदिवासी समुदाय के बारे में लेख लिखिए।
2. विश्व आदिवासी दिवस क्यों मनाते हैं?
3. आदिवासी कौन है?
4. आदिवासी परंपरा के बारे में आप क्या जानते हैं?
5. आदिवासी इतिहास के बारे में टिप्पणी लिखिए।

Reference सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. आदिवासी साहित्य दशा एवं दिशा - डॉ. फ़िरोज खान, डॉ. शगुफ्ता नियाज़।
2. आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह - रमणिका गुप्ता
3. हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन - डॉ. आकांक्षा श्रीवास्तव

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

इकाई 2

भारत में आदिवासी समस्याएँ

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- आदिवासी जनजातियों से परिचित होता है
- आदिवासियों की सामाजिक जीवन के बारे में समझता है
- आदिवासियों की सांस्कृतिक दशा से परिचित होता है
- आदिवासियों की भाषायी समस्या से अवगत होता है
- आदिवासियों की शिक्षा सम्बन्धी समस्याएँ जान पाता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

हमारे देश के विभिन्न अंचलों में निवास करनेवाले अलग-अलग आदिवासी समुदायों की समस्याएँ भौगोलिक दृष्टि से अलग-अलग हैं। आदिवासियों में अशिक्षा उनके विकास में एक बड़ी बाधा है। उचित चिकित्सा और स्वच्छता सुविधाओं की कमी और गरीबी के कारण आदिवासियों में स्वास्थ्य और पोषण की समस्या साधारण है। इसके अलावा हाशिएकरण, अंधविश्वास, नक्सलवाद आदि समस्याएँ इन्हें शोषण का शिकार बनाते हैं।

Keywords / मुख्य बिन्दु

आदिवासी समस्याएँ, भूमि हस्तांतरण, अंधविश्वास, भूख और गरीबी, बेरोजगारी

Discussion / चर्चा

आदिवासियों के बीच विशिष्ट संस्कृति, भौगोलिक अलगाव आदि के कारण बड़े समुदाय के साथ के संपर्क में शर्म और पिछड़ापन उत्पन्न होते हैं। परिणामस्वरूप, उन्हें जीवन भर अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। भारत में जनजातीय या आदिवासी समस्याएं अनेक हैं जिनमें विभिन्न सामाजिक समस्याएं शामिल हैं।

2.2.1 भारत में आदिवासी समस्याएँ

भारत में अलग-अलग आदिवासी समुदाय हैं। ये आदिवासी समुदाय हमारे देश के विभिन्न अंचलों में निवास करते हैं। इन आदिवासी समुदायों की समस्याएँ भौगोलिक क्षेत्रों से जुडी हुई हैं। लद्दाख, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मणिपुर और मिजोरम, मेघालय के आदिवासी समुदाय मुख्य रूप से पहाड़ों पर निवास करते हैं। हमारे संविधान में नागरिकों के अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए एक से बढ़कर एक अधिनियम तो बनाये गए हैं। लेकिन जब उन अधिनियमों को आदिवासी समाज पर क्रियान्वित करने का समय आता है तो वे अधिनियम महज छलावा साबित होते हैं।

2.2.1.1 सामाजिक समस्या

भूख, गरीबी, तीव्र जनसंख्या वृद्धि और तकनीकी विकास के कारण आदीवासी क्षेत्र में सामाजिक-आर्थिक हस्तक्षेप काफी बढ़ गए है। शहरी और सभ्य समाजों के सम्पर्क के कारण आदिवासियों में बाल – विवाह, आदिवासी कन्याओं का अपहरण और उनका बलात्कार आदि कई

सामाजिक समस्याओं ने भी जन्म लिया है। जनजातियों की निर्धनता का लाभ उठाकर ठेकेदार, साहूकार, व्यापारी एवं कर्मचारी उनकी स्त्रियों के साथ अनुचित यौन सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं जिससे वेश्यावृत्ति तथा विवाहेतर यौन सम्बन्ध की समस्याएं पनपी हैं।

2.2.1.2 आर्थिक समस्या

वर्तमान सांस्कृतिक सम्पर्क एवं नवीन सरकारी नीति के कारण आदिवासी लोगों को आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। जनजाति समाज की प्रमुख समस्या ऋणग्रस्तता है। सरकार ने इसे समाप्त करने के लिए कई कानून बनाये हैं लेकिन इसकी उपेक्षा करके लोग आदिवासियों की जमीनों को हड़प रहे हैं। भूमि सम्बन्धी सरकार की नयी नीति के कारण जंगलों को काटना मना कर दिया गया। अनेक क्षेत्रों में शिकार करने व शराब बनाने में भी नियन्त्रण लगा दिया गया। इसलिए आदिवासियों को जीवनयापन के परम्परागत तरीकों के स्थान पर नवीन तरीकों को अपनाना पडा। उन्हें जंगलों से लकड़ी काटने, स्थानान्तरित खेती करने एवं अन्य वस्तुओं को प्राप्त करने की मनाही कर दी गयी। वे विवश होकर अपने मूल निवास को त्याग कर चाय बागानों, खानों और फैक्ट्रियों में काम करने के लिए चले गये। अब वे भूमिहीन कृषि श्रमिकों एवं औद्योगिक श्रमिकों के रूप में कार्य करने लगे। इन लोगों की मजबूरी का लाभ उठाकर ठेकेदार एवं उद्योगपति इनसे कम मजदूरी पर अधिक काम लेने लगे। इन लोगों के निवास और कार्य करने की दशाएं भी शोचनीय हैं। इस प्रकार से इनका आर्थिक शोषण किया गया है।

2.2.1.3 राजनीतिक समस्या

आदिवासियों की समस्याएँ उनके विकास में बाधक हैं। परन्तु यह बिलकुल भी नहीं कहा जा सकता कि सभी समस्याएँ गैर आदिवासी समाज द्वारा दी गई हैं। कुछ समस्याएँ उन्होंने खुद भी पैदा की हैं। आदिवासी क्षेत्र में राजनीतिक गतिविधियों का मकड़ीजाल अब तेजी से फैलने लगा है। अब तक हरेक जनजातीय राज्य में पंचायतों के आम कानून ही जनजाति क्षेत्रों पर लागू होते रहे हैं। जिससे हमेशा राजनीतिक समस्या बनी रहती है।आदिवासी दलितों से भी अधिक वंचित हैं। हालाँकि दलितों के विपरीत वे लोकतांत्रिक और चुनावी प्रक्रिया के माध्यम से अपनी शिकायतों को प्रभावी ढंग से व्यक्त करने में असमर्थ रहे हैं। राज्य और औपचारिक राजनीतिक व्यवस्था की विफलताओं ने माओवादी क्रांतिकारियों को आगे बढ़ने के लिए जगह प्रदान की है।

2.2.1.4 धार्मिक एवं सांस्कृतिक समस्या

आदिवासी समाज में व्याप्त कुप्रथाओं के कारण उन्हें समस्याओं का सामना करना पड़ता है। चाहे उनके वैवाहिक रीति-रिवाज हो या फिर अंत्येष्टि रिवाज। अधिकांश आदिवासी संस्कृति के प्राथमिक धरातल पर जीवनयापन करते हैं। इन संस्कृतियों में ऐतिहासिक जिज्ञासा का अभाव है। ऊपर की थोड़ी ही पीढ़ियों का यथार्थ इतिहास क्रमशः किंवदंतियों और पौराणिक कथाओं में घुल मिल जाता है। भारत में हिंदू धर्म की संस्कृति इनमें देखी जाती है और वो सनातन के वंशज कहलाते हैं।

2.2.1.5 नस्लीय समस्या

किसी भी व्यक्ति के खिलाफ उनकी त्वचा के रंग, नस्ल या जातीय मूल के आधार पर दिखाया गया भेदभाव ही नस्लीय भेदभाव कहलाता है। व्यक्ति एक निश्चित समूह के लोगों के साथ व्यापार करने, सामूहीकरण करने, या संसाधनों को साझा करने से इनकार करके भेदभाव कर सकते हैं। हमारे देश में नस्लीय समस्या एक मुख्य समस्या है। आए दिन हमें नस्लीय भेद-भाव पर टीका-टिप्पणी सुनने को मिलती रहती है। इस नस्लीय समस्या से सबसे ज्यादा अगर कोई प्रभावित हुआ है तो वह जनजातीय समुदाय है। आदिवासी समुदाय को लोग जंगली, जानवर आदि के नाम से पुकारते हैं। कभी-कभी तो लोग आपस में बात करते हुए टिप्पणी करते हैं यार तुम एकदम आदिवासी जंगली हो क्या? इस तरह की प्रतिक्रिया सभ्य समाज को कतई शोभा नहीं देती है। आदिवासी समुदाय के लोग विद्यार्थी जीवन से लेकर अधिकारी पद तक नस्लीय समस्या से पीड़ित हैं।

2.2.1.6 भाषायी समस्या

हर समाज की अपनी एक भाषा होती है जो उस समाज की सभ्यता और संस्कृति को दर्शाती है। वैसे ही भारत में भी सभी आदिवासी समुदायों की अपनी विशिष्ट भाषा है, जो उसकी संस्कृति, परंपरा और सभ्यताओं को दिखाती है। आज आदिवासी समाज की भाषा एवं लिपि को संजोने की जरूरत है। लिपियों के समाप्त होने से एक समुदाय की

पहचान ख़त्म हो जाती है। आज जरूरत है कि आदिवासी बोली-भाषा को विश्वविद्यालय, विद्यालय के पाठ्यक्रमों में एक विषय के रूप में रखा जाए। तभी इसका संरक्षण संभव है। अब किसी जनजाति भाषा को ले लीजिए इसका साहित्य लेखन प्रचुर मात्रा में है परन्तु इसका विकास नहीं हो पा रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में किसी भी भाषा और साहित्य का विकास उसके लेखकों के साथ-साथ उसके प्रकाशकों और पाठकों की संख्या पर निर्भर करता है।

2.2.1.7 शिक्षा सम्बन्धी समस्याएँ

जनजातियों में शिक्षा का अभाव है और वे अज्ञानता के अन्धकार में पल रही हैं। अशिक्षा के कारण वे अनेक अन्धविश्वासों, कुरीतियों एवं कुसंस्कारों से घिरे हुए हैं। आदिवासी लोग वर्तमान शिक्षा के प्रति उदासीन हैं क्योंकि यह शिक्षा उनके लिए अनुत्पादक है। जो लोग आधुनिक शिक्षा ग्रहण कर लेते हैं वे अपनी जनजातीय संस्कृति से दूर हो जाते हैं और अपनी मूल संस्कृति को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। आज की शिक्षा जीवन निर्वाह का निश्चित साधन प्रदान नहीं करती। अतः शिक्षित व्यक्तियों को बेकारी का सामना करना पड़ता है। ईसाई मिशनरियों ने जनजातियों में शिक्षा के प्रसार का कार्य किया है। किन्तु इसके पीछे उनका उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना और आदिवासियों का धर्म परिवर्तन करना रहा है। अधिकांश आदिवासी प्राथमिक शिक्षा ही ग्रहण कर पाते हैं। उच्च प्राविधिक एवं विज्ञान की शिक्षा में वे अधिक रुचि नहीं रखते।

Critical Overview / अवलोकन

हमारे देश के विभिन्न अंचलों में निवास करनेवाले विभिन्न आदिवासी समुदायों की समस्याएँ अलग अलग हैं। इनमें भूमि हस्तांतरण, सतत खेती, बेरोजगारी की समस्या, मद्यपान की समस्या, भूख, गरीबी, बाल-विवाह, आदिवासी कन्याओं का अपहरण आदि आते हैं। उत्तर और दक्षिण अमरीका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, एशिया तथा अनेक द्वीपों और द्वीपसमूहों में आज भी आदिवासी संस्कृतियों के अनेक रूप देखे जा सकते हैं। अशिक्षा के कारण आदिवासी लोग शोषण का शिकार बनते हैं।

Recap / पुनरावृत्ति

- आदिवासी समुदायों के बीच की समस्याएँ
- अशिक्षा, भूख, गरीबी आदि समस्याएँ
- धार्मिक एवं सांस्कृतिक समस्याएँ
- भाषायी समस्याएँ
- भूमि हस्तांतरण की समस्या
- बेरोजगारी
- अंधविश्वास

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. आदिवासियों के विकास में एक बड़ी बाधा क्या है?
2. सरकार ने क्या समाप्त करने के लिए कई कानून बनाएँ हैं?
3. राज्य और औपचारिक राजनीतिक व्यवस्था की विफलताओं ने किसको आगे बढ़ने के लिए जगह प्रदान की है?
4. आदिवासी किसके कारण अनेक अन्धविश्वासों, कुरीतियों एवं कुसंस्कारों से घिरे हुए हैं?
5. जनजातियों में शिक्षा प्रसार का कार्य किसने किया है?
6. ईसाई मिशनरियों ने जनजातियों में शिक्षा प्रसार का कार्य किया है। इसके पीछे उनका उद्देश्य क्या था?
7. आदिवासी समुदाय अपनी संस्कृति, परंपरा और सभ्यताओं को कैसे दिखाता है?

Answers / उत्तर

1. अशिक्षा
2. ऋणग्रस्तता
3. माओवादी क्रांतिकारियों को
4. अशिक्षा के कारण
5. ईसाई मिशनरियों ने
6. ईसाई धर्म का प्रचार और आदिवासियों का धर्म परिवर्तन करना
7. अपनी विशिष्ट भाषा के द्वारा

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. प्रमुख आदिवासी समस्याएँ।
2. आदिवासियों की आर्थिक एवं सामाजिक समस्याएं क्या-क्या हैं?
3. माओवादी क्रांतिकारियों के आगे बढ़ने के क्या-क्या कारण हैं?
4. उच्च प्राविधिक एवं विज्ञान की शिक्षा में आदिवासी अधिक रुचि नहीं रखते, क्यों?
5. आदिवासियों की भाषायी समस्याएँ क्या-क्या हैं ?

Reference सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. आदिवासी साहित्य दशा एवं दिशा - डॉ. फ़िरोज खान, डॉ. शगुफ्ता नियाज़।
2. आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह - रमणिका गुप्ता
3. हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन - डॉ. आकांक्षा श्रीवास्तव

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

इकाई 3

अस्मितामूलक विमर्श और आदिवासी

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- अस्मितामूलक विमर्शों में आदिवासी विमर्श के स्थान को समझता है
- आदिवासी साहित्य विमर्श की परंपरा से परिचित होता है
- आदिवासी साहित्य की अवधारणा को समझता है
- आदिवासी लेखन की प्रवृत्तियों से परिचित प्राप्त होता है
- आदिवासी साहित्य की वैचारिकी से परिचित होता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

आदिवासी विमर्श बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में शुरु हुआ। इसके केंद्र में आदिवासियों के जल, जंगल, जमीन और जीवन की चिंताएँ हैं। माना जाता है कि 1991 के बाद भारत में शुरु हुए उदारीकरण और मुक्त व्यापार की व्यवस्थाओं ने आदिम काल से संचित आदिवासियों की संपदा के लूट का रास्ता भी खोल दिया। विशाल एवं अत्यंत शक्तिशाली बहुराष्ट्रीय एवं देशी कंपनियों ने आदिवासी समाज को उनके जल, जंगल और जमीनों से बेदखल कर दिया। इसने आदिवासी इलाकों में बड़े पैमाने पर विस्थापन को जन्म दिया। बड़ी संख्या में झारखंड, छत्तीसगढ़, दार्जिलिंग आदि इलाकों से लोग बड़े महानगरों जैसे दिल्ली, कोलकत्ता आदि में आने को विवश हुए। इन आदिवासी लोगों के पास न धन था, न ही आधुनिक शिक्षा थी। शहरों में ये दिहाड़ी मजदूर या घरेलु नौकर बनने को बाध्य हुए।

Keywords / मुख्य बिन्दु

अस्मितामूलक विमर्श, आदिवासी साहित्य, पुरखा साहित्य, लोक साहित्य

Discussion / चर्चा

आदिवासी साहित्य

आदिवासी साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें आदिवासी जीवन, समाज और दर्शन अभिव्यक्त हुए हैं। आदिवासी साहित्य के लिए विश्व में अलग-अलग नामों का प्रयोग हुआ है। भारतीय भाषाओं में इसके लिए सामान्यतयाः 'आदिवासी साहित्य' का प्रयोग किया जाता है। आदिवासी साहित्य की अवधारणा के संदर्भ में तीन प्रकार के मत दिखाई पड़ते हैं, जो इस प्रकार हैं-

2.3.1. आदिवासी विषय पर गैर आदिवासी लेखकों द्वारा लिखा गया साहित्यः-

हिन्दी भाषा में अधिकांश साहित्य गैर-आदिवासी रचनाकारों के द्वारा लिखा जा रहा है। वैसे आदिवासी रचनाओं एवं लेखकों की उपस्थिति बीसवीं शताब्दी के दूसरे या तीसरे दशक से मिलने लगती है, किन्तु वे रचनाएँ एवं लेखक मुख्यधारा के साहित्य में समाहित नहीं किए गये हैं। पहली अवधारणा गैर-आदिवासी लेखकों की है। परंतु समर्थन में कुछ आदिवासी लेखक भी हैं। जैसे,

रमणिका गुप्ता, संजीव, राकेश कुमार सिंह, महुआ माजी, बजरंग तिवारी, गणेश देवी आदि गैर-आदिवासी लेखक, और हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो, आईवी हांसदा आदि आदिवासी लेखक।

2.3.2. आदिवासी रचनाकारों द्वारा लिखा गया साहित्य

आदिवासियों ने स्वयं अपनी पीड़ा को अभिव्यक्त करने का लेखन कार्य किया है। उनमें अपनी अस्मिता की छट पटाहट और बैचेनी साफ देखी जा सकती है। ये आदिवासी रचनाकार अपनी मूल भाषा में साहित्य सृजन कर रहे हैं।

2.3.3. 'आदिवासियत' (आदिवासी दर्शन) के तत्वों को समाहित किये हुए लिखा गया साहित्य

आदिवासी साहित्य की अवधारणा को लेकर तीसरा विचार है कि आदिवासी दर्शन को आधार बनाकर लिखा गया साहित्य ही आदिवासी साहित्य माना जाए। जाहिर है आदिवासी दर्शन ही वह तत्व है जो आदिवासी समाज और साहित्य को शेष समाज और साहित्य से अलग करता है। इसलिए जहाँ आदिवासी दर्शन आदिवासी साहित्य की मूल शर्त है वहीं इसे बचाना आदिवासी साहित्य आंदोलन का मुख्य ध्येय है। अतः आदिवासी साहित्य आदिवासी दर्शन पर आधारित साहित्यिक आंदोलन है। आदिवासी परंपरा से यह अपनेलिए ऊर्जा ग्रहण कर लेता है। 21वीं सदी के पहले दशक में ही अकादमिक जगत में अपने अलग साहित्यिक आंदोलन प्रस्तुत करता है।

2.3.4 आदिवासी विमर्श की परंपरा

कोई भी साहित्यिक आंदोलन किसी तिथि विशेष से एकाएक आरंभ नहीं हो जाता। उसके उद्‌भव और विकास में तमाम तरह की परिस्थितियाँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भारत सरकार की नई आर्थिक नीतियों ने आदिवासी शोषण-उत्पीड़न की प्रक्रिया को तेज कर दिया। इसके फलस्वरूप उनके प्रतिरोध का स्वर मुखरित हुआ। समकालीन आदिवासी लेखन और विमर्श का प्रारंभ नब्बे के दशक के बाद से मानते हुए गंगा सहाय मीणा लिखते हैं कि- "1991 के बाद आर्थिक उदारीकरण की नीतियों से तेज हुई आदिवासी शोषण की प्रक्रिया के प्रतिरोधस्वरूप आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक ऊर्जा आदिवासी साहित्य है।" इस संदर्भ में सरिता देवी का मानना है कि "हिन्दी में आदिवासी साहित्य का व्यवस्थित रूप विकास सन 1990 के पश्चात हुआ इससे पूर्व तक साहित्य के क्षेत्र में भी आदिवासी समाज पर बहुत ही कम लिखा गया था। स्वतंत्रता से पहले जो आदिवासी साहित्य लिखा गया है उसमें आदिवासी जीवन की जाँच-पड़ताल बहुत सतही एवं रोमानी दृष्टि से की गई। इस कारण आदिवासी समाज का प्रत्येक संदर्भ रेखांकित नहीं हो पाया। लेकिन बीसवीं सदी के सातवें-आठवें दशक तक आदिवासी साहित्य में जो बदलाव आया तथा उस बदलावों को चित्रित करने वाले साहित्यकारों में कुछ साहित्यकारों ने अथक प्रयास किया है एवं आदिवासी साहित्य को समाज में एक नया मोड़ दिया है।" आदिवासी साहित्य अस्मिता की खोज, दिकुओं के शोषण के विभिन्न रूपों के उद्‌घाटन तथा आदिवासी अस्तित्व एवं अस्मिता के संकट और उसके विरुद्ध हो रहे प्रतिरोध का साहित्य है। आज आदिवासियों में जो चेतना जाग्रत हुई है उसके परिणामस्वरूप नई-नई विचारधाराओं एवं क्रांतियों से उसका परिचय हुआ है। उसके परिप्रेक्ष्य में वह अपनी नई-पुरानी स्थितियों का आंकलन करने लगा है। उससे अपने होने या न होने, अपने अधिकारों की वर्तमान स्थिति, अपने साथ हुए भेदभाव एवं अन्याय के प्रति बोध जाग उठे हैं। यही बोध उसके साहित्य में अभिव्यक्त हो रहा है।

2.3.5. पुरखा साहित्य

आदिवासी दर्शन व साहित्य का मूलाधार पुरखा साहित्य ही है। पुरखा साहित्य आदिवासी समाज में हजारों वर्षों से जारी मौखिक साहित्य की परंपरा है। २०वीं सदी में इसके संकलन, संपादन और प्रकाशन के कार्य भी हुए हैं। आदिवासी चिंतक इस मौखिक परंपरा को मौखिक साहित्य या लोक-साहित्य कहने के बजाय पुरखा साहित्य कहते हैं। दुनिया के तमाम समाजों में लिखित से पहले मौखिक साहित्य की परंपरा रही है। उससे अलगाने के लिए आदिवासी चिंतक आदिवासी मौखिक परंपरा को पुरखा साहित्य कहते हैं। इस प्रक्रिया में वे इसे लोक साहित्य से भी अलग बताते हैं। आदिवासी समाज और संस्कृति में पुरखों का बहुत महत्व है और मौखिक परंपरा में मिलने वाले गीत, कथाएँ आदि भी पुरखों ने ही रची हैं। इसलिए इस मौखिक परंपरा को सम्मिलित रूप में पुरखा साहित्य कहते हैं।

तमाम आदिवासी भाषाओं में पुरखा साहित्य की समृद्ध परंपरा मौजूद है। इसी के माध्यम से हम उनके जीवन-दर्शन, ज्ञान परंपरा, मूल्यों-विश्वासों आदि को जान सकते हैं। इसलिए आदिवासी जीवन को जानने के लिए पुरखा साहित्य को संकलित करना और सहेजना बहुत जरूरी है। संकलन के लिए आदिवासी दर्शन और संबंधित भाषा का ज्ञान जरूरी है।

2.3.6. आदिवासी अस्मिता का प्रश्न

आदिवासियों का आंदोलन अपनी पहचान काआंदोलन है। अपनी पुरातन संस्कृति का ह्रास और उसमें आनेवाली विकृतियों को देखकर साहित्यकार अपना मन खोलता है। वह देखता है कि पश्चिम के हस्तक्षेप के कारण उसकी हीन- भावना गहराती जा रही है और इस मनःस्थिति में 'दिकुओं' के द्वारा उसका इस्तेमाल आसान हो जाता है। ऐसी स्थिति में उसे अपनी ही जमीन एवं अपनी ही बिरादरी के प्रति विश्वासघात नहीं होता। यह आदिवासी-अस्मिता पर उत्पन्न संकट को गहराने का काम करता है।

2.3.7. संयुक्त राष्ट्र महासंघ का घोषणा पत्र

संयुक्त राष्ट्र के घोषणा पत्र के अनुच्छेद 12.1 में विश्व के सभी आदिवासी एवं देशज समुदायों को अपने आदिवासी धर्म के संरक्षण और संवर्धन के लिए प्रावधान निहित किए हैं। इसी घोषणा पत्र के अनुच्छेद 12.2 में विभिन्न सरकार को निर्देश है कि वे इन समुदायों के प्राचीन धर्म को बनाए रखने में हर प्रकार से सहयोग प्रदान करें।

अनुच्छेद-1: आदिवासियों को सामूहिक रूप से अथवा व्यक्तिगत तौर पर, उन सभी मानवाधिकारों और मूल स्वतन्त्रताओं का पूरी तरह उपयोग करने का अधिकार है जो संयुक्त राष्ट्र चार्टर, मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा और अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानून में स्वीकार किये गए है।

अनुच्छेद-2: आदिवासियों और व्यक्तियों, अन्य सभी लोगों एवं व्यक्तियों की भांति ही स्वतंत्र और बराबर है तथा अपने अधिकारों, विशेषकर उनके आदिवासी होने के कारण मिले अधिकारों को इस्तेमाल करने में किसी भी तरह के भेदभाव से मुक्त रहने का अधिकार है।

अनुच्छेद-3: आदिवासियों को आत्मनिर्णय का अधिकार है। इस अधिकार से ही वे अपनी राजनीतिक स्थिति स्वतंत्र रूप से तय कर सकते हैं और अपने आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास के प्रयास कर सकते हैं।

1. यह संघ सभी सदस्यों की समान प्रभुसत्ता के सिद्धान्त पर आधारित है। 2. प्रस्तुत घोषणा पत्र के अनुसार सदस्यों नेअपने ऊपर जिन दायित्वों का भार लिया है उन्हें सभी ईमानदारी के साथ निभाएंगे जिससे कि उन सभी सदस्यों को निश्चित रूप से संघ का सदस्य बनने के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले अधिकार और लाभ प्राप्त हो सकें।

2.3.8. भारत का वन अधिकार कानून

वन क्षेत्र में निवास करने वाली ऐसी अनुसूचित जनजातियों और अन्य परम्परागत वन निवासियों के, जो ऐसे वनों में पीढ़ियों से निवास कर रहे है, किन्तु उनके अधिकारों को अभिलिखित नहीं किया जा सका है, वन अधिकारों और वन भूमि में अधिभोग को मान्यता देने और निहित करने, वन भूमि में इस प्रकार निहित वन अधिकारों को अभिलिखित करने के लिए संरचना का और वन भूमि के संबंध में अधिकारों को ऐसी मान्यता देने ओर निहित करने के लिये अपेक्षित साक्ष्य की प्रकृति का उपबंध करने के लिए भारत सरकार द्वारा वन अधिकार अधिनियम, 2006 पारित किया गया, जो दिनांक 31 दिसम्बर, 2007 से लागू हुआ।

उक्त अधिनियम के अन्तर्गत नियम, 2008 जारी किये गये जो दिनांक 1 जनवरी, 2008 को राजपत्र में प्रकाशित हुए। तदुपरान्त विभिन्न राज्यों एवं स्वयंसेवी संगठनो के सुझाव प्राप्त होने पर इस अधिनियम के क्रियान्वयन में आ रही कठिनाईयों को दूर करने एवं प्रभावी तथा व्यापक ढंग से लागू करने के उद्देश्यों से भारत सरकार ने उक्त नियमों में कुछ संशोधन करते हुए संशोधित नियम 6 सितम्बर, 2012 से जारी किये गये।

Critical Overview / अवलोकन

आदिवासी साहित्य रंग, नस्ल, लिंग, धर्म आदि के पूर्वाग्रहों से भरा पड़ा है जबकि आदिवासी साहित्य और दर्शन में इनके प्रति कोई आग्रह नहीं है। आदिवासी सौंदर्यबोध के अनुसार दुनिया में कुछ भी असुंदर नहीं है। साथ ही आदिवासी साहित्य हर तरह की गैर-बराबरी के खिलाफ है। जब पूरी दुनिया एक संस्कृति और एक भाषा की ओर बढ़ती चली जा रही है, आदिवासी दर्शन मानव

समाज की भाषाई और सांस्कृतिक विविधता के साथ खड़ा है। आदिवासियों का पारंपरिक ज्ञान और साहित्य उनकी अपनी भाषाओं में संरक्षित है। संयुक्त राष्ट्र संघ दुनियाभर के देशज लोगों के हक में उनके आत्मनिर्णय के अधिकार का समर्थन करता है। आदिवासी साहित्य भी आदिवासियों के आत्मनिर्णय के अधिकार के पक्ष में है।

Recap / पुनरावृत्ति

- आदिवासी लेखकों द्वारा लिखा गया विभिन्न साहित्य
- आदिवासी कल्याण केलिए संयुक्त राष्ट्र महासंघ का घोषणा पत्र
- भारत के वन अधिकार कानून का आदिवासियों पर प्रभाव
- संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा उद्घोषित विश्व आदिवासी दिवस

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. आदिवासियों के बारे में लिखे गए साहित्य को क्या कहते हैं?
2. आदिवासी साहित्य किस दर्शन को आधार बनाकर लिखा गया साहित्य है?
3. किस दिन को विश्व आदिवासी दिवस मनाते हैं?
4. वन अधिकार अधिनियम किस दिन से लागू हुआ?
5. 'विश्व आदिवासी दिवस' 9 अगस्त को मनाने की घोषणा संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) ने किस तारीख को की थी।
6. समकालीन आदिवासी लेखन और विमर्श का प्रारंभ कब से मानते हैं?
7. आदिवासी साहित्य को समाज में एक नया मोड़ कब से आया है?
8. आदिवासी विमर्श की शुरुआत कब से हुई?

Answers / उत्तर

1. पुर्खा साहित्य
2. आदिवासियत / आदिवासी दर्शन
3. 9 अगस्त को
4. दिसम्बर, 2007 से
5. 9 अगस्त 1982 को
6. नब्बे दशक के बाद
7. सातवें-आठवें दशक से
8. बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. आदिवासी अस्मिता पर टिप्पणी लिखिए?
2. भारत के वन अधिकार कानून से आप क्या जानते हैं?
3. संयुक्त राष्ट्र महासंघ के घोषणा पत्र की विशेषता क्या है?
4. 'पुरखा साहित्य' किसे कहते हैं?
5. 'आदिवासी विमर्श की परंपरा' पर लेख लिखिए।

Reference सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. आदिवासी साहित्य दशा एवं दिशा - डॉ. फ़िरोज खान, डॉ. शगुफ्ता नियाज़।
2. आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह - रमणिका गुप्ता
3. हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन - डॉ. आकांक्षा श्रीवास्तव

इकाई 4

आदिवासी आन्दोलन

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- आदिवासी आन्दोलन के कारणों को समझता है
- पहाड़िया विद्रोह, चुआर विद्रोह आदि से परिचित होता है
- कोल विद्रोह, मुण्डा विद्रोह आदि से जानकारी प्राप्त होता है
- संथाल विद्रोह, कोया विद्रोह आदि से परिचित होता है
- विभिन्न आदिवासी समुदायों से परिचित होता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

आदिवासी क्षेत्रों में गैर आदिवासी लोगों के घुसपैठ से उन्हें विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जैसे विस्थापन, पारंपरिक आजीविका का नुक्सान आदि। इन शोषणों के कारण आदिवासियों का जीवन मुश्किल में पड़ गया। कालांतर में इन शोषण एवं अत्याचार के खिलाफ वे एकजुट होने लगे। विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न विषयों को लेकर आन्दोलन हुए। अपने परिवार, अगली पीढ़ी एवं परिस्थिति की रक्षा केलिए उन्हें रणस्थली पर उतरना ही पड़ा। उनका विद्रोह ज़्यादातर स्वतः स्फूर्त, छिटपुट और स्थानीय प्रकृति के थे। उनमें स्पष्ट राजनीतिक दृष्टि, विचारधारा एवं सुगठित नेतृत्व का आभास था। उनके आन्दोलनों में दीर्घकालिक रणनीति के वजाय किसी विशेष घटना या शिकायत के प्रति प्रतिक्रिया थी। चुआर आन्दोलन, मंड़ा आन्दोलन, संथाल आन्दोलन आदि प्रमुख आदिवासी आन्दोलन है। अक्सर आदिवासी आन्दोलनों को विभिन्न तरीकों से दबाया गया है। फिर भी इन आन्दोलनों की अपनी प्रधानता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

आदिवासी आन्दोलन

Discussion / चर्चा

आदिवासियों का विद्रोह साहूकारों के शोषण, वन कानूनों के उल्लंघन, सूदखोरी, बेकारी आदि के विरूद्ध था। स्थायी कृषि के विस्तार से आदिवासी क्षेत्रों में गैर आदिवासियों का आगमन हुआ। इन बाहरी लोगों ने उनका शोषण किया। स्थायी कृषि के विस्तार के कारण आदिवासियों की जमीन छिन गई। इससे वे खेतिहर मजदूर बनकर रह गए।

2.4.1 आदिवासी आन्दोलन के कारण

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक आदिवासियों का जंगल में पारंपरिक अधिकार था। जंगल में पैदा होने वाली चीजों का इस्तेमाल करने के उनके अधिकार को मान्यता प्राप्त थी। लेकिन अंग्रेजों की 1884 की वन-नीति ने जंगल में पैदा होने वाली चीजों का इस्तेमाल करने के आदिवासियों के अधिकार में कटौती कर दी। इसके अलावा संचार व्यवस्था-तार, सड़क और रेलपथ सेवा के विकास और एक सामान्य प्रशासनिक व्यवस्था लागू होने से जंगलों की प्राकृतिक अर्थव्यवस्था नष्ट हो गयी। इन विकास प्रक्रियाओं का प्रभाव देश भर के

आदिवासियों पर पड़ा। अंग्रेजी नीतियां आदिवासियों के हितों के प्रतिकूल थीं।जंगलों के अतिक्रमण से जो नुकसान होता था। सरकार उसके लिये आदिवासियों को कभी-कभी मुआवजा देती थी। लेकिन मुआवजे की रकम उन तक नहीं पहुंच पाती थी।क्लर्क, वकील और मुंशी बीच में ही उसे हड़प लेते थे।

2.4.1.1 पहाड़िया विद्रोह

पहाड़िया राजमहल की पहाड़ियों में बसी एक लड़ाकू जनजाति थी। उसने अपने क्षेत्र के अतिक्रमण किये जाने के विरोध में 1778 में सशस्त्र विद्रोह प्रारंभ कर दिया। स्थानीय जनजातीय सरदारों ने इस विद्रोह का नेतृत्व किया। यह विद्रोह अत्यंत हिंसक एवं खूनी था। अंग्रेजों ने इस विद्रोह को निर्दयतापूर्वक कुचल दिया।

2.4.1.2 चुआर विद्रोहः

अकाल, वर्द्धित भू-राजस्व की मांग और दयनीय आर्थिक स्थिति ने मिदनापुर जिले की चुआर जनजाति को हथियार उठाने के लिए प्रोत्साहित किया। ये आदिवासी लोग मूलतः किसान एवं आखेटक थे। यह विद्रोह 1766-1772 तक चला और 1795 और 1816 के बीच पुनः उठ खड़ा हुआ। चुआर मानभूम और बारभूम में सक्रिय थे, विशिष्ट रूप से बारभूम और घाटशिला की पहाड़ियों के बीच। उन्होंने अपनी भूमि को एक प्रकार के सामंतवादी काल में रखा। लेकिन वे घनिष्ठ रूप से अपनी मिट्टी से जुड़े नहीं थे। चुआर के नेताओं में माधव सिंह, राजा बारभूम का भाई, राजा मोहन सिंह, जूरिच के जमींदार और दुलमा के लक्ष्मण सिंह शामिल थे। ('चुआर' शब्द को कुछ इतिहासकार अपमानजनक मानते हैं, जिन्होंने इस विद्रोह को "जंगल महल का विद्रोह" कहा।)

2.4.1.3 कोल विद्रोह (१८८१)

यह विद्रोह रांची, सिंहभूम, हजारीबाग, पलामू और मानभूम के पश्चिमी क्षेत्रों में फैला था। विद्रोह की आग उस समय सुलगी जब कोल मुखियाओं (मुंडा) से बड़े पैमाने पर जमीन का हस्तांतरण हिंदू, सिख एवं मुस्लिम जैसे बाहरी किसानों को किया गया। इस कार्य से छोटा नागपुर के कोल नाराज हो गए और 1831 में, बुद्धो भगत के नेतृत्व में कोल विद्रोहियों ने हजारों बाहरी किसानों को मार दिया या जला दिया। बड़े पैमाने पर सैन्य अभियान से ही कानून व्यवस्था एवं शांति पुनः स्थापित की जा सकी।

2.4.1.4 मुण्डा विद्रोह (1820-1837)

राजा परहत ने अपनी 'हो' जनजातियों को सिंहभूम एवं छोटा नागपुर जिलों को अंग्रेजों द्वारा हस्तगत करने के विरोध में संगठित किया। यह विद्रोह निरंतर 1827 तक चला जब हो जनजातियों को आत्मसमर्पण के लिए बाध्य किया गया। हालांकि बाद में 1831 में उन्होंने अंग्रेजों की नवीन कृषि राजस्व नीति और उनके क्षेत्र में बंगालियों के प्रवेश के विरोध में फिर से विद्रोह का स्वर बुलंद किया। हालांकि विद्रोह को वर्ष 1832 में क्षीण कर दिया गया पर 'हो' अभियान 1837 तक जारी रहे। मुण्डा काफी लंबे समय तक शांत नहीं रहे। 1899-1900 में, मुण्डों ने रांची के दक्षिण क्षेत्र में बिरसा मुण्डा के नेतृत्व में विद्रोह शुरू किया। 1860-1920 की समयावधि के दौरान का उलगुलान विद्रोह एक महत्वपूर्ण आदिवासी विद्रोह था।

विद्रोह, जो एक धार्मिक आंदोलन के रूप में प्रारंभ किया गया था वह सामंती एवं जमींदारी व्यवस्था के और साहूकारों, वनों के ठेकेदारों के शोषण के विरुद्ध के राजनीतिक बल बन गया। चुनौती उस समय और बढ़ गई जब मुण्डा ने 1879 में छोटा नागपुर पर अपना दावा किया। तब ब्रिटिशों ने सशस्त्र सेना को तैनात किया। बिरसा को पकड़कर जेल में डाल दिया।

2.4.1.5 संथाल विद्रोह (1855-56)

संथाल कृषि करने वाली जनजाति है। उनके निरंतर दमन ने जमींदारों के विरुद्ध के विद्रोह को जन्म दिया। साहूकारों ने, जिन्हें पुलिस का समर्थन प्राप्त था, जमींदारों का साथ दिया और किसानों पर अत्याचार किया। उन्हें भूमि से बेदखल किया। यह विद्रोह ब्रिटिश शासन विरोधी आंदोलन में परिवर्तित हो गया। सिद्धू एवं कान्हू के नेतृत्व में संथालों ने कंपनी शासन के अंत की घोषणा कर दी। भागलपुर तथा राजमहल के बीच के क्षेत्र को स्वायत्त घोषित कर दिया। विद्रोहियों को 1856 तक कुचल दिया गया।

2.4.1.6 खोंड विद्रोह (1837-1856)

1837 से 1856 के बीच ओडिशा से आंध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम और विशाखापट्नम जिले में विस्तारित पहाड़ी क्षेत्र की जनजाति है खोंड। उनहोंने कंपनी के शासन के विरुद्ध विद्रोह किया। चक्र बिसोई के नेतृत्व में खोंड ने जिनमें चुमसर, कालाहाडी एवं अन्य जनजातियां शामिल

हुई, जनजातीय रीति-रिवाजों में हस्तक्षेप किए जाने, नए कर आरोपित करने और जमींदारों का उनके क्षेत्रों में प्रवेश करने का विरोध किया। चक्र बिसोई का नेतृत्व समाप्त होते ही यह विद्रोह भी समाप्त हो गया।

1914 में ओडिशा क्षेत्र में फिर से खोंड विद्रोह इस आशा से शुरू हुआ कि विदेशी शासन का अंत होगा और वे स्वायत्त सरकार हासिल कर सकेंगे।

2.4.1.7 कोया विद्रोह

पूर्वी गोदावरी क्षेत्र है (आधुनिक आंध्र प्रदेश) कोया। उनमें खोंडा सारा जनजाति के सरदार शामिल हैं। उनहोंने 1803, 1840, 1845, 1858, 1861 और 1862 में विद्रोह किया। टोम्मा सोरा के नेतृत्व में उन्होंने पुनः 1879-80 में विद्रोह किया। पुलिस का दमन एवं महाजनों द्वारा शोषण, नवीन वन कानून तथा वनों पर उनके परम्परागत अधिकारों से इंकार इत्यादि विद्रोह के प्रमुख कारण थे। टोम्मा सोरा की मृत्यु के पश्चात्, 1886 में राजा अनन्तैय्यार के नेतृत्व में एक अन्य विद्रोह संगठित किया गया।

2.4.1.8 भील विद्रोह

भील, जो पश्चिम घाट में रहते थे। 1817-19 के दौरान कंपनी शासन के विरूद्ध विद्रोह किया। बाद में एक सुधारक गोविंद गुरू ने दक्षिण राजस्थान के भीलों के संगठित होने और 1913 तक भील राज के लिए लड़ने में मदद की।

2.4.1.9 कोली विद्रोह

भील के पड़ोस में रहने वाली कोली जनजाति ने 1829, 1839 और दोबारा 1844-48 के दौरान कंपनी शासन के विरूद्ध विद्रोह किया। उनकी नाराजगी उन पर कंपनी शासन के थोपे जाने के खिलाफ थी। इससे व्यापक पैमाने पर बेरोजगारी फैली और उनके किलों को बर्बाद कर दिया गया।

2.4.2 आदिवासी आंदोलन की विशेषताएँ

समय एवं काल में भिन्नता होने पर भी आदिवासी विद्रोहों में कुछ समान विशेषताएँ थीं। आदिवासियों ने अपने शोषण और दमन का जवाब विद्रोहों और आंदोलनों की शक्ल में दिया।

- आदिवासी पहचान या जातीय समानता इन समूहों की एकता के पीछे थी।
- उन्होंने 'दिकुओं' या बाहरी तत्वों- जमींदारों, महाजनों, ठेकेदारों, मिशनरियों और यूरोपीय सरकारी अधिकारियों को अपना दुश्मन माना। सभी 'बाहरी लोगों' को शत्रु के तौर पर नहीं देखा गया।
- आदिवासियों के परम्परागत सामाजिक-आर्थिक रूपरेखा/ताने-बाने को नष्ट करनेवाले विदेशी सरकार द्वारा आरोपित नियमों से विरोध करते थे।
- अधिकतर विद्रोहों का नेतृत्व मसीहा जैसे व्यक्तियो ने किया, जिन्होंने अपने लोगों को विद्रोह करने को प्रोत्साहित किया और "बाहरी लोगों" द्वारा उन्हें दिए गए दुःखों का अंत करने का वचन दिया।
- आदिवासी आंदोलन शुरूआत से ही अभिशप्त थे, क्योंकि उनके पास अपने शत्रु से युद्ध के लिए परम्परागत हथियार थे। जबकि अंग्रेजों के पास आधुनिक तकनीक पर आधारित हथियार थे।
- आदिवासी आंदोलन ने कई बार हिंसक रूप धारण कर लिया। लेकिन अधिकांश आंदोलनों को तो सरकार ने निर्ममतापूर्वक दबा दिया।

कुल मिलाकर, इन आंदोलनों का रंग सामाजिक और धार्मिक था। लेकिन ये विद्रोह उनके अस्तित्व से संबंधित मुद्दों को लक्ष्य कर किये गये थे।

Critical Overview / अवलोकन

आदिवासियों के इन आंदोलनों को गांधी के प्रभाव और 'राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम की भारतीय चेतना' से उपजा आंदोलन ही नहीं बताया है, सिद्ध भी किया है। जबकि सच्चाई यह है कि आदिवासी क्षेत्रों में गांधीवादियों, सोशलिस्टों और वामपंथियों के नेतृत्व में 'भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन' 1920 के बाद उभरता है। इंदुलाल याज्ञिक, अमृतलाल विठ्ठलदास ठक्कर, जुगतराम चिमनलाल दवे और बालासाहब गंगाधर खेर, ये चारों गांधी के विख्यात और सुप्रचारित 'आदिवासी कमांडर' हैं, जो आदिवासी इलाकों और आंदोलनों में 'घुसपैठ' करते हैं।

Recap / पुनरावृत्ति

- आदिवासी आन्दोलन के कई कारण हैं।
- बाहरी लोगों के शोषण के कारण आदिवासियों की जमीन छीन गई, जिससे वे खेतिहर मजदूर बनकर रह गए।
- अंग्रेजों की 1884 की वन-नीति ने जंगल में पैदा होने वाली चीजों का इस्तेमाल करने के आदिवासियों के अधिकार में कटौती कर दी।
- अकाल, वर्द्धित भू-राजस्व मांग और दयनीय आर्थिक स्थिति ने आदिवासियों को हथियार लेने केलिए प्रेरित किए।
- आदिवासियों ने अपने शोषण और दमन का जवाब विद्रोहों और आंदोलनों की शक्ल में दिया।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. आदिवासियों का जंगल में पारंपरिक अधिकार कब तक था?
2. जंगल में पैदा होने वाली चीजों को इस्तेमाल करने के आदिवासियों के अधिकार में कैसे कटौती कर दी?
3. आदिवासी लोग मूलतः कौन थे?
4. मुण्डा विद्रोह किसके नेतृत्व में शुरू किया?
5. सिद्धू एवं कान्हू के नेतृत्व में, कौन -सा विद्रोह चलाया गया?
6. भील के पड़ोस में रहने वाली जनजाति कौन-सा है?
7. आदिवासियों की जमीन छीन गई, जिससे वे खेतिहर मजदूर बनकर रह गए। कैसे?
8. पूर्वी गोदावरी क्षेत्र कहाँ स्थित है?

Answers / उत्तर

1. उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक
2. 1884 की वन-नीति से
3. किसान एवं आखेटक
4. बिरसा मुण्डा के नेतृत्व में
5. संथाल
6. कोली
7. बाहरी लोगों के शोषण के कारण
8. आधुनिक आंध्र प्रदेश में

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. आदिवासी आन्दोलन के कारण क्या-क्या हैं?
2. विभिन्न आदिवासी आन्दोलनों के बारे में लेख तैयार करें।
3. पहाड़िया विद्रोह क्या है? इसका कारण क्या है?
4. धुआर विद्रोह पर लेख लिखें?
5. संथाल विद्रोह क्या है? इसका कार्यक्षेत्र कहाँ है?

Reference सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. आदिवासी साहित्य दशा एवं दिशा - डॉ. फ़िरोज खान, डॉ. शगुफ्ता नियाज़।
2. आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह - रमणिका गुप्ता
3. हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन - डॉ. आकांक्षा श्रीवास्तव

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

BLOCK - 03

दलित साहित्य - आत्मकथा

SGOU

इकाई 1

दलित आत्मकथा-सामान्य परिचय

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- दलित आत्मकथनों के विकास से अवगत होंगे
- भारतीय समाज के संदर्भ में दलित आत्मकथन की अवधारणा को समझ सकेंगे
- दलित आत्मकथनों में अंकित सामाजिक उत्पीड़न के विविध रूप को पहचान पाएंगे
- दलित आत्मकथाओं में निहित मूल स्वर को पहचान पाएंगे

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

आत्म-कथा एक ऐसा दस्तावेज़ है जो लेखक के अनुभवों को प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करता है। अपने जीवन की संघातिक परिस्थितियों को झेलना, सहना और प्रतिकार की सन्नद्धता संजोना इन सभी को सही अभिव्यक्ति देने के लिए आत्मकथा से अच्छी विधा दूसरी कौन-सी हो सकती है? उपन्यास या कहानी में इतना खुलापन नहीं हो सकता कि विश्वसनीय तरीके से झेले गए संघातों को सीधे-सीधे बयान किया जा सके। कटुता और अन्यमनस्कता जब क्षोभ उत्पन्न करते हैं तब एक ऊर्जावान दलित मन में सभी दबावों को झेलने के उपरांत जो संवेदनशीलता जन्म लेती है, उसको शाब्दिक रूप में आत्मकथा से बेहत्तर ढालने का और कोई तरीका हाथ नहीं लगता। अंतर्मन की कुंठा और खामोश प्रतिक्रिया को मुक्तिचेतना में ढालते हुए दिखाना इसी विधा का सामर्थ्य है। जीवन में घटी घटनाओं को जैसा भोगा, जैसा महसूस किया वैसा ही कह देना कला का हिस्सा भले ही न हो, कोई बात नहीं, परन्तु घटना के पीछे का विचार मंथन तो अपना कुछ अर्थ रखता है, यही कुछ तो है जो उद्देश्य के हिस्से में आता है।

भारत में साठोत्तर कालखंड में दलित साहित्य अपने तेवर उग्र रूप में प्रकट करने लगा। विद्रोह, संघर्ष, निषेध और क्रांति की आवाज़ बुलंद करने लगा। भीषण सामाजिक यथार्थ को उन्होंने उत्तेजनापूर्ण भाषा में प्रस्तुत किया। उन्होंने दलित चेतना को पहचानकर दलित कथा के विस्तार और विकास के लिए दरवाज़े खोल दिए। साठ से पूर्व दलित साहित्य लिखा जाता था, किन्तु उसे दलित साहित्य के रूप में अलग से पहचाना नहीं जाता था। इस कालखंड की कथाओं में संघर्ष और विद्रोह के स्थान पर करुणा और सहानुभूति की मात्रा अधिक थी। आत्मकथा की एक सूक्ष्म परिणति इस उपलब्धि के रूप में होती है कि यह क्षोभ के तीव्र उद्गारों को उनके कारणों सहित, अनुभवों के साथ एकाकार करके उल्लेख्यता प्रदान कर देती है। अपने अनुभवों को उद्गारों के रूप में तब्दील करके जटिलताओं को भी अनूठेपन के साथ इस प्रकार संप्रेषित किया जा सकता है कि लेखक की निजता सार्वभौम रूप धारण कर सके। घटित घटनाओं में से निकलते संघर्ष और मंथन को आत्मकथा ऐसी प्रक्रिया से गुज़रकर उद्घाटित करती है कि संवेदना का क्षेत्र वैयक्तिकता से फैलकर सामुदायिकता के धरातल का हो जाता है। विशेष तौर पर यह जान लेना आवश्यक है कि दलित साहित्य में अनुभव के संदर्भ वैयक्तिक होने के साथ-साथ सामुदायिक भी है। इन वैयक्तिक अनुभवों को सर्जन के स्तर पर प्रामाणिकता के साथ जिस क्षमता से आत्मकथा उतार सकती है, वह अन्य विधा नहीं कर सकती।

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

दलित आत्मकथाओं की बुनियादी आशय चेतना पर गौर करने से पहले यह जानना लाजिमी है कि उनकी संरचना क्यों संभव हुई? कोई रचनाधर्मी दलित प्रतिभा अन्य विधाओं की अपेक्षा आत्मकथा लिखना ही क्यों पसन्द करता है? इस इकाई को पढ़कर आप दलित आत्मकथा का स्वरूप, रचना-विधान, लेखक की वैचारिक प्रतिबद्धता, सामाजिक जीवन की विडंबनाएँ तो समझ पाएंगे ही साथ ही साथ दलित आत्मकथाओं की भाषा और शिल्प विधान को समझने एवं विश्लेषित करने में मदद मिलेगी।

Keywords / मुख्य बिन्दु

अस्मिताबोध, दलित चेतना, ब्राह्मणवाद, अछूतपन, बहिष्कृत

Discussion / चर्चा

साठ के दशक में दलित आत्मकथाओं का आना किसी क्रांति से कम न था। पहले यह मराठी साहित्य में आया फिर हिन्दी साहित्य में। मराठी में दलित चेतना की जो अभिव्यक्ति हुई, उसके मूल में दलित पैंथर और मराठवाड़ा विश्वविद्यालय के नाम विस्तार का आन्दोलन रहा है। आंदोलन ही दलित साहित्य को ऊर्जा देता रहा है। मराठी में दलित आत्मकथनों ने जिस विद्रोही चेतना, अस्मिताबोध, इतिहास बोध और भविष्य दृष्टि दी है, उसी का विस्तार हिन्दी के दलित आत्मकथनों में हम देखते हैं। सामाजिक बदलाव की इस धारा का किसी ने समर्थन किया तो किसी ने विरोध, कहीं सहमति थी तो कहीं असहमति। दलित चेतना इन आत्मकथाओं का प्राण है। इन आत्मकथनों का प्रयोजन एकदम स्पष्ट है। समाज में चली आ रही विषम सामाजिक व्यवस्था और शोषण के तरीकों को बेनकाब करना। दलित आत्मकथाओं पर अपनी पैनी नज़र दौड़ाने से उन के मर्म को समझा जा सकता है। जीवन के भोगे हुए यथार्थ का स्पष्ट प्रतिफलन इनमें झलकता है। ये आत्मकथाएँ बंधुता, समता, स्वतंत्रता और सामाजिक व्यवस्था को संतुलित बनाये रखने पर ज़ोर देती हैं। दलित आत्मकथन किसी की सहानुभूति हासिल करने के लिए नहीं बल्कि रचनात्मक अभिव्यक्ति द्वारा ब्राह्मणवाद के षड़यंत्र से हमें अवगत कराते हैं। सदियों से हाशिए पर रहे इन्सान ने अपने दारुण अनुभवों को सृजनात्मक रूप में समाज के सामने रखकर साहित्य, समाज और संस्कृति को आइना दिखा दिया है। मानवता को शर्मसार करने वाली नीति, धर्म, परंपरा, पूर्वजन्म, भाग्यवाद जैसे मिथ्या विचारधारा को दलित आत्मकथनों ने बेनकाब किया है।

आत्मकथन की सहज एवं सरल परिभाषा है 'आत्मा की सत्य कथा' अर्थात मनुष्य के जीवन की यथार्थ तथा सत्य घटना पर आधारित कथा जिसमें कल्पना का कोई अस्तित्व नहीं होता। अपने जीवन की कथा को निर्वैयक्तिक होकर ज्यों का त्यों कह देना आत्मकथा की अनिवार्य शर्त होती है। मनुष्य के अनुभवों को अभिव्यक्त करने का यह एकमात्र साहित्यिक माध्यम है। साहित्य को समाज का दर्पण भले ही कहा जाता रहा हो, मगर इस दर्पण का आयतन इतना छोटा, इतना चयन धर्मी रहा कि उसमें दलित समाज कहीं दिखता ही नहीं। जब दलित लेखकों ने आत्मकथन लिखने की शुरुआत की तो इस दर्पण का दायरा ही नहीं बढ़ा, साहित्य की प्रकृति, वाङ्मय-विमर्श का स्वभाव भी बदल गया। भूख, गरीबी और अछूतपन में डूबी ज़िन्दगी जब आत्मकथन के रूप में आई तो पारंपरिक साहित्य के अभ्यासी व पाठक हतप्रभ रह गए और आलोचक हक्के-बक्के।

जातिवादी सामाजिक संरचना ने उत्पीडन के अनगिनत तरीके ईज़ाद किए हैं। साहित्य में पहले इन तरीकों की अभिव्यक्ति अत्यल्प रही है। सवर्ण नज़रिए से देखा गया गाँव उत्पीड़न की मौजूदगी को स्वाभाविक रूप से नज़रअंदाज़ करता रहा है। साहित्य के समूचे इतिहास में दलित आत्मकथनों ने दलित बस्ती का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया। यह एक उल्लेखनीय परिघटना थी। जाति आधारित भेदभाव और उत्पीडन को वैधता देने का काम हिन्दू धर्मशास्त्रियों ने किया।

3.1.1 दलित आत्मकथाओं की रचना प्रक्रिया

दलित आत्मकथाओं की रचना प्रक्रिया को समझने के लिए कुछ बुनियादी बातों की चर्चा ज़रूरी है जिनमें से चार मुख्य बिन्दु हैं -

- वेदना एवं नकार
- विद्रोही चेतना
- इतिहास बोध
- भविष्य दृष्टि

प्रथम चरण में दलित समाज की वेदना का चित्रण हुआ और उस वेदना को जन्म देने वाली परिस्थिति विशेषकर उत्पीड़न का। दलित कथा व्यथा की कथा है। वह मनुष्य के सामाजिक अन्याय,अत्याचार और शोषण कि अमानुषी रूढ़ियों से उपजी पीड़ा है। अंधी व्यवस्था की यंत्रणा से उत्पन्न यातना है। अपमान बोध को जगाते, वेदना की गहनता को बढाते, उत्पीड़न के अनुभवों को फिर से याद करके रचनात्मक अभिव्यक्ति तक पहुँचाना वास्तव में असीम पीड़ा को फिर से भोगना है। दलित आत्मकथाओं में व्यक्त वेदना समूह स्वर में व्यक्त होने वाले सामाजिक स्वरूप की है। दूसरे दौर में दुखदायी व्यवस्था को नकारा गया। यह नकार और विद्रोह भी सामाजिक और समूह स्वरूप का है। जिस प्रस्थापित विषम व्यवस्था ने दलितों का शोषण किया, उस व्यवस्था को दिया गया यह नकार है। उस विषम व्यवस्था को नकारते हुए समता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व की मांग करने वाली सोच इसमें निहित है। यह नकार वास्तव में न्यायपरक प्रतिकार है। इसके बाद इस व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह का स्वर बुलंद हुआ। अगले चरण में यह चिंतन प्रमुख हुआ कि हमारी स्थिति ऐसी हुई क्यों? इस क्यों का विश्लेषण करते हुए वर्तमान दौर में भविष्य दृष्टि या विज़न निर्माण पर विशेष बल दिया जाने लगा है।

3.1.1.1 दलित आत्मकथाओं का मूल स्वर

- वर्ण व्यवस्था का विरोध
- ईश्वरीय अवधारणा का विरोध
- पुनर्जन्म एवं भाग्यवाद का विरोध

वर्ण व्यवस्था का विरोध

भारत में सभी प्रकार के शोषणों, उत्पीड़नों तथा विषमताओं का मूल कारण वर्ण व्यवस्था है। वर्ण व्यवस्था का पहला उल्लेख प्राचीनतम वेद ऋग्वेद के दसवें मंडल के पुरुष सूक्त में मिलता है। वेद की ऋचाओं में यह कहा गया है कि ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रीय बाहु से, वैश्य उसकी जंघाओं से और शूद्र उसके पैरों से उत्पन्न हुए हैं। वेदों में यह भी कहा गया है कि शूद्रों को यज्ञोपवीत का अधिकार नहीं है। मनुस्मृति के अनुसार नियंता ने विश्व की समृद्धि हेतु मुख, बाहु, जंघा और चरणों से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य एवं शूद्र को उत्पन्न किया। ब्राह्मण, क्षत्रीय और वैश्य द्विज कहलाते हैं जबकी चौथा वर्ण शूद्र का एक ही बार जन्म होता है। धर्म ग्रंथों में वर्ण व्यवस्था का प्रारंभिक आधार कर्म माना जाता है परन्तु धीरे-धीरे यह जाति व्यवस्था के रूप में, अर्थात् जन्म के आधार पर निश्चित हो गया। वर्ण व्यवस्था एवं जाति व्यवस्था के विकास ने समाज को कई हिस्सों में बाँट दिया। चौथे वर्ण शूद्र को सामाजिक बहिष्कार, उत्पीड़न, शोषण एवं छूआछूत जैसी सामाजिक बुराईयों का सामना करने हेतु मज़बूर होना पड़ा। हिन्दी दलित साहित्य जाति के आधार पर समाज एवं उसके कार्यों के विभाजन का प्रखर विरोधी है। दलित आत्मकथाओं में वर्ण व्यवस्था एवं उससे उत्पन्न जाति विधान के विरुद्ध गहरा आक्रोश दिखाई देता है।

ईश्वरीय अवधारणा का विरोध

ईश्वर की अवधारणा संसार के लगभग सभी धर्मों इस्लाम, ईसाई, यहूदी, हिन्दू तथा अन्य में पाई जाती है। हिन्दू धर्म व्यवस्था में तो पूरी चिंतन प्रणाली ईश्वरवाद से जुड़ी हुई है। ईश्वरवाद एवं अवतारवाद ऐसे औज़ार रहे हैं जिनके द्वारा शूद्रों एवं दासों का निरंतर शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक रूप से सदियों तक शोषण किया गया। संसार की सारी घटनाओं को ईश्वर की इच्छा का परिणाम बताया गया। इस प्रकार इससे मनुष्य की सांसारिक भूमिका को निष्क्रिय कर दिया गया। धर्म के माध्यम से ईश्वर द्वारा वर्ण विधान की स्थापना की बात की गयी क्योंकि वेदों को ईश्वर कृत बताया गया। संक्षेप में ईश्वर को मूल में रखकर ऐसी धार्मिक एवं सामाजिक षड्यंत्रों की रचना की गयी जिससे एक बहुत बड़ी आबादी को सदियों तक संताप झेलना पड़ा। ईश्वर की इस तरह की प्रतिष्ठा ने हिन्दू धर्म को मानव कल्याण और सामाजिक न्याय जैसी आवश्यक मानवीय चेतनाओं से बहुत दूर कर दिया। तभी डॉ. अम्बेडकर को कहना पड़ा कि धर्म का उद्देश्य जगत की उत्पत्ति की व्याख्या करना नहीं, धर्म का उद्देश्य जगत की पुनर्रचना करना है। अतः हिन्दू धर्म त्यागकर बौद्ध धर्म को स्वीकारते समय ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गौरी, गणपति, राम, कृष्ण जैसे ईश्वरीय अवतारों को नकारते हुए डॉ. अम्बेडकर घोषणा करते हैं कि- “मैं किसी अवतारवादी ईश्वर को नहीं मानता हूँ।”

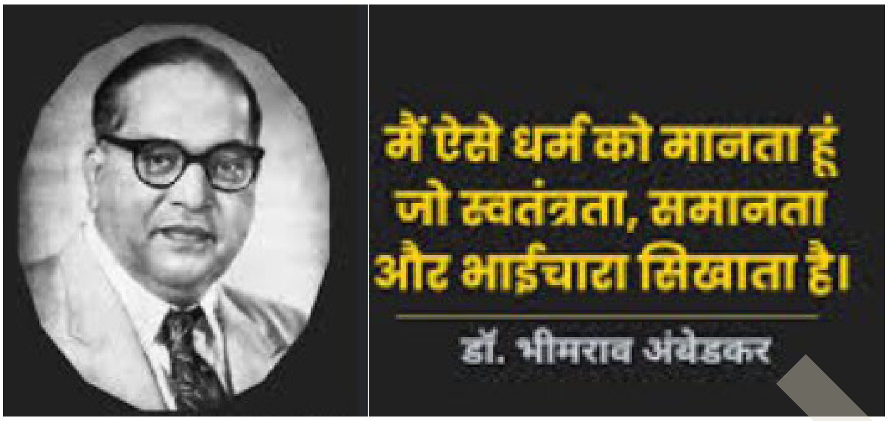

हिन्दी दलित साहित्यकारों के लिए ईश्वर आस्था का विषय नहीं रहा। क्योंकि उन्हें पता है इसी आस्था के नाम पर उनका सदियों तक शोषण एवं उत्पीड़न किया गया है। अतः सभी दलित साहित्यिक विधाओं में ईश्वरवादी अवधारणा के प्रति गहरा विद्रोह का भाव दिखाई देता है। इसलिए उन्होंने अपने लेखन में ईश्वरवाद जैसी मज़बूत दीवार पर गहरा आघात करने का प्रयास किया।

पुनर्जन्म एवं भाग्यवाद का विरोध

हिन्दू धार्मिक ग्रंथों में 'आत्मा' को नित्य स्वीकारा गया है। 'आत्मा' के नित्य होने से अभिप्राय है कि शरीर के अन्त होने पर भी 'आत्मा' का विनाश नहीं होता है। वह अपने कर्मों के अनुसार एक जन्म से दूसरे जन्म में भटकती रहती है, जब तक कि उसे ईश्वर की प्राप्ति अर्थात् मोक्ष न मिल जाए। इसका सीधा संबंध कर्म सिद्धांत से भी है। कर्मों का लेखा-जोखा ईश्वर के पास रहता है तथा उसी के अनुसार सुख-दुख प्राप्त होते हैं। इसी से भाग्यवाद का उदय होता है। इस प्रकार आत्मवाद, पुनर्जन्म और भाग्यवाद के सिद्धांतों ने मानव प्रयासों एवं कर्मफल को आधारित बना दिया। डॉ. अम्बेडकर मानते थे कि ब्राह्मणवाद धर्म द्वारा पुनर्जन्म, भाग्यवाद आदि व्यवस्था का प्रयोग शूद्रों के शोषण के औज़ार के रूप में किया गया। इसीलिए इन सिद्धांतों के प्रति गहरा विरोध करते हुए वे कहते हैं कि– 'ये सिद्धांत मानव के कर्म करने की स्वतंत्रता का हनन करते हैं।'

हिन्दी दलित साहित्य आत्मा की नित्यता, पुनर्जन्म एवं भाग्यवाद जैसी अवधारणाओं को नहीं मानता है। वह मानता है कि सदियों तक दलित समाज का शोषण पूर्वजन्म की व्यवस्था को दिखाकर ही किया गया। दलित समाज को यह एहसास दिलाया गया कि उनके इस जन्म के दुखदायी एवं शोषित जीवन का कारण उनके पिछले जन्मों में किए गए कर्म हैं। यदि उन्होंने इस जन्म में अपने शूद्र जन्म का पालन नहीं किया तो उन्हें अगले जन्म में शायद किसी घृणित प्राणी का रूप प्राप्त हो जाए। उनका कष्टप्रद एवं उपेक्षित जीवन उनके भाग्य का परिणाम है। यही भाग्य ईश्वर ने उनके लिए रचा है।

आप आगामी इकाई में दलित आत्मकथा विधा के स्वरूप, रचना प्रक्रिया, वैचारिकी तथा लक्ष्य और प्रभाव को समझ सकेंगे। विशेष तौर पर दलित साहित्य में अनुभव के संदर्भ वैयक्तिक होने के साथ-साथ सामुदायिक भी है। इन वैयक्तिक अनुभवों को प्रामाणिकता के साथ जिस क्षमता से आत्मकथा उतार सकती है वह अन्य विधा नहीं कर सकती। दलित आत्मकथाओं में उपस्थित समस्या और प्रश्न व्यक्तिगत संदर्भों से नहीं बल्कि समुदायगत संदर्भों से जुड़कर उभरते हैं। जब दलित रचनाकार अपने जीवन अनुभवों के माध्यम से दलित जीवन की त्रासदी को रचनात्मक अभिव्यक्ति देता है तो वह संपूर्ण दलित समुदाय के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक सरोकारों को उजागर करता है। व्यष्टिगत अनुभवों को समष्टिगतता प्रदान करने के लिए परिवेश के यथार्थ को झेलते, देखते, अनुभव करते केन्द्रीय पात्र के लिए आत्मकथा लिखने से बढ़कर और कोई उपाय नहीं हो सकता।

3.1.4 आत्मकथा ही क्यों?

यह बात भी अनेक बार उठ चुकी है कि दलित लोग सोच- समझकर आत्मकथा ही क्यों लिख रहे हैं? क्या दलित समाज जबरन आत्मकथाएँ नहीं लिख रहे हैं?

आत्म-कथा एक ऐसा दस्तावेज़ है जो लेखक के अनुभवों को प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करती है।

आत्मकथा लिखने के लिए स्पष्टता, प्रामाणिकता और बेबाकीपूर्ण निर्ममता की आवश्यकता होती है। कटुता और अन्यमनस्कता जब क्षोभ उत्पन्न करती हैं तब एक ऊर्जावान दलित मन में सभी दबावों को झेलने के उपरान्त जो संवेदनशीलता जन्म लेती है, उसको शाब्दिक रूप में आत्मकथा से बेहत्तर ढालने का और कोई तरीका हाथ नहीं लगता। अपने जीवन की संघातिक परिस्थितियों को झेलना,सहना और प्रतिकार की सन्नदधता संजोना इन सभी को सही अभिव्यक्ति देने के लिए आत्मकथा से अच्छी विधा दूसरी कैसे हो सकती है। आत्मकथा की एक सूक्ष्म परिणति इस उपलब्धि के रूप में होती है कि वह क्षोभ के तीव्र उद्‌गारों को उनके कारणों सहित अनुभवों के साथ एकाकार करके उल्लेख्यता प्रदान कर देती है। दलित साहित्य के लिए यह विधा के रूप में सर्वोत्तम स्थान रखती है।

3.1.5 दलित आत्मकथाओं का लक्ष्य

दलित आत्मकथाएँ केवल अनुभवों एवं यादों की श्रृंखला नहीं हैं। दलित लेखक का लेखन प्रयोजन स्पष्ट है। वह सहानुभूति नहीं चाहता। दलित लेखक सामाजिक जिम्मेदारी से लिखता है। उसके लेखन में कार्यकर्ता का आवेश और निष्ठा अभिव्यक्त होते हैं। समाज बदले, समाज अपने प्रश्न समझे, यह तिलमिलाहट उसके लेखन में तीव्रता से व्यक्त होती है। दलित लेखक आंदोलन करते हुए लिखने वाला कार्यकर्ता कलाकार है। वह अपने साहित्य को आंदोलन मानता है और इसका ठीक प्रतिफलन उनकी आत्मकथाओं में झलकता है। उसके अनुभव व्यक्ति के होने के बावजूद प्रातिनिधिक हैं। वह समाज को ही आवाज़ देता है। विषम सामाजिक व्यवस्था और उसके शोषण के तरीकों को बेनकाब कर देता है। गुलामों को गुलामी का एहसास कराना इनका उद्देश्य है। दलित आत्मकथा व्यक्ति की अपेक्षा उस लेखक के समाज की, उस समाज पर होने वाले अन्यायों, अत्याचारों की, शोषित जीवन के प्रातिनिधिक चित्तों की दास्तान है। दलित रचनाकारों ने साहित्य को अपने मुक्ति आंदोलन का एक हिस्सा बनाया है।

3.1.6 दलित आत्मकथाओं की भाषा

दलित साहित्य ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए जिस भाषा और मुहावरे का प्रयोग किया है, वह दलितों के यथार्थ जीवन के गंभीर सरोकारों, संवेदनाओं और जिजीविषा को गहरे भावबोध के साथ व्यक्त करती है। यह भाषा सीधे जीवन की कटु सच्चाईयों की संवाहक हैं। ग्रामीण अंचलों, गली-मुहल्लों, दैनिक जीवन से जुड़े संदर्भों से रची बची भाषा ही दलित साहित्य की भाषा है। ऐसी भाषा जो दलितों की पीड़ा, अपमान,व्यथा की सही और यथार्थवादी अभिव्यक्ति बन सके। दलित जिस परिवेश में जीता है उसी का सही प्रतिफलन उनके साहित्य में भी मिलता है। दलित साहित्य में भाषा और अभिव्यक्ति का सामंजस्य दलित जीवन के सच से बनता है,जो तीखा,आक्रोशित और सीधी चोट करता है। शरणकुमार लिंबाले के अनुसार दलित साहित्य 'एक्शन' का साहित्य है। जिसके लिए बोधगम्य होना अनिवार्य है। दलित समाज ने जो पीड़ा और संत्रास झेले हैं उससे उपजे आक्रोश और विद्रोह को व्यक्त करने में कलात्मक, शास्त्रीय अभिजात क्लिष्ट शब्दावली असमर्थ होती है।

कुछ आलोचक दलित साहित्य में गन्दी और अश्लील भाषा के प्रयोग की ओर संकेत करते हैं। उन्हें लगता है कि साहित्य का पाठ पवित्र होना चाहिए। दलित जिन परिवेश में जीवन जीते हैं, उस दूषित वातावरण को पारंपरिक आलोचक नहीं जानते। उस परिवेश की भाषा को अश्लील कहना पूर्वग्रस्त कहा जाएगा।

दलित साहित्य का यथार्थ अलग है। इस यथार्थ की भाषा अलग है। यह भाषा दलितों की गँवार असभ्य भाषा है। यह भाषा शिष्ट संकेत और व्याकरण के नियम न मानने वाली भाषा है। समाज में शिष्ट लोगों द्वारा लेखन के लिए मान्यता प्राप्त भाषा के रूप में 'प्रमाण भाषा' की ओर देखा जाता है। प्रमाण भाषा का एक 'दर्जा' होता है। इस प्रमाण भाषा का 'दर्जा' दलित लेखकों ने नकारा है। क्योंकि उनका मानना है कि यह शिष्ट मान्यता 'एक दंभ से' भरी हुई है। दरअसल दलित लेखकों को प्रमाण भाषा की अपेक्षा अपनी बस्ती की भाषा अपनी लगती है। दरअसल प्रमाण भाषा में दलितों की बोली के सभी शब्द नहीं मिलते हैं। दलित लेखक अपने साहित्य की भिन्नता को ठोस रूप में दिखाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने आमतौर पर टोली भाषा और गालियों का प्रयोग किया। दलित साहित्य ने संस्कृतनिष्ठ परंपरागत साहित्यिक भाषा,काव्य शैली प्रस्तुतीकरण को नकार कर सर्वग्राही भाषा का प्रयोग किया है। ऐसी भाषा जो दलितों की पीड़ा, अपमान एवं व्यथा की सही और यथार्थवादी अभिव्यक्ति बन सके।

दलित आत्मकथाओं में यातनाओं से उपजी आक्रोशित भाषा एक तेज़ औज़ार की तरह भीतर तक झकझोर देती है।

दलित समाज की बोली-बानी के ऐसे अनेक शब्द प्रकट होते हैं जिनसे साहित्य अनभिज्ञ था। यह दलित साहित्य को ताज़गी देता है और भाषा की जड़ता भी टूटती है। दलित लेखकों की भाषा पर प्रायः कमज़ोर होने का आरोप लगता रहता है। यह सही है कि भाषा पर परिवेश और संस्कृति का प्रभाव पड़ता है, ज़ाहिर है कि दलित लेखकों की भाषा पर भी उनके परिवेश और संस्कृति का प्रभाव होगा और ऐसा संभाव्य है कि उसमें आने वाले प्रतीक, बिंब, मुहावरे आदि परंपरागत भाषा में प्रयुक्त होने वाले प्रतीक, बिंब, मुहावरों से अलग हैं जिनका अपना अलग सौंदर्य है। आगामी इकाई में जब आप शरणकुमार लिंबाले जी की आत्मकथा 'अक्करमाशी' से गुज़रेंगे तब आपका परिचय असभ्य कहलाए जाने वाली टोली भाषा से हो जाएगा। दलित साहित्य की भाषा में नकार और विरोध का स्वर मुख्य रूप से उभरता है और दलितों के जीवन की विसंगतियों, उत्पीड़न, शोषण और दमन की अभिव्यक्ति के लिए यही भाषा ज्यादा सटीक लगती है। दलित साहित्य की भाषा सिर्फ नकार और विद्रोह की भाषा ही नहीं है बल्कि परिवर्तन की छटपटाहट और अंतर्संबन्धों की ऊर्जा अपने भीतर संजोए हुए है।

शरणकुमार लिंबाले जी ने अपनी एक साक्षात्कार में भाषा के प्रश्न पर कहा है- जब मेरी माँ बहनों पर अत्याचार होता है, तो क्या मैं कलात्मक ढ़ंग से अभिव्यक्त करूँ जब मैं लिखता हूँ तो मेरी रचना में मेरे साथ हुए छल-कपट की अभिव्यक्ति होती है। अपने ऊपर हुए छल कपट को क्या मैं कलात्मक शैली में पेश करूँ?

अक्करमाशी के उद्धरण देखिए-

क्या मैं सवर्ण हूँ? नहीं क्योंकि मेरी माँ अस्पृश्य है। क्या मैं अस्पृश्य हूँ? नहीं,क्योंकि मेरे पिता सवर्ण हैं। मैं जरासंघ की तरह। गाँव के बाहर दोनों ओर विभाजित! मैं कौन? मेरी आंवल किससे?

एक और उद्धरण-

............मुझे मेरी जाति से डर लग रहा था। वास्तव में पिता के धर्म पर,उनकी जात-बिरादरी पर, किसी पर भी मेरा हक नहीं था। मैं हिन्दू महार से सुविधाएँ ले रहा था। मैं महार नहीं ....

उपर्युक्त उद्धरणों की भाषा में जाति समस्या के विभिन्न रूप गहन अर्थों और भावबोध के साथ अभिव्यक्त हुए हैं। समस्याओं के चित्रण में उनकी अपनी भाषा का प्रयोग हुआ है, जो उनकी परिस्थितियों को और अधिक प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करती है।

3.1.7 दलित आत्मकथाओं पर आरोप

दलित आत्मकथाओं पर सबसे बड़ा आरोप यह लगाया जाता है कि इसके लेखकों ने अपने भोगे हुए दुखों का बाज़ार सजाया है। कुछ आलोचकों का यह भी मानना है कि- साहित्यिक क्षेत्र में विधा के रूप में आत्मकथा आत्महत्या है। एक लेखक के लिए आत्मकथा लिखना आत्महत्या करना है। उनका मानना है कि दलित लेखकों को इस विधा से बचना चाहिए क्योंकि संसार की सारी शासक कौमें अपने परिवारों की अंदरूनी बातें बचा कर रखती हैं। दलित लेखक को इस आत्मरस के लोभ से दूर रहना चाहिए संसार के सारे निजी कानूनों में परिवार की गोपनीयता का संरक्षण रखा गया है ऐसा उनका मानना है। दलित साहित्य अपने समय से लड़ते हुए आनेवाले कल की बेहत्तर ज़िन्दगी के लिए आशावादी है। तमाम विपरीत परिस्थितियों, चुनौतियों के संकट के बावजूद दलित साहित्य ने अपनी ऊर्जा और संभावनाएँ क्षीण नहीं होने दी हैं।

Critical Overview / अवलोकन

दलित आत्मकथाओं ने साहित्य में एक नए विमर्श का सूत्रपात किया है। जो समाज हज़ारों सालों से मूक बना यातनाएँ सह रहा था, उसकी संवेदनाएँ और अनुभवों को चुप्पियों में तब्दील कर दिया गया था, वह समाज अब बोलने लगा है। हिन्दी में कल तक जो साहित्य की श्रेष्ठता थी उस पर इन आत्मकथाओं ने प्रश्नचिह्न लगाया है। असल में आत्मकथा लिखना एक वज़नदार कार्य है। इसके लिए लेखक को कठिन स्थिति से गुज़रना पड़ता है खासकर जब किसी लेखक की जीवन - यात्रा बीहड़ जंगल में से होकर गुज़रती है। जब उसे अपने जख्मों को कुरेदकर पुराने दर्दों को कुरेदना होता है, तब आत्मकथा लेखन एक वज़नदार कार्य बन जाता है। जीवन में घटी घटनाओं को जैसा भोगा जैसा महसूस किया वैसा

ही कह देना कला का हिस्सा भले ही न हो परन्तु घटना के पीछे का विचार मंथन तो अपना कुछ अर्थ रखता है। आत्मकथाएँ दलित लेखकों के अदम्य जीवन संघर्ष के साथ आगे बढ़ने का संदेश देती हैं क्योंकि दलित आत्मकथाकार बताना चाहते हैं कि जो नारकीय और दासतापूर्ण जीवन हमें मिला, उसमें व्यक्ति विशेष का अपराध नहीं है। दलित आत्मकथाएँ व्यवस्था परिवर्तन की माँग भी करती हैं। पारंपरिक पद्धति को अपनाने वाले आलोचकों को दलित आत्मकथाएँ कलाहीन, अनुपयोगी, नीरस और निचले दर्जे की लगती हो परन्तु इनमें जो बीभत्सता ऐसे आलोचकों को दिखाई देती है वह इन आत्मकथाओं का दोष नहीं अपितु आलोचकों के पास ऐसी दृष्टि का अभाव है जो इनका मूल्यांकन कर सकें। दलित आत्मकथाओं में शिद्दत के साथ दलित समाज का संघर्ष रेखांकित हुआ। उनके दुख दर्द के साथ पीड़ा के स्वर उभरे। सच कहा जाए तो इन आत्मकथाओं ने सामाजिक चेतना जगायी है। दलित आत्मकथाओं की रचना ने दलितों की व्यथा-वेदनाओं की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के साथ-साथ दलित जीवन के सरोकारों को एक विस्तृत पटल पर उतारकर संपूर्ण समाज के समक्ष आत्म परिचय की चुनौती खड़ी कर दी है।

Recap / पुनरावृत्ति

- दलित आत्मकथाओं में शिद्दत के साथ दलित समाज का संघर्ष रेखांकित हुआ।
- दलित लेखक अपने साहित्य की भिन्नता को ठोस रूप में दिखाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने आमतौर पर बोली भाषा और गालियों का प्रयोग किया।
- दलित साहित्य अपने समय से लड़ते हुए आनेवाले कल की बेहत्तर ज़िन्दगी के लिए आशावादी है।
- दलित साहित्य की भाषा नैसर्गिक रूप में अपने परिवेश की यातनाओं, उत्पीड़न, दमन और विषमताओं को अभिव्यक्त करती है।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. पारंपरिक पद्धति को अपनाने वाले आलोचकों को दलित आत्मकथाएँ कैसे लगती हैं?
2. दलित आत्मकथाओं का लक्ष्य क्या है?
3. मराठी में दलित चेतना की अभिव्यक्ति का मूल कारण क्या था?
4. दलित लेखकों को प्रमाण भाषा की अपेक्षा अपनी बस्ती की भाषा क्यों अपनी लगती है?
5. दलित चेतना सबसे सशक्त रूप में आत्मकथाओं में ही उभर कर आ पाई है। क्यों?

Answers / उत्तर

1. पारंपरिक पद्धति को अपनाने वाले आलोचकों को दलित आत्मकथाएँ कलाहीन, अनुपयोगी, नीरस और निचले दर्जे की लगती है।
2. विषम सामाजिक व्यवस्था और उसके शोषण के तरीकों को बेनकाब कर गुलामों को गुलामी का एहसास कराना दलित आत्मकथाओं का उद्देश्य है।
3. मराठी में दलित चेतना की जो अभिव्यक्ति हुई, उसके मूल में दलित पैंथर और मराठवाड़ा विश्वविद्यालय के नाम विस्तार का आन्दोलन रहा है।

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

4. दलित लेखकों को प्रमाण भाषा की अपेक्षा अपनी बस्ती की भाषा अपनी लगती है क्योंकि उन्हें लगता है कि प्रमाण भाषा में उनकी बोली के सभी शब्द नहीं मिलते।
5. आत्मकथा की एक सूक्ष्म परिणति इस उपलब्धि के रूप में होती है कि वह क्षोभ के तीव्र उद्‌गारों को उनके कारणों सहित अनुभवों के साथ एकाकार करके उल्लेख्यता प्रदान कर देती है। इसलिए दलित चेतना सबसे सशक्त रूप में आत्मकथाओं में ही उभर कर आ पाई है।

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. मलयालम में प्रकाशित दलित आत्मकथाओं का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
2. धर्मान्तर और नामांतर आन्दोलन ने गहरे रूप से दलित साहित्य को प्रभावित किया। क्यों और कैसे?

Reference

1. दलित साहित्य वेदना और विद्रोह - सं शरणकुमार लिंबाले, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
2. हिन्दी दलित आत्मकथा - डॉ. संजय नवले,अमन प्रकाशन, कानपुर
3. दलित चिन्तन का विकास - डॉ. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, शरणकुमार लिंबाले, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
5. दलित चेतना की पहचान, सं डॉ. सूर्य नारायण रणसुभे, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
6. उत्तर-आधुनिकतावाद और दलित साहित्य, कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
7. दलित साहित्य के प्रतिमान, डॉ. एन सिंह, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
8. दलित हस्तक्षेप - रमणिका गुप्ता, शिल्पायन, दिल्ली

Video Link

1. Akkarmashi (Episode 1)https://youtu.be/H7kMkSdXDnY
2. Akkarmashi (Episode 2) https://youtu.be/SO9_qf5yE3w
3. Akkarmashi (Episode 3) https://youtu.be/R_dh1BaSv9A

इकाई 2

प्रमुख दलित आत्मकथाकार और उनकी आत्मकथाएँ

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- मराठी दलित आत्मकथा साहित्य से अवगत होंगे
- प्रमुख मराठी दलित आत्मकथाकारों की जानकारी प्राप्त करेंगे
- शरणकुमार लिंबाले के रचना संसार से अवगत होंगे
- शरणकुमार लिंबाले की रचनाओं में निहित दलित चेतना से अवगत होंगे
- दलित साहित्य के लिए अलग सौंदर्यशास्त्र की माँग पर लिंबाले जी के प्रस्ताव से अवगत होंगे

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

श्रमशील जनता से अपना काम कराने के लिए, उनका शोषण करने के लिए ब्राह्मणवादी संस्कृति ने जानबूझकर पूर्व जन्म और कर्मफल के भय का जाल बिछाया। इससे वे ख़ुद को ब्रह्मणों से नीचा, दलित, लाचार तथा भाग्यहीन समझने लगे। अपने पूर्व जन्म के कर्मों के फल के कारण ही उन्हें दलित रूप में जन्म लेना पड़ा ऐसी उनमें मानसिकता बना दी गई। इससे तथाकथित उच्च वर्णों का काम और भी आसान हो गया और बिन मजदूरी के ही उनसे अपना सारा काम भी कराया तथा उन्हें अछूत भी बना दिया। वर्ण व्यवस्था के अमानवीय बन्धनों ने सदियों से दलितों के भीतर हीनता भाव जगाया है। धर्म और संस्कृति की आड़ में साहित्य ने भी इस भावना की नीड़ सुदृढ की है।

दलित आत्मकथाओं ने न सिर्फ साहित्य को आनंद और विनोद के घेरे से बाहर निकाला बल्कि दलित समाज के शोषण और उनके संघर्ष को साहित्य का हिस्सा भी बनाया। जो समस्या या मुद्दा साहित्य में चर्चा का विषय बन जाता है उस पर लगातार विचार और चिंतन होता रहता है। जन-चेतना जागृत होती है। समस्या उन्मूलन के लिए एक साथ हज़ारों कदम आगे बढ़ते हैं। दलित साहित्यकारों ने अपने जीवन-संघर्ष को बड़ी ही संजीदगी से पन्नों पर उतारा है। लिंबाले जी की समस्त रचनाओं में दलित समाज के संघर्षों की ही गाथा है। उनकी आत्मकथा 'अक्करमाशी' शोषक और शोषित दोनों की आँख खोलती है। शोषक अपने आप को देख लें और अपने बारे में ख़ुद तय कर लें कि उन्हें इंसान कहा जाए या हैवान। शोषित यह देख लें कि उनका अतीत, वर्तमान कैसा है और भविष्य के लिए वे क्या कर सकते हैं।

Keywords / मुख्य बिन्दु

दलित आत्मकथा, वेदना, शोषण, संघर्ष, समस्या, विचार, चिंतन, बहिष्कृत

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Discussion / चर्चा

3.2.1 मराठी दलित आत्मकथा

मराठी में दलित साहित्य के उद्‌भव का श्रेय भीम राव अंबेडकर को दिया जाता है। महाराष्ट्र में दलितों में शिक्षा का प्रचार-प्रसार करने में अम्बेडकर ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अपने जीवन काल में उन्होंने विभिन्न सभा मंचों से समय-समय पर अपनी जीवन स्मृतियों का उल्लेख किया था। उन तमाम स्मृतियों के प्रतिश्रुत श्रोता शंकरराव खरात ने डॉ. अम्बेडकर के निर्याणोपरान्त उन्हें संकलित किया और उस स्मृति संकलन को ग्रंथ रूप तथा शीर्षक दिया- (डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर यांची आत्मकथा)। और इसी के फलस्वरूप आगे चलकर दलित साहित्य बड़ी मात्रा में सामने आए। दलित साहित्य को बढ़ावा देने में मराठी में प्रकाशित बहुत सी पत्र-पत्रिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका देखने को मिलती है। कुछ जनकवियों ने लोकगीतों के ज़रिए जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता का चित्रण किया। फलतः समाज में धीरे-धीरे विद्रोहात्मक स्वर मुखरित होने लगा। और क्रमशः मराठी दलित कविताओं में विद्रोह उजागर होने लगा जिसका प्रतिफलन अन्य साहित्यिक विधाओं में भी हुआ। विशेषकर मराठी दलित आत्मकथनों में यह स्वर और प्रबल हो गया।

यद्यपि मराठी में दलित आत्मकथा लेखन की प्रेरणा डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर रहे तथापी दलित आत्मकथन का प्रारंभ मराठी साहित्य में वरिष्ठ लेखक दया पवार के आत्मकथन 'बलुतं' (1978) से हुई थी जिसका 'अछूत' शीर्षक से हिन्दी अनुवाद किया गया है।

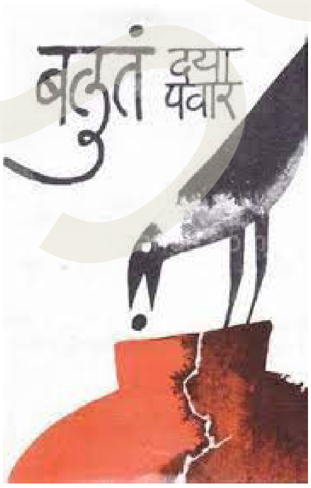

जिसे पढकर अभिजात मराठी लेखकों को ज़ोरदार झटका लगा था। क्योंकि इस अनोखे अनुभव विश्व की न उन्हें पहचान थी और न ही वे उसे वास्तविक समझ पाए। बहिष्कृत जीवन की वास्तविकता अभिजातों के लेखन का विषय ही न था। अस्पृश्यता से अभिशप्त वेदना, व्यथा, दुख, उत्पीड़न और आक्रोश स्पंदित होकर शब्द रूप ग्रहण कर ही नहीं सका।

मराठी दलित आत्मकथनों की परंपरा में जिन दलित आत्मकथनों ने समझ और संवेदना के नए शिखरों का निर्माण किया वे हैं-

1. 'बलूतं' - दया पवार
2. 'उपरा' - लक्ष्मण माने
3. 'आठवणीचे पक्षी'- प्र ई सोनकांबले
4. 'उचल्या' - लक्ष्मण गायकवाड
5. 'तलाल अंतराल' - शंकर राव खरात
6. 'अक्करमाशी' - शरणकुमार लिंबाले

प्रस्तुत विवेच्य आत्मकथाओं का सृजन डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर के विचारों के प्रभाव के कारण दिखाई देता है। उसी के साथ-साथ आत्मकथाकार व उसके समाज का भोगे हुए यथार्थ का लेखा-जोखा प्रस्फुटित हुआ है। वेदना, दुख, दर्द, संघर्ष, उपेक्षा एवं तिरस्कार भाव ही व्यक्त हुआ है।

आत्मकथा के क्षेत्र में पुरुष लेखकों की तरह कुछ दलित महिलाओं ने भी मराठी दलित आत्मकथाएँ लिखी हैं। दरअसल स्त्री चाहे उच्चवर्गीय समाज या जाति विशेष की हो अथवा निम्न जाति समाज से संबद्ध हो भारतीय पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में समस्त स्त्री जाति का जीवन स्तर काफी दयनीय था। दलित स्त्री पर तो दुहरा अभिशाप था- एक तो स्त्री होने का ऊपर से दलित होने का।-

1. 'अंतः स्फोट' - प्रा कुमुद पावडे
2. 'मिटलेली कवाडे' - मुक्ता सर्वगौड़
3. 'जिणं आमचं' - बेबीताई कांबले
4. 'माइया जलमाची चित्तरकथा' - शांताबाई कांबले
5. 'मरण कला' - जनबाई गिरहे

सच्चाई के बेलौस चित्रण और मानवतावादी समझ के बल पर ये आत्मकथन पाठकों के बीच न सिर्फ लोकप्रिय साबित हुए अपितु दलित मुक्ति प्रसंग के अनिवार्य संदर्भ भी बने। दलित स्त्री आत्मकथा एक और विशेष संदर्भ के कारण पाठकों के बीच चर्चित हुए। इनमें न केवल गरीबी

और जातिवंश का चित्रण हुआ बल्कि इनमें स्त्री त्रासदियों का भी मार्मिक वर्णन हुआ। इन आत्मकथनों के बीच शरणकुमार लिंबाले की 'अक्करमाशी' की मौजूदगी विशेष तौर पर उल्लेखनीय है। आगामी इकाइयों में अक्करमाशी का विस्तार से विश्लेषण होगा।

3.2.2 हिन्दी दलित आत्मकथा

हिन्दी में दलित साहित्य लिखने की प्रेरणा नौवें दशक से शुरु होती है। कुछ लोगों की यह धारणा है कि हिन्दी दलित साहित्य का उद्गम मराठी दलित साहित्य से हुआ है, यानी हिन्दी दलित साहित्य पर मराठी दलित साहित्य की संपूर्ण छाप है। पर यह धारणा पूरी तरह सच नहीं है।

हिन्दी दलित साहित्य में 90 के दशक में पहली आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' आयी। हालांकी उससे पूर्व 'मैं भंगी हूँ' भी आयी लेकिन स्वयं भगवानदासजी इसे अपनी आत्मकथा नहीं मानते, वे इसे पूरी जाति कि आत्मकथा मानते हैं। बाद के दौर में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का 'जूठन', सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत' तथा कौसल्या बैसन्त्री की 'दोहरा अभिशाप' आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई जो अपनी अपनी तरह से दलित साहित्य के इतिहास में दर्ज हुई। इन सभी आत्मकथाओं में वर्ण व्यवस्था के अंतिम छोर पर जीनेवालों की कथा, वर्ण व्यवस्था द्वारा नकारे गए वर्ग की यातना को पूरी ईमानदारी के साथ स्पष्ट किया है।

'अपने-अपने पिंजरे' हिन्दी की प्रथम दलित आत्मकथा है जिसमें दलित जीवन के कठोर अनुभव और सामाजिक गतिविधियों का विस्तृत चित्रण मिलता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' हिन्दी की सशक्त आत्मकथा है जिसमें दलित जीवन के अनुभवों के अलावा दलितों के संघर्ष, विद्रोह, सामाजिक जीवन में मिलने वाली प्रताड़ना और उससे मुक्ति की छटपटाहट का विश्लेषण है। इन सभी आत्मकथाओं में दलित जीवन के संघर्ष, अवमानना और सामाजिक न्याय के स्वर को समाज शास्त्रीय दृष्टि कोण से अभिव्यक्त किया गया है। इन आत्मकथाओं से प्रेरणा लेकर और भी कई दलित आत्मकथाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इस प्रकार ये आत्मकथाएँ उपेक्षितों के लिए अभिव्यक्ति की प्रेरणा स्रोत बनी हैं।

3.2.3 शरणकुमार लिंबाले का रचना संसार

अपने लेखन और चिंतन से नवजागरण और दलित साहित्य को शीर्ष स्थान पर ले जाने वाले शरणकुमार लिंबाले मराठी भाषा के प्रसिद्ध लेखक, चिन्तक और मराठी दलित साहित्य आन्दोलन के पुरोधा हैं। प्रगतिशील लेखक, समाजसुधारक लिंबाले जी पुरखों के समय से चली आ रही हज़ारों साल पुरानी रूढ़िवादी मानसिकता का विरोध करतें हैं तथा अमानवीय व्यवस्था के ख़िलाफ़ एक योद्धा बनकर प्रतिरोध का स्वर बुलंद करते हैं।

शरणकुमार लिंबाले

जन्म : 1 जून, 1956; महाराष्ट्र के सोलापुर ज़िले के हन्नूर गाँव में।

शिक्षा : शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर से मराठी भाषा में एम.ए.। इसके बाद यहीं से 'मराठी दलित साहित्य और अमेरिकन ब्लैक साहित्य : एक तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर पीएच.डी.।

यशवंतराव चव्हाण महाराष्ट्र ओपन यूनिवर्सिटी (नासिक) में प्रोफ़ेसर एवं निदेशक-पद से सेवानिवृत्त।

3.2.3.1 शरणकुमार लिंबाले की प्रमुख कृतियाँः

शरणकुमार लिंबाले का व्यक्तित्व एवं कृतित्व बड़ा ही प्रभावशाली है। उन्होंने अपने जीवन में घृणा, द्वेष एवं छूआछूत को सहा है, तथा दलितों में भी दलित होने की वेदना को सहा है। अतः दलितों की वेदना उनके कृतित्व में स्पष्ट झलकता है। उनकी अधिकांश रचनाएँ दलित चेतना से ओत-प्रोत है। उनका व्यक्तित्व बड़ा संघर्षशील रहा। उनके जीवन में बचपन से ही उन्हें अपने अस्तित्व और अस्मिता की तलाश के लिए संघर्षरत रहना पड़ा। साथ ही साथ गरीबी एवं छूआछूत की त्रासदी को भी उन्होंने झेला। लिंबाले की यातनाओं एवं संघर्षों को समझना दलित समाज की वेदना, दुखः एवं पीड़ा को समझना है।

आत्मकथाः-

1. अक्करमाशी (1984):-

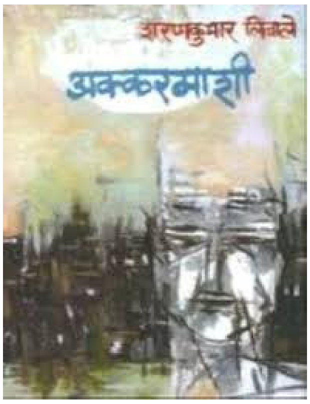

दलित जीवन की अपूर्णता एवं विडम्बनाओं की ओर इशारा करनेवाली यह आत्मकथा मराठी में लिखी गई थी जिसका हिन्दी अनुवाद सूर्यनारायण रणसुभे जी ने किया है। लेखक ने अपने बचपन से लेकर पच्चीस साल तक की उम्र में झेली हुई वेदनाओं का चित्रण इसमें किया है। समाज में व्याप्त असमंजस को लेकर बचपन से ही उनका मन विह्वल हो उठा है। हीन समझे जाने पर भी वे हीन जीवन जीना नहीं चाहते है। और हर घटनाक्रम में उनके मन में 'क्यों' उभरकर आता है। भारतीय समाज का सच्चा चित्रण पाठक के सामने प्रस्तुत होता है और आत्मकथा में वर्णित घटनाएं पाठकों के दिल में ताज़ा ज़ख्म दे ही जाता है।

2. पुन्हा अक्करमाशी (1999):-

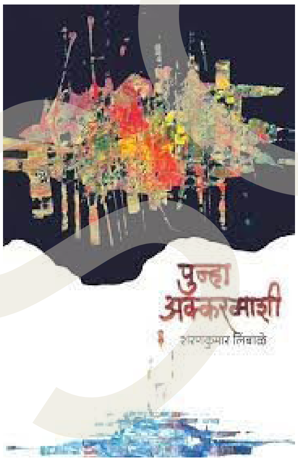

इसे हम लिम्बाले जी की बहुचर्चित आत्मकथा 'अक्करमाशी' का दूसरा भाग कह सकते है। इसका प्रकाशन 1999 में हुआ है। लेखक अपनी पीड़ादायक अनुभव, अपनी क्रांति भावना, समाज की उनके प्रति व्यवहार आदि का खुला चित्रण किया है। लेखक केवल पीड़ा की कहानी कहकर अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं कर देता। वह समाज व्यवस्था की वैचारिकी से हमें रू ब रू कराना नहीं भूलता।

उपन्यासः-

1. नरवानारः-

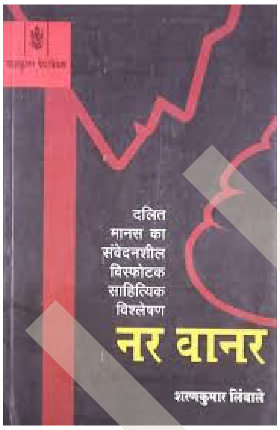

मराठी में 'उपल्या' नाम से प्रकाशित और चर्चित इस उपन्यास की केन्द्रीय चिंता समकालीन दलित आंदोलन है। मराठी में उपल्या नाम से प्रकाशित इस उपन्यास का अनुवाद हिन्दी में नरवानर के नाम से निशिकांत ठकार ने किया। 1956-1996 तक के समय पर आधारित यह उपन्यास दरअसल आत्मचिंतन है। लेखक के अनुसार इस आत्मचिंतन के विश्लेषण के मूल में है कुछ स्मृतियाँ, कुछ बहसें, समाज की गतिविधियाँ और उससे उत्पन्न प्रतिक्रियाएँ। इस उपन्यास की केन्द्रीय चिन्ता समकालीन दलित आंदोलन है। स्वयं लेखक कबूल करते हैं कि नरवानर एक काल्पनिक रचना है। इसमें सत्य बिल्कुल नहीं है। यदि है तो सत्य का आभास मात्र है।

2. हिंदूः-

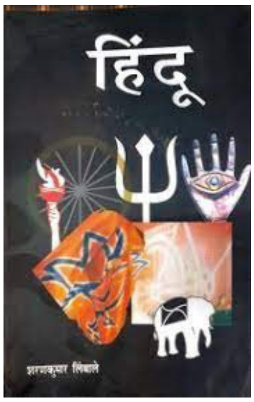

यह शरणकुमार लिंबाले जी का बहुचर्चित उपन्यास है।

दलित साहित्य में इसकी अलग पहचान है। इसमें उन्होंने दलितों के गाँवों में हो रहे चौंकानेवाली हिंसा का खुलासा किया है। तात्या कांबले नामक एक दलित लोक थिएटर कलाकार की हत्या की बात कही गई है। उनकी लोक थिएटर एक अलग दुनिया की बात करता है जहाँ दलित विरोध करने और सामाजिक न्याय हासिल करने केलिए भी और सम्मान त्याग देते है। उपन्यास में खरीद फरोख्त को भी दिखाया गया है जो उच्च जाती समर्थित दलित उम्मीदवार को मंत्री पद तक पहुँचाया है।

3. सनातनः-

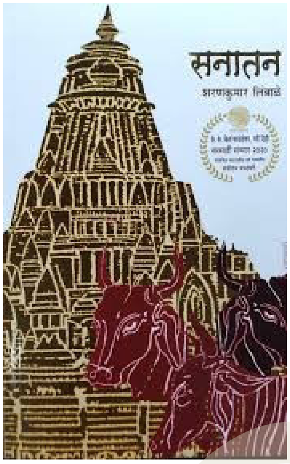

'सनातन' भीमनाक महार और उसके जैसे लोगों की रोंगटे खड़े कर देने वाली कहानी है, जो सदियों से ऊँची जातियों द्वारा बर्बर दुर्व्यवहार और अमानवीय भेदभाव का शिकार होते रहे हैं। कहानी की शुरुआत आज़ादी के पहले के भारत में युवा भीमनाक से होती है। फिर यह समय और भौगोलिक सीमाओं को पार करते हुए भीमनाक के पोते के साथ समाप्त होता है। वृत्ताकार कथा पैटर्न दर्द के उस अंतहीन चक्र को प्रतिबिंबित करता है जिससे महार मुक्त नहीं हो पाते हैं, चाहे वे कितनी भी कोशिश कर लें, चाहे वे कहीं भी जाएं, भले ही वे अपनी पहचान और धर्म बदल लें। मिथकों, पुराणों और ऐतिहासिक ग्रंथों को संसाधन के रूप में उपयोग करते हुए शरणकुमार लिंबाले ने इस उपन्यास में दलित इतिहास को फिर से लिखा है।

4. बहुजनः-

शरणकुमार लिम्बाले जी का बहुचर्चित उपन्यास 'बहुजन' दलित साहित्य की प्रमुख रचनाओं में से एक है।

5. झुंडः-

सवर्ण और दलित समुदाय के स्वभाव के ताने-बाने में बुना यह उपन्यास मूल रूप से जाति और मानवीय सम्बन्धों पर आधारित है। मानवीय सम्बन्धों के विविध पहलुओं को इस उपन्यास में उजागर किया गया है। सामाजिक संघर्ष के साथ मानवीय सम्बन्धों का विवित्र रसायन इस उपन्यास में व्यक्त हुआ है। जाति छिपाकर रहने वाले दलित शिक्षक आनन्द काशीकर के सम्बन्ध में नारायण पडवल का आत्मीय प्रेम और तिरस्कार इस उपन्यास की पृष्ठभूमि है। आनन्द काशीकर की जाति जब तक मालूम नहीं होती, तब तक उससे होने वाला मानवीय व्यवहार अलग तरह का है। जाति प्रकट होने पर सब कुछ बदल जाता है। दो समुदायों के बीच विद्वेष पैदा करने वाली, देश की एकता में दरार डालने वाली, सामाजिक सद्भाव नष्ट करने वाली और मानवीयता के चेहरे पर कालिख पोतने वाली हरकतें जगजाहिर हैं। इस दिशा में विचार करने के लिए 'झुंड' एक सार्थक प्रयास है। उपन्यास का अन्त पाठकों के लिए अमानुष जाति-व्यवस्था का उपकार और मानवीयता का प्रखर अहसास कराने वाला है। आशा है समाज-व्यवस्था को समझने में 'झुंड' उपन्यास मददगार साबित होगा।

6. गर्व से कहोः-

यह एक दलित उपन्यास है। यह दलित पात्रों और दलित समाज के संघर्षों और उच्च जातियों के अत्याचारों को यथार्थवादी तरीके से दिखाता है। गलत नीतियों और अन्यायों से मिश्रित भारतीय वर्ग समाज का बहुत ही वास्तविक चित्र इसमें प्राप्त होता है। दलित जीवन की त्रासदी अत्यंत मार्मिक एवं सजीव ढंग से चित्रित है।

दलित स्त्री दोहरा शोषण का शिकार बनती है। इसी मुद्दे से उपन्यास की शुरुआत होती है और स्वाभाविक रूप में कथावस्तु अग्रसर होती दिखाई देती है।

कहानी संग्रह

1. देवता आदमीः-

शरणकुमार लिम्बाले के इस संग्रह की कहानियों में बदलते हुए यथार्थ के अनेक रूप अंकित हुए हैं। उनकी अधिकांश कहानियाँ आत्मकथात्मक शैली में लिखी गयी है। इन कहानियों में अपने व्यक्तिगत जीवन का भोगा हुआ यथार्थ ही निस्संग रूप में व्यक्त होता है। हरिजन मास्टर, त्रिमुख, नाग पीछा कर रहा है, समाधि, मालिक के रिश्तेदार, भोगा हुआ यथार्थ आदि इस संग्रह की कहानियाँ है।

2. दलित ब्राह्मण

प्रस्तुत कहानी संग्रह में लिंबाले जी दलित जीवन के उन अनकहे अनसुने दायरों से गुजरने का प्रयास किया है। शिक्षा एवं शोध के क्षेत्र में दलितों के साथ हो रहे अन्यायों का खुलासा किया गया है। वह व्यक्त करता है की सवर्ण शैक्षिक जजमान कैसे दलितों की बौद्धिक अनुभूतियों पर डाका डालता है। उनके अभिभूत वेदनाओं को कैसे अपने लाभ केलिए इस्तेमाल करते हैं। और दलित किस प्रकार अपनी वेदनाओं को भी चुराता देखकर बेबस झटपटाता है।

3. छुआछूत

शरण कुमार लिंबाले जी द्वारा विरचित प्रस्तुत कहानी संग्रह में दलित जीवन की मार्मिक व्यथा का उल्लेख मिलता है।

आलोचना ग्रंथ

1. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र (2005)

'अक्करमाशी' के उस बालक शरणकुमार लिंबाले से लेकर 'दलित साहित्य' के लेखक की यात्रा, मराठी दलित चेतना की ऊर्ध्वमुखी यात्रा रही है। यह पुस्तक मराठी दलित साहित्य का दस्तावेज़ी इतिहास तो है ही, साथ ही यह उसके अन्तर्द्वन्द्वों, विभिन्न साहित्यिक धाराओं से उसके सम्बन्ध, विभिन्न दार्शनिक, वैचारिक, राजनैतिक एवं साहित्यिक प्रणालियों से उसका तुलनात्मक अध्ययन भी है। यह पुस्तक दलित साहित्य की परिभाषा, व्याख्या, परिप्रेक्ष्य और दिशा की भी पड़ताल करने का एक यथार्थपरक अन्वेषण है। डॉ. लिंबाले ने बिना पक्षपात किये सभी के यानी दलित विरोधी व दलित पक्षधर दोनों के मन्तव्य उद्धृत किये हैं जिससे स्वतः ही पाठक तार्किक निष्कर्ष पर पहुँच जाता है जो डॉ. लिंबाले के इच्छित निष्कर्ष से मेल खाता है। कई जगह वे प्रश्नों के ज़रिये ही पाठक के मन में अपेक्षित उत्तर उतार देते हैं।

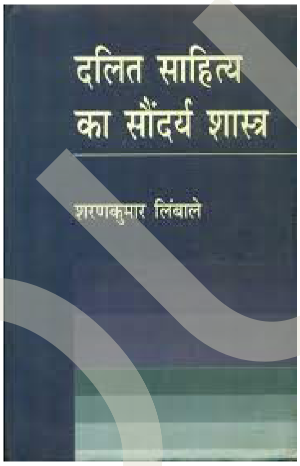

अन्य रचनाएँः-

उद्रेक, झुंड, दलित आत्मकथा एक आकलन, दलित पैन्थर, दलित प्रेमकविता, रानीमाशी आदि।

सम्मान : 'सरस्वती सम्मान' सहित कई सम्मानों से सम्मानित।

अपनी जीवन गाथा के माध्यम से संपूर्ण दलित समाज के संघर्ष को प्रतिबिंबित करने वाले लिंबालेजी के व्यक्तित्व-कृतित्व से हमें अवगत कराना ही प्रस्तुत पाठ का उद्देश्य है। लिंबाले जी की आत्मकथा का अध्ययन सहृदय पाठकों और विद्यार्थियों को दलित समाज की समस्याओं और उनकी वेदनाओं पर विचार करने और उसमें परिवर्तन लाने की प्रेरणा देने के साथ ही साथ हम लिंबाले जी के रचना संसार और उनकी रचना शैली से परिचित होंगे। उनके व्यक्तित्व का अध्ययन हमें उनके लेखन की यथार्थता का अनुभव कराएगा।

3.2.3.2 शरण कुमार लिंबाले

प्रतिष्ठित मराठी दलित साहित्यकार हैं शरण कुमार लिंबाले जी। भारतीय साहित्य में मराठी लेखक शरण कुमार लिंबाले का लेखन मील का पत्थर है। उनका

लेखन समाज को बदलाव के लिए प्रेरित कर रहा है। इनकी कई महत्वपूर्ण कृतियों का चारों ओर स्वागत हो रहा है। ज़्यादातर भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं में अनुवाद भी हो रहा है। लिंबाले जी की रचनाओं में सबसे ज़्यादा प्रसिद्ध है उनकी आत्मकथा 'अक्करमाशी' जिसका प्रकाशन 1984 में मराठी भाषा में हुआ था। इस आत्मकथा का हिन्दी अनुवाद सन् 1991 में हिन्दी के प्रमुख साहित्यकार डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे जी ने किया है।

दलित होने का दंश कितना गहरा होता है उसे लिंबाले की आत्मकथा से समझा जा सकता है। लिंबाले जी का जन्म अवैध संतान के रूप में हुआ था। उनके पिता एक पाटील सवर्ण थे और उनकी माँ अछूत जाति की थी। पिता बड़े मकान में रहते थे। लिंबाले जी अपनी माँ, नाना-नानी, बहनों के साथ दलित बस्ती में रहते थे, अपनी असल पहचान के लिए संघर्ष करते हुए, समाज और अपनी नियति से लड़ते हुए। वे बस स्टैंड पर एक झोपड़े में ही रहे। लिंबाले कहते हैं, बस स्टैंड हमारे लिए घरों जैसे होते थे। हम बेकार हो चुके बस टिकटों की तरह पड़े रहते थे।

अपने समाज की क्रूरता और अमानवीयता को उजागर करते हुए लिंबाले जी कहते हैं कि उनके समाज में उच्च वर्ण के लोगों ने दलित स्त्रियों का सिर्फ इस्तेमाल किया है, सिर्फ भोगा है। अपने माँ और पिता के बीच के संबंध को भी वे इसी श्रेणी में रखते थे।

लिंबाले अपनी प्रसिद्ध और पुरस्कृत कृति 'सनातन' के बारे में कहते हैं कि हमारे इतिहास में राजे रजवाड़ों का भरपूर वर्णन मिलता है, बाद में आजादी के आंदोलन का भी बहुत उल्लेख है लेकिन दलितों और आदिवासियों का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इतिहास में दलितों और आदिवासियों को ठुकराया गया है। दलित और आदिवासी समाज में भी बड़े-बड़े योद्धा और बुद्धिजीवी हुए हैं, जिन्होंने समाज और राष्ट्र के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान किया है। सच ही तो है- क्यों हमारे बच्चों को ऐसा इतिहास नहीं पढ़ाया जाता जिसमें दलितों और आदिवासियों की वीरगाथा हो?

बहुत कुछ सहा है दलित समाज ने इसलिए साहित्यकारो की कलम से ये आवाज़ आई है कि बस बहुत हो चुका, अब और नहीं, हम भी इंसान हैं, हमें भी इस धरा पर जीने और ख़ुश रहने का अधिकार है। प्रतिरोध का स्वर अब बुलन्द हो चुका है। लिंबाले जी अपनी कविता 'सूर्योदय' में लिखते हैं :

'मैं नहीं माँग रहा हूँ तुम्हारे आकाश के सूर्य चंद्र
खेती-बाड़ी, हवेली आदि
मैं नहीं माँग रहा हूँ ईश्वर, धर्म, जाति, पंथ अथवा
तुम्हारी माँ, बहन, बेटा-बेटी
मैं मांग रहा हूँ, मेरे हक़, एक इंसान के रूप में

. . . .

मुझे मेरे हक़ चाहिए। मुझे मेरे हक़ दीजिए।
नकार रहे हो क्या इस विस्फोटक अवस्था को ?
मैं उखड़ता जाऊंगा रेल लाइन की तरह धर्म ग्रंथ
आग लगा दूंगा सिटी बस की तरह तुम्हारे अंधाधुंध
अधिकारों को
दोस्तों
मेरे हक सूर्य की तरह उदय हो रहे हैं
मेरे सूर्योदय को क्या तुम नकारोगे ?'

साहित्यकारों और समाज सुधारकों के संयुक्त प्रयासों से समाज में काफ़ी बदलाव आना शुरु हो गये हैं। अब उम्मीद यही की जा रही है कि एक ऐसे समरस समाज का निर्माण हो, जहाँ सभी नागरिक समान हों। सबको अपने व्यक्तित्व विकास और सपनों की उड़ान भरने के समान अवसर प्राप्त हों। बस इतनी सी बात समझ जायें सभी सहृदय पाठक। यही तो दलित साहित्य का विस्तार है। शरण कुमार लिंबाले को प्राप्त 15 लाख रूपए के सरस्वती सम्मान को हमें एक नए नजरिए से देखना होगा- हम इसे एक सामाजिक अन्याय के प्रति अपने पश्चाताप की तरह देख सकते हैं। दलित जीवन ने वाकई सदियों से बहुत कुछ झेला है, उसके मुकाबले यह सम्मान बहुत छोटा रहेगा। आत्मकथा, निजी तकलीफ़, सामाजिक ग़ैर- बराबरी की दास्तान के दायरे से बाहर निकाल कर दलित साहित्य को अब लंबे सफर पर निकलना होगा। अब साहित्य को नए समाज के लिए एक नया वैचारिक उद्यम करना होगा ताकि हिन्दी भारती और हिन्दी साहित्य विश्व भर में अपना परचम लहराये। उम्मीद करते हैं कि लेखन और विचार

का यह सिलसिला आगे बढ़ेगा और विचार और सरोकार की नई सरहदों का संधान करेगा।

3.2.3.3 दलित आत्मकथा लेखन पर शरणकुमार लिंबाले का विचार

शरणकुमार लिंबाले को इस बात में खेद होता है कि शेष समाज दलित आत्मकथनों को शस्त्र की तरह नहीं लेता। गोपाल प्रधान से हुई उनके साक्षात्कार में वे कहते हैं कि दलित आत्मकथनों को पढ़कर समाज कहता है- "कितना बढ़िया लिखा है, कितना अच्छा लिखा है- जैसे महफिल में बैठकर गज़ल सुन रहे हों। वाह-वाह करके दाद देने लगें। मेरी वेदना को सुनकर जब आप दाद देते हैं तो मैं सोचने लगता हूँ अरे ये क्या चल रहा है? मैं कहता हूँ कि मुझ पर अन्याय हो रहा है, मेरी माँ, बहनों को नंगा किया जा रहा है-तो आप बोलने लगे वाह-वाह? मैं समझ नहीं पाता कि आप आदमी हैं कि शैतान, मुझे दाद दे रहें हैं या मेरे जख्मों पर नमक लगा रहे हैं? ये मेरी वेदना है, कलाकृति नहीं, ये मेरा प्रश्न है। आप 'अक्करमाशी' अच्छी हैं कहेंगे तो मुझे अपमान लगेगा। मेरी 'अक्करमाशी' अच्छी है कि बुरी है, इससे मुझे ताल्लुक नहीं, 'अक्करमाशी' में मेरे जो प्रश्न हैं, उसके बारे में आपकी भूमिका क्या है?"

3.2.3.4 आत्मकथा लिखने की प्रेरणा

आत्मकथा लिखने की मूल प्रेरणा भारत की जाति व्यवस्था से उत्पन्न आक्रोश ही रहा। जो उनके इन शब्दों में स्पष्ट झलकता है- "रोटी भी सवर्णों के हाथों में थी और इस बस्ती की इज्जत भी। एक हाथ से उन्होंने इस बस्ती की भूख को मिटाया तो दूसरे हाथ से इनको भोगा। सवर्णों के दोनों हाथो के बीच कसमसाती मसामाँ को मैं देख नहीं पाता। सीता को अशोक वन से छुड़ाया गया, पर मेरी माँ का छुटकारा कौन करेगा? पटेल की रखैल कहलाते-कहलाते वह पटेल के खेत में क्षण-क्षण रीतते हुए मर जाएगी। पर हम बच्चों का क्या होगा?"

कॉलेज की पढाई के बाद शरण एक प्राइवेट स्कूल में अध्यापक बने। लेकिन वहाँ पर भी उनका शोषण ही हुआ। इस कारण उनका मन वहाँ रमा नहीं। वे अगर महाविद्यालय में ईमानदारी से परिश्रम करते और अगर खुद को केवल अध्ययन तक ही सीमित रखते तो उनका कैरियर कुछ और ही हो जाता। परन्तु यह सब नहीं हुआ। एक ओर भीतर का खालीपन तो दूसरी ओर भयावह दरिद्रता। इसी बीच उनकी नौकरी मराठवाड़ा में लग गई और उन दिनों मराठवाड़ा विश्वविद्यालय को डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर का नाम दिया जाए इस उद्देश्य से आंदोलन तीव्र होता जा रहा था। आन्दोलन की खबरें पढ़कर वे बेचैन होने लगे। दलितों पर रोज़ अत्याचार हो रहे थे। उन खबरों को पढ़कर लेखक का मन काफी बेचैन हो जाता लेकिन वे स्वयं उस समय अपनी जाति छिपा कर जी रहे थे, और सवर्णों के बीच उठ-बैठ रहे थे। इसी बीच उनके भीतर का विद्रोही व्यक्तित्व उभरने लगा। उनके ही शब्दों में- अन्याय, अत्याचार करने वालों की गरदन मरोड़ कर फेंकूँ, उनके घर-द्वारों को आग लगा दूँ, उन पर भी अन्याय-अत्याचार करूँ, दलितों पर होने वाले अमानवीय क्रूर अत्याचारों के विरूद्ध विद्रोह करूँ, हम भी मनुष्य हैं, यह चिल्ला-चिल्लाकर कहूँ- ऐसे विचार मन में उठने लगे।

दलित चेतना तीव्र रूप से उभरने लगी। वे दलित साहित्य की ओर मुड़ने लगे। वे पागलों की तरह दलित साहित्य पढ़ने लगे। संघर्ष की इच्छा से वे पागल होने लगे। 'अक्करमाशी' लिखने से पूर्व उन्होंने करीब-करीब सभी दलित आत्मकथाएँ पढ़ डाली। उन आत्मकथाओं को पढ़ने के बाद लेखक को लगा कि उन सब में व्यक्त जीवन से उनका जीवन काफी भिन्न है। यह भिन्नता ही उन्हें आत्मकथा लेखन के लिए प्रेरित करती है। अपनी आत्मकथा लेखन के बारे में वे लिखते हैं- 'मैं लिखता गया। जैसे साँप केंचुल फेंककर बाहर आता है, वैसे ही मैं अक्करमाशी से बाहर आ गया। अब मुझे किसी से भय नहीं रहा। कोई हीन ग्रंथि नहीं।'

अक्करमाशी के रूप में समाज में बहिष्कृत शरणकुमार लिंबाले अपनी आत्मकथा लिखने का उद्देश्य कुछ इस प्रकार व्यक्त करते हैं- "मुझे नाजायज़ बच्चों का प्रश्न बहुत गंभीर और महत्व का लगता है। भारतीय संविधान की चौदहवीं धारा के अनुसार, कानून के सम्मुख सभी समान हैं -ऐसा कहा गया है। परन्तु पर्सनल लॉ- इस मूलभूत अधिकार के विरोध में है। पर्सनल लॉ जायज-नाजायज में भेद करता है। जायज संतति को पिता की संपत्ति के सभी उत्तराधिकार प्राप्त हो जाते हैं, परन्तु नाज़ायज संतति का क्या? वह भी उसी पिता से जन्म लेता है न? इसमें उसका क्या दोष? किसी व्यक्ति को नाज़ायज़ घोषित कर, उसके अधिकारों को नकारना वास्तव में मानवता का गला घोंट ना है।"

3.2.3.5 'अक्करमाशी' पर आरोप

शरणकुमार लिंबाले की आत्मकथा पर ढेरों प्रश्न उठाए गए। वैसे यह सर्वमान्य है कि पुस्तक का शीर्षक आकर्षक होना चाहिए। लेकिन 'अक्करमाशी' वह तो एक गाली है। अक्करमाशी का अभिप्राय है-ग्यारह माशे। बारह माशे का एक तोला होता है। ग्यारह माशे का एक तोला हो नहीं सकता, क्योंकि एक माशे की कमी जो है। अक्करमाशी व्यक्ति की भी ऐसी ही स्थिति होती है। उसका जन्म पारंपरिक सम्बन्धों (पति-पत्नी) से नहीं होता।

आत्मकथा 'अक्करमाशी' लिखने के बाद, घर, परिवार और अपने समाज की प्रतिक्रिया को लेकर पूछे गए सवाल के जवाब में लिंबाले बताते हैं- मैं आत्मकथा लिख रहा हूँ– ऐसा जब मैंने घोषित किया तब मेरे घर के सभी सदस्यों को बेहद खुशी हुई। अपना नाम पुस्तक में छपेगा, यही उनकी इस खुशी का कारण था। पर मैंने जो भी लिखा है, उसका वास्तव जब इन्हें मालूम हुआ तब से वे सब के सब मुझ पर नाराज़ हो गए। अक्करमाशी में विविध संदर्भ आए हैं। मेरी बहन की सास का उल्लेख उसमें आया है। जब उसे इस बात का पता चल गया तो वह आग बबूला हो गई।

अपनी आत्मकथा लेखन के दौरान उन्हें जिस मानसिक संघर्ष से गुज़रना पड़ा उसे वे यूँ उजागर करते हैं- "जब मैं आत्मकथा लिख रहा था तो माँ को बहुत अच्छा लगा कि बेटा लेखक बन रहा है। लेकिन जब उसे पता चला कि उसकी आपबीती उसमें व्यक्त हुई है तो वह नाराज़ हो गई कि जिसे मैंने जन्म दिया उसी ने मुझे बदनाम कर दिया। गाँव वालों ने गाँव आने पर पाबंदी लगा दी। कहने लगे कि लिखना था तो अपने बारे में लिखते, गाँव के बारे में क्यों लिखा। इन आत्मकथाओं के कारण, हमारे समाज की बेइज्जती हो रही है, ऐसा दलित पाठकों को लगता है। मेरी पत्नी कुसुम कहती है– यह सब क्यों लिखते हो। इसका उपयोग क्या इसे पढ़कर अपने बच्चों को कौन स्वीकारेगा।" कुसुम की बातें मुझे ठीक लगती है। बावजूद इसके मुझे यह कहना ही चाहिए प्रत्येक गाँव में ज़मीनदार होते ही हैं। उनकी रखैलें होती हैं। इन रखैल स्त्रीयों की संततियों की व्यथा का लोगों तक पहुँचाना ज़रूरी लगता है। यह कहने के लिए ही यह आत्मकथा मुझे नज़दीक की लगती है।

'अक्करमाशी' प्रकाशित होने के बाद कई बार लेखक को इस बात पर पश्चाताप भी हुआ। वे कहते हैं-मुझे लगता रहा कि बेकार में ही आत्मकथा लिख डाली। अपने किसी निकटस्थ मित्र को अक्करमाशी पढ़ने हेतु देने की मेरी इच्छा ही नहीं होती। छटपटाहट होती है। किसी रण्डी का मैं बेटा हूँ, इसे वह जान गया तो? भोगी हुई दरिद्रता, मेरी जाति, सुअर का माँस खाना - यह सब अगर वह पढ़ गया तो? - आदि प्रश्न मुझे सताने लगते हैं।

3.2.3.6 दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र

दलित लेखक को पारंपरिक कसौटियाँ समयातीत लगती हैं। हमारा पारंपरिक सौंदर्यशास्त्र मूलतः संस्कृत अथवा अंग्रेज़ी के साहित्यशास्त्र पर आधारित है। ऐसा साहित्यशास्त्र क्या दलित साहित्य को न्याय दे सकेगा। साहित्य की कसौटियाँ सभी कालों में स्थिर नहीं रहती। बदलते काल के साथ साहित्य भी बदलता है और उसकी समीक्षा में भी बदलाव की संभावना होती है। रूढ़ साहित्यिक कसौटी के आधार पर नयी साहित्यिक धारा का उचित मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

शरणकुमार लिंबाले जी का मानना है कि अभी तक साहित्य में राजा, महाराजाओं का ही चित्रण था। किसी लब्ध प्रतिष्ठित वर्ग को ही प्रतिष्ठित करता था वह सौंदर्यशास्त्र। जो दलित साहित्य के साथ न्याय नहीं कर सकता। क्योंकि दलित साहित्य आम आदमी की बात करता है। आम आदमी का चेहरा, नस्ल अलग है। पारंपरिक सौंदर्यशास्त्र का स्थायी भाव आनंद है। जिस कलाकृति को पढ़कर ज्यादा आनंद की अनुभूति होगी, वही उत्कृष्ट है।

दलित साहित्य पारंपरिक साहित्य के मूल्यों और मानदंडों से अलग नए सौंदर्यशास्त्र की स्थापना करता है। जिसमें समता एवं बंधुत्व की भावना सर्वोपरी है। शरणकुमार लिंबाले जी मानते हैं कि ऐसे साहित्य का मूल्यांकन पारंपरिक साहित्य के सौंदर्य तत्वों के आधार पर संभव नहीं है। क्योंकि सौंदर्य के लिए सामाजिक यथार्थ एक विशिष्ट घटक है। कल्पना और आदर्श की नींव पर खड़ा साहित्य किसी भी समाज के लिए प्रासंगिक नहीं हो सकता। उनका मानना है कि साहित्य के लिए वैचारिक प्रतिबद्धता और वर्तमान की दारुण विसंगतियाँ ही उसे प्रासंगिक बनाती है।दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र पर

जब हम चिन्तन करते हैं तो पाते हैं, यह साहित्य वेदना व नकार से जन्मा है। इस लेखन में अभाव, भेदभाव, पीड़ा, आक्रोश तथा विरोध के स्वर स्पष्ट दिखाई देते हैं। इस साहित्य की समीक्षा भारतीय साहित्य परंपरा के निकषों पर करना पूरी तरह बेईमानी होगी। दलितों की पीड़ा को वाणी देनेवाले साहित्य को सौंदर्यशास्त्र की नई दृष्टि से देखना होगा। उसकी भाषा, बिंब, प्रतीक, भावबोध आदि परंपरावादी साहित्य से भिन्न है। इसलिए दलित साहित्य के मूल्यांकन के लिए अलग सौंदर्यशास्त्र की नितांत आवश्यकता रही है।

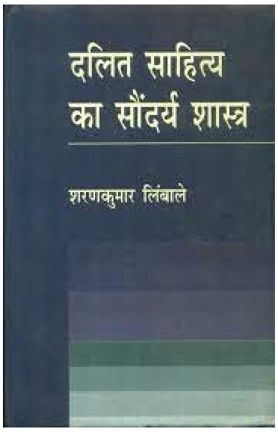

शरणकुमार लिंबाले की पुस्तक दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र में नये सौंदर्यशास्त्र के विकास की चर्चा विस्तृत रूप से की गई है। दलित साहित्य परंपरागत साहित्य से अलग अपने नए प्रतीक, मिथक, विधा, शैली यहाँ तक कि भाषा को भी अपने अनुरूप गढ़ने में सक्षम रही है। उसने अपनी कसौटियों पर सत्यं, शिवम् और सुन्दरम् को भी परखा है। शरणकुमार लिंबाले का मानना है कि सामाजिक मूल्य ही दलित साहित्य के सौंदर्य मूल्य हैं और सत्यं, शिवम्, सुंदरम् की कल्पना भेदमूलक है। यह सवर्ण समाज के स्वार्थ साधन के लिए की गई थी और वह दलितों को असत्, अशिव और असुंदर मानकर चलती है। वे इसकी व्याख्या बदलने की कोशिश करते हुए उसे सामाजिक और ऐहिक बनाने पर बल देते हैं। उन्होंने मनुष्य के अस्तित्व को सत्यं, उसकी स्वतंत्रता को शिवम् तथा उसकी मनुष्यता को सुन्दरम् कहकर व्याख्यायित किया है और समता, बंधुत्व और स्वतंत्रता की चर्चा को ही दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र की चर्चा माना है। इस प्रकार उन्होंने सौंदर्यशास्त्र की एक नई परिभाषा देकर एक नया मानदंड प्रस्तुत किया है। एक नई कसौटी दी दलित साहित्य को।

दलित साहित्य में व्यक्त हुई वेदना और विद्रोह पढकर पाठक बेचैन होगा या आनंदित? यही सवाल शरणकुमार लिंबाले करते हैं। क्योंकि दलित साहित्य पाठक को बेचैन करने वाला साहित्य है। सौंदर्य विचार में रसिक वृत्ति और दलित साहित्य में दलित चेतना का मेल कैसे संभव किया जाए। उनका मानना है कि दलित चेतना क्रांतिकारी मानसिकता है। यह चेतना आनंद पर निर्भर न होकर समता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुभाव पर आधारित है। इसलिए दलित समीक्षकों को सौंदर्य की कल्पना बदलना महत्वपूर्ण लगता है। सौंदर्य की कल्पना हर युग में होने वाले विचारों से संबंधित होती है। लिंबाले आगे पूछते हैं -क्या मनुष्य केवल सौंदर्य का दीवाना है? क्या मनुष्य को केवल आनंद चाहिए? इसका उत्तर नकारात्मक है, क्योंकि हज़ारों लाखों मनुष्य स्वतंत्रता, प्रेम, न्याय और समता के लिए दीवाने हुए दिखाई पड़ते हैं। इसकेलिए उन्होंने आत्मबलिदान किया। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य केवल आनंद और सौंदर्य के लिए दीवाना नहीं होता, वो समता, स्वतंत्रता, न्याय और प्रेम के लिए भी दीवाना होता है, अर्थात् मनुष्य को कलामूल्य के समान ही नहीं बल्कि उससे अधिक सामाजिक मूल्य भी प्राण-प्रिय नज़र आता है। समता, स्वतंत्रता, न्याय और प्रेम ये व्यक्ति और समाज की मूलभूत भावनाएँ हैं। वे आनंद और सौंदर्य से कई गुना अधिक महत्वपूर्ण है। आनंद अथवा सौंदर्य के लिए दुनिया में कभी भी क्रांति नहीं हुई।

शरणकुमार लिंबाले दलित साहित्य के मूल्याकंण के लिए निम्नलिखित कसौटियाँ निश्चित करते हैं।

- कलाकार को अपने अनुभव के साथ ईमानदार होना चाहिए।
- कलाकार के अनुभवों का सार्वजनीकरण होना चाहिए।
- कलाकार के अनुभव में प्रदेश की सीमा पार करने की शक्ति होनी चाहिए।
- कलाकार का अनुभव किसी भी काल में ताज़ा लगना चाहिए।

अन्य दलित आत्मकथाओं की तरह शरणकुमार लिंबाले की अक्करमाशी एक दलित की आत्मा को उजागर करती है, जिसे उच्च जाति (पाटिल) के पाखंडों और प्रचलित परंपराओं के कारण पीडित होना पड़ा है। संविधान में

दलितों के हितों की रक्षा करने वाले प्रावधानों के बावजूद उन्हें समाज में अपमानित और बहिष्कृत कर दिया जाता है।

Critical Overview / अवलोकन

शरणकुमार लिंबाले का संघर्ष न केवल उनके जीवन का संघर्ष है बल्कि उसकी अस्मिता और अस्तित्व का भी संघर्ष है। इस संघर्ष को वाणी देता हुआ लेखक अपनी आत्मकथा की भूमिका में ही कहते हैं- 'गुमशुदा व्यक्तित्व लिए जीने वाले मेरे अस्तित्व को जारज कहकर सतत अपमानित किया गया है। ब्राह्मणों से लेकर शूद्रों तक सभी अपने खानदानी अभिमान और खानदानी अस्मिता लिए जीते हैं परन्तु यहाँ मेरी अस्मिता पर ही बलात्कार।' उनकी रचनाओं में उनकी आत्मकथा 'अक्करमाशी' ने उन्हें प्रशस्ति के शिखर पर पहुँचाया क्योंकि यह आत्मकथा न केवल किसी दलित लेखक की आत्मकथा है,बल्कि यह भारतीय समाज और संस्कृति की सबसे बड़ी विडंबना भी है। संपूर्ण समाज के गाल पर थप्पड़ मारती हुई यह आत्मकथा एक अनुत्तरित सवाल भी खड़ा करती है।लेखक का सवाल कि- वह कौन है? व्यक्ति अकेला कुछ नहीं होता। माता-पिता,सगे संबंधी और सामाजिक संबंधों के साथ उसकी नैतिक-अनैतिक स्वीकृति ही उसकी अस्मिता और पहचान है। दलित रचनाओं के लिए एक अलग सौंदर्यशास्त्र की मांग शरणकुमार लिंबाले को साहित्य जगत में एक अलग पहचान बनाती है। उनका यह विश्वास कि मनुष्य केवल आनंद और सौंदर्य के लिए दीवाना नहीं होता। वह समता, स्वतंत्रता, न्याय और प्रेम के लिए भी दीवाना होता है। दलित साहित्य को परखने के लिए नई कसौटियों को स्थापित करने के लिए आलोचकों को मज़बूर किया गया। उनको भी मानना पड़ा कि समता, स्वतंत्रता, न्याय और प्रेम व्यक्ति और समाज की मूलभूत भावनाएँ हैं। वे आनंद और सौंदर्य से कई गुना अधिक महत्वपूर्ण है।

Recap / पुनरावृत्ति

- दलित आत्मकथन का प्रारंभ मराठी साहित्य में वरिष्ठ लेखक दया पवार के आत्मकथन बलूंत (1978) से हुई थी।
- हिन्दी दलित साहित्य में 90 के दशक में पहली आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' आयी।
- शरणकुमार लिंबाले का जन्म 1 जून, 1956 को महाराष्ट्र के सोलापुर ज़िले के हन्नूर गाँव में हुआ।
- शरणकुमार लिंबाले जी की रचनाओं में सबसे ज़्यादा प्रसिद्ध है उनकी आत्मकथा 'अक्करमाशी' जिसका प्रकाशन 1984 में मराठी भाषा में हुआ था।
- 'नरवानर', 'हिन्दू','सनातन', 'बहुजन', 'झुण्ड' और 'गर्व से कहो' लिंबाले जी के प्रसिद्ध उपन्यास हैं।
- 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' लिंबालेजी का प्रमुख आलोचना ग्रंथ है।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. किन्हीं तीन मराठी दलित आत्मकथाओं का नाम लिखिए।
2. प्रथम हिन्दी दलित आत्मकथा कौन सी है?
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की आत्मकथा का नाम क्या है?
4. किन्हीं तीन मराठी दलित महिलाओं का उल्लेख कीजिए जिन्होंने आत्मकथा लिखीं हैं।
5. दया पवार के आत्मकथन 'बलूतं' का प्रकाशन वर्ष कौन सा है?
6. लिंबाले जी का जन्म कब और कहां हुआ?
7. लिंबाले जी की किस रचना पर उन्हें सरस्वती सम्मान मिला है?

8. लिंबाले जी के उपन्यासों के नाम लिखिए।
9. दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र किसकी रचना है?
10. 'अक्कारमाशी' का अंग्रेज़ी अनुवाद किस नाम से हुआ है?
11. 'अक्कारमाशी' का हिन्दी अनुवाद किसने किया?
12. लिंबाले जी के कहानी संग्रहों के नाम लिखिए।

Answers / उत्तर

1. दया पवार की 'बलूतं' लक्ष्मण गायकवाड की 'उचक्का' लक्ष्मण माने की 'उपरा'।
2. मोहनदास नैमिशराय जी का 'अपने-अपने पिंजरे'।
3. 'जूठन'।
4. बेबी कांबले, शांताबाई, और कौशल्या बैसंत्री।
5. दया पवार के आत्मकथन बलूतं का प्रकाशन वर्ष 1978 है।
6. 1 जून 1956 महाराष्ट्र के सोलापुर जिले में।
7. सनातन।
8. नरवानर, हिंदू, बहुजन, सनातन।
9. शरण कुमार लिंबाले।
10. आउट कास्ट।
11. डॉ. सूर्य नारायण रणसुभे।
12. देवता आदमी, छुआछूत, दलित ब्राह्मण

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. लिंबाले जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
2. लिंबाले जी के रचना - संसार का परिचय दीजिए।
3. शरण कुमार लिंबाले जी के अनुभूति पक्ष पर विचार कीजिए।
4. दलित आत्मकथाओं के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।

Reference

1. दलित साहित्य वेदना और विद्रोह - सं शरणकुमार लिंबाले, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
2. हिन्दी दलित आत्मकथा - डॉ. संजय नवले,अमन प्रकाशन, कानपुर।
3. दलित चिन्तन का विकास - डॉ. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
4. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - शरणकुमार लिंबाले, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
5. दलित चेतना की पहचान - सं डॉ. सूर्य नारायण रणसुभे, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
6. उत्तर-आधुनिकतावाद और दलित साहित्य - कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
7. दलित साहित्य के प्रतिमान - डॉ. एन. सिंह, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
8. दलित हस्तक्षेप - रमणिका गुप्ता, शिल्पायन, दिल्ली।

Video Link

1. Akkarmashi (Episode 4)https://youtu.be/T16GeHVflUM
2. Akkarmashi (Episode 5) https://youtu.be/cujlKDqLw-M
3. Akkarmashi (Episode 6) https://youtu.be/vg1uhPeXWps
4. Akkarmashi (Episode 7) https://youtu.be/nH5UGHPKchE
5. Akkarmashi (Episode 8) https://youtu.be/sDpHIVcCK0o
6. Akkarmashi (Episode 9) https://youtu.be/ixkD1Zai91Q

SGOU

इकाई 3

अक्करमाशी

- शरणकुमार लिंबाले

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- मराठी दलित आत्मकथनों की परंपरा के बीच अक्करमाशी की मौजूदगी से अवगत होना
- दलित अस्मिता के निर्माण की प्रक्रिया को पहचानना
- अक्करमाशी यानी तथाकथित अवैध संतान के गहन मानसिक अंतर्द्वंदों को जानना
- दलित समाज की आंतरिक अस्पृश्यता से परिचित होना
- दलित स्वाभिमान की उठान और अस्मिता निर्माण की प्रक्रिया से अवगत होंगे।

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

दलित साहित्य आंदोलन के उफनते दौर में कई दलित लेखकों ने आत्मकथा लिखी है। लेकिन 'अक्करमाशी' को छोड़ इनमें से किसी को भी हिन्दी के अलावा अन्य किसी भारतीय भाषाओं में अनूदित होने का गर्व हासिल नहीं है। 'अक्करमाशी' में अपनी एक विशिष्ट मौलिकता है। यह सहसा ध्यान आकर्षित करने वाला भी है। मनुवादी समाज व्यवस्था और संस्कृति रक्षकों ने अस्पृश्य तथा बहिष्कृत करार दिए तमाम दलितों को अकल्पनीय, अमानुष तथा त्रासद स्थितियों के बीच जीने-मरने के लिए विवश किया है। वे सब निरपवाद रूप से तथा अनिवार्य तौर पर अक्करमाशी के लेखक के हिस्से में भी आए हैं। नितांत वैयक्तिक मानसिकता के धरातल के बावजूद यह आत्मकथा एक तरह से समूचे दलित समाज का प्रातिनिधिक व्यथा लेख बन गया है। यह केवल मराठी दलित साहित्य में ही नहीं वरन् भारतीय भाषा साहित्य में भी शायद पहली बार किसी दलित अस्पृश्य लेखक ने इतनी ईमानदारी से अपनी जीवन गाथा समाज के सामने खोलकर रख दिया है। इसलिए 'अक्करमाशी' भारतीय भाषा साहित्य को एक महत्वपूर्ण देन है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

अक्करमाशी, दोगला, अवैध, बारहमाशे, बहिष्कृत

Discussion / चर्चा

दलित आत्मकथनों ने एक ऐसे मानवीय यथार्थ को विमर्श के केन्द्र में ला खड़ा किया है जिस से समाज निरंतर मुँह मोड़ते आए हैं। दया पवार के 'अछूत' के बाद प्रकाशित 'अक्करमाशी' में बहिष्कृत भारत की जिन निर्मम सच्चाइयों को बेलाग ढंग से अभिव्यक्त किया वह मील का पत्थर साबित हुआ। दलित आत्मकथाओं ने साहित्य को महज आनन्द और विनोद के दायरे में सीमित करने के कुत्सित इरादों से न सिर्फ हमें आगाह किया बल्कि उनके समानांतर सत्य के साक्षात्कार का विवेक भी दिया। आमतौर पर आत्मकथाओं में लेखक अपनी दुनिया को अनन्य बताने की मानसिकता से संचालित होता है। यानी उनकी दृष्टि अक्सर एकांगी होती है। जो लेखक ने भोगा और सहा है, उसे किसी और ने भोगा और सहा नहीं होगा। यह प्रवृत्ति उसे जीवन को एकांगी

दृष्टि से देखने के लिए प्रेरित और विवश करती है। लेकिन दलित आत्मकथाकारों की दृष्टि एकांगी नहीं होती, क्योंकि जब वे लिखते हैं तो समूचे दलित समाज की दृष्टि, उनका मान-अपमान उनके सवाल लेखक के सामने होते हैं। इसलिए दलित साहित्य को जन साहित्य (Mass Literature) कहा जाता है। दलित आत्मकथन केवल एक व्यक्ति के जीवन पर आधारित नहीं है उसमें संपूर्ण दलित समाज की मौजूदगी भी है। दलित लेखक केवल पीड़ा की कहानी कहकर अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं कर देता। वह समाज व्यवस्था की वैचारिकी से हमें रू-ब-रू कराना नहीं भूलता।

अक्करमाशी की वैचारिक पृष्ठभूमि और कथन शैली का मूल्यांकन करते समय उल्लिखित विशेषताओं के साथ अन्य अनेक विशेषताएँ भी नज़र आती है। जिनका विस्तार से मूल्यांकन ज़रूरी है। इस इकाई में आप मराठी के बेहद उल्लेखनीय आत्मकथन 'अक्करमाशी' के संवेदना संसार के विभिन्न पहलुओं से रू-ब-रू होंगे। बहिष्कृत भारत की निर्मम सच्चाईयों को बेलाग ढंग से अभिव्यक्त करते हुए यह आत्मकथन दलित अस्मिता के निर्माण का प्रखर और प्रमुख साथी बना। यह पुस्तक दलित साहित्यान्दोलन की एक बड़ी कमी को पूरा करते हुए दलित रचनात्मकता की कुछ मूलभूत आस्थाओं और प्रस्थान बिन्दुओं की खोज करती है। साहित्य के स्थापित तथा वर्चस्ववादी मूल्यों और आस्थाओं पर यह चुनौती भी देती है।

3.3.1 सवर्ण पिता और अछूत माता की संतति की व्यथा कथा- 'अक्करमाशी'

आत्मकथा उपलब्धि की कहानी है। आत्मकथा अर्थात आत्मेतिहास व्यक्ति के जीवन और कालखंड का इतिहास है। प्रत्येक दलित आत्मकथा प्रकारान्तर से दुखयात्रा ही होती है। लेकिन शरणकुमार लिंबाले की आत्मकथा अन्य दलित आत्मकथाओं से भिन्न है। अक्करमाशी भी तत्कालीन समाज की दस्तावेज़ है। उस समाज का जहाँ लोग पशुओं की तरह ज़िंदगी बिताते हैं। तिरस्कार, भूख, निंदा, शोषण ये सब आरंभ से लेकर अंत तक पाठक को सताते रहते हैं। दलितों को दलित होने से जो दुख उठाना पड़ता है वह तो उसमें है ही, लेकिन उससे भी अधिक दर्द देने वाली वेदना उसमें है। वह दुःख है 'अक्करमाशी' अर्थात् दोगला, अवैध होने का। समाज उसकी अवहेलना लगातार करता रहता है। दरअसल यह एक दुस्वप्न की आत्मकथा है। दोहरे और भीषण यथार्थ ने लेखक के समूचे जीवन को एक दुस्वप्न में तब्दील कर लिया है। अछूत रहकर उन्हें काफी दुख उठाना पड़ता है। लेकिन अक्करमाशी के रूप में उन्हें जो दुख भोगना पड़ा वह असह्य है। उनका संघर्ष संस्कृति और नियति दोनों से है।

लिंबाले का जन्म महाराष्ट्र कर्नाटक सीमांतर प्रदेश के एक दलित बस्ती में हुआ। उनकी माँ महर जाती के होने से वे दलित माने जाते थे। लेकिन दलितों ने उन्हें अक्करमाशी कहा। महाराष्ट्र प्रदेश और खास तौर पर मराठी भाषिक समाज में यह चलन आम था। अभिजात वर्ग, कुल, खानदान या घराने की कुलीनता आंकने के लिए एक विशिष्ट पैमाने के रूप में 'तोला-माशा' जैसे शब्दों का इस्तेमाल हुआ करता था। जो व्यक्ति, वंश एवं कुलीनता के लिहाज़ से सौ फीसदी शुद्ध, खरा एवं खालिस होता था वह बारह माशी(बारह ग्राम-एक तोला) समझा और कहा जाता था। समाज और बिरादरी वालों में उसका अपना एक खास रौब-रुतबा हुआ करता था। मगर यदाकदा कोई बारहमाशी उच्चकुलीन व्यक्ति किसी निम्न या अस्पृश्य जाति समाज की औरत से शारीरिक संबंध रखता और उससे अगर कोई संतानोत्पत्ति होती तो वह नाजायज समझा जाता और वो संतान अगर लड़का होता तो वह अक्करमाशी के हीनताबोधक विशेष नाम से पहचाना जाता। यानी उच्चकुलीनोत्पन्न मर्द और निम्न जाति औरत इन दोनों के संपर्क से पैदा लड़के को तथाकथित नैतिकतावादी उच्चकुलीन और अभिजन कहे जाने वाले समाज द्वारा भर्त्सना, अवहेलना और नफरत के साथ 'थूं' कहकर दी जाने वाली महज़ एक गाली है 'अक्करमाशी' शब्द।

शरणकुमार लिंबाले के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी उसका अक्करमाशी होना था और इसका प्रमुख कारण उसकी माँ की ज़िन्दगी से जुड़ा हुआ है। उसकी माँ -मसामाय संतामाय की इकलौती बेटी थी और उसकी शादी विट्ठल कांबले नामक एक गरीब व्यक्ति से करा दी गई थी। उसके यहाँ खाने की किल्लत होती थी। हमेशा भूखा रहना पड़ता। विट्ठल कांबले एक खेत के मालिक हणमंता लिंबाले के यहाँ साल भर की शर्त पर मज़दूर था। रात-दिन मालिक के घर या खेत पर काम करता। खेत के अनेक जानवरों में एक और जानवर। कोल्हू के बैल की तरह वह मालिक के खेत में काम करता था। बुरे समय

में मालिक हणमंता उसकी सहायता करता। लेकिन इस सहायता के बदले में उसकी नज़र मसामाय पर थी। ऐसा अक्सर होता था। हणमंता और मसामां के अनैतिक संबंधों का पता पूरे गाँव को चल गया और इस प्रकार विठ्ठल कांबले ने मसामाय से तलाक ले लिया। विठ्ठल कांबले ने दूसरी शादी कर ली। पुरुषों के लिए सब मुमकिन जो था लेकिन मसामाय ने अकेले ही जीने का निर्णय लिया। हणमंता लिंबाले इसी टोह में था। उसने मसामां से संपर्क किया और उसे अक्कलकोट में किराए के एक कमरे में रख दिया। मसामाय ने मजबूरन हणमंता का हाथ पकड लिया। लेखक के ही शब्दों में- "जिस व्यक्ति को लेकर उसे बदनाम किया गया था जिन्दगी से उठा दिया गया था उसी के साथ रहना उसने तय किया। हणमंता ने मसामाय के दाम्पत्य जीवन को तोड़ दिया और उसे अपने नियंत्रण में रख लिया जैसे कोई शौक से कबूतर पालता हो। दोनों मज़े में रहने लगे। मसामाय गर्भवती हुई। लड़का हुआ। लड़के का बाप कौन?"

वे आगे लिखते हैं- "मेरे जन्म के साथ ही पटेल और ज़मीनदारों की तमाम खानदानी कोठियाँ बेचैन हुई होंगी। मेरे प्रथम उच्छ्‌वास से दुनिया की नीति घबरा गई होगी। मेरे क्रंदन से तमाम कुंतियों की छातियों से दूध निकल आया होगा।"

'अक्करमाशी' का अर्थ है- ग्यारह माशे। बारह माशे का एक तोला होता है। ग्यारह माशे का एक तोला हो नहीं सकता, क्योंकि एक माशे की कमी है। अक्करमाशी व्यक्ति की भी ऐसी स्थिति होती है। उसका जन्म पारंपरिक संबंधों (पति-पत्नी) से नहीं हुआ। अक्करमाशी एक गाली है और अपनी आत्मकथा का नामकरण इस प्रकार रखने पर लेखक पर अनेकों सवाल उठाए गए। अक्करमाशी का लेखक शरणकुमार लिंबाले समकालीन बहिष्कृत समाज द्वारा ही बहिष्कृत किया गया एक ऐसा युवक है जो अपने पूरे परिवेश में न सिर्फ महार है बल्कि अक्करमाशी विशेष नाम से भी पुकारा जाता है। अतः इस बदनसीब को अपने समूचे समकालीन समाज के खिलाफ ही नहीं बल्कि अपनी खुद की ही नियति के खिलाफ भी अनवरत रूप से जूझते रहना पड़ता है। समाज इस तरह की नाज़ायज औलादों की सरेआम हर संभव भर्त्सना, प्रताडना और अवहेलना करता रहता है। यानी हर कहीं उसे जलील करार दिया जाता है।

शरण के मन मस्तिष्क में अपनी माँ को लेकर कई सवाल उठते हैं- 'मसामाय क्यों तैयार हुई इस बलात्कार को? क्यों पचाया उसने उस अनैतिक संभोग को नौ मास नौ दिन भीतर ही भीतर? किसलिए विकसित होने दिया उसने ऐसा गर्भ? कितनी नज़रों ने छला होगा उसे व्यभिचारिणी कहकर? मेरे जन्म के बाद किसने बाँटी होगी मिठाई? किसने लाड़ किए मुझपर? किसने दी होगी साड़ी चोली मेरी माँ को? किसने किया होगा मेरा नामकरण संस्कार? मेरा खानदान कौन सा? मैं किस वंश का दीया? किस अधिकारी पिता का मैं पुत्र?'

स्कूल के दिनों से वे अपने आत्मकथा की शुरुआत करते हैं। अक्करमाशी का आरंभ पाठशाला द्वारा आयोजित वनभोजन की सैर की एक घटना से होता है। वन भोजन में सवर्णों का जूठन दलित छात्रों को दिया गया। भूखों के लिए यह तो एक वरदान ही था। वे उस पर टूट पड़े और स्वाद लेकर खाते रहे। घर आने पर शरणकुमार ने अपनी माँ से इस आनंद का बखान किया तो उसे भी खुशी हुई और उसने कहा, "हमारे लिए थोड़ा ले आते। बचा हुआ जूठन अमरित होता है। लेकिन रोज़ ऐसा अमरित कहाँ से मिलता?"

भूख का मुकाबला करते हुए शरणकुमार पढ़ रहा था। भूख ने इस बालक का लगातार पीछा किया। पेट की आग बुझाने के लिए लिंबाले जी और उनके परिवार वाले शादी के निमंत्रणों का इंतज़ार करते थे ताकि उस दिन तो पेट भर खाना मिलता। अन्य समय गोबर इकट्ठा करके उपले बनाकर बेचते थे और उसी से उनका पेट पलता था। फसल के दिनों में जानवर ज्वार के भुट्टे खा लेते, हज़्म ना होने के कारण ज्वार गोबर में यथावत रहते थे। उस गोबर से ज्वार को धोकर उनकी नानी संतामाय रोटियाँ बनाकर खुद खाती थी। ऐसी बुरी परिस्थिति थी उनकी। शरणकुमार के सामने अपने पेट की चिंता के साथ ही माँ मसामाय और संतामाय के पेट भरने का भी सवाल था। उनकेलिए जो भी मिले, वे उसे घर लाने की कोशिश करते रहे।

जब उन्हें स्कूल में दाखिल किया गया तो उनसे पिता का नाम पूछा गया। लेकिन उनके पास कहने को कोई नाम नहीं था। क्योंकि उनका जन्म अनैतिक संबंधों से हुआ था। स्कूल में यह खबर आग की तरह फैल गई।

सवर्ण हो या अवर्ण सभी केलिए वह एक मज़ाक का विषय बन गया। अछूत भी उन्हें अछूत सिद्ध करने लगे। समाज में जाति के आधार पर स्पष्ट विभाजन है। वह स्कूल में भी साफ नज़र आता है। दलित विद्यार्थियों के लिए बैठने को एक स्थान है तो सवर्णों के लिए अलग। सुविधा की हिसाब से स्कूल की जगह बदलदी जाती थी। वह या तो मंदिर के चौपाल में या फिर किसी सवर्ण सरपंच या अन्य किसी अमीर के घर की कोठी पर लगाई जाती थी। इन सब में परंपरागत तौर पर दलितों का जाना असंभव था। इसलिए दलित बच्चों को दरवाज़े के बाहर चप्पलों के बीच बैठना पड़ता था। गलती से भी वे शिक्षकों या अन्य सवर्ण छात्रों के चप्पलों को छूते तक नहीं थे। महार जाति के होने के कारण लेखक एवं उनके दोस्तों को प्रति शनिवार स्कूल की ज़मीन को गोबर से लेपने का काम करना पड़ता था। जाति व्यवस्था इतनी गहरी थी कि, दलित बालक सवर्णों की चप्पल तक छूने से घबराता है। गाँव में नदी का घाट सभी में पहला हक सवर्णों का था। सब का निचला भाग महारों के लिए था। दलित समाज भी ऊँच-नीच के भेद भाव से बाधित थे।

भूख मिटाने केलिए दलितों को समस्त शोषणों का सहन करना पड़ता था। नव वर्ष के अवसर पर महारों को गाँव की देखभाली का काम सौंपा जाता था। काम तो गाँव के चौपालों को लेपना, मरे हुए जानवरों को गाँव के बाहर लाना आदि होते थे। गरीब लोग मरे जानवरों का मांस खाने केलिए इस्तेमाल करते थे। भूख को बुझाने के लिए लेखक को केले के छिलके तक खाने पड़ते थे। पेट भरने के लिए छिलके खाना दलित जीवन की त्रासदी है। मरे जानवरों की मांस खाना दलितों की मजबूरी है, ना कि उनका शौक।

3.3.2 अक्करमाशी-आत्मानुभूति की मर्मांतक अभिव्यक्ति

शरणकुमार की 'अक्करमाशी' आत्मकथा में उनकी गहरी अन्तर्वेदना का कारण स्पष्ट हो जाता है। आत्मकथा में हमें दो आवाज़ें सुनाई देती हैं- दलित समाज की वेदना को अभिव्यक्त करने वाली प्रातिनिधिक विद्रोही आवाज़ और दूसरी उनकी अपनी गहरी अन्तर्वेदना को मुखरित करने वाली आर्त आवाज़। बहिष्कृत समाज ने भी जिसे बहिष्कृत किया उस यतिहीन महार युवक की दुखयात्रा की कहानी है- अक्करमाशी।

'अक्करमाशी' की रचना प्रक्रिया का एक प्रमुख सरोकार है - सवर्ण आधिपत्य के अस्वीकार की मुखरता। उसी से निर्मित होता है प्रतिशोध का दर्शन। प्रतिशोध के इस दर्शन की स्वाभाविक परिणति है -विद्रोह। अक्करमाशी होने का बोध लेखक के जीवन का घोर नग्न यथार्थ है। अस्पृश्य होना हिन्दू व्यवस्था का माना हुआ कलंक ही है। 'अक्करमाशी' का लेखक केवल अस्पृश्य नहीं वह अक्करमाशी यानी नाज़ायज़ या अवैध भी है। अक्करमाशी होने के कारण लेखक को ज़िन्दगी में व्यावहारिक स्तर पर काफी भोगना-भुगतना पड़ता है। रोज़मर्रा के जीवन में कदम-कदम पर अपमानित होने के प्रसंग लेखक के जीवन में अनेक हैं जिससे आप रूबरू होंगे। शरण की लड़ाई सिर्फ अस्पृश्यता और दरिद्रता के खिलाफ नहीं थी। नियति ने उसके माथे पर अक्करमाशी की छाप लगा दी थी। अक्करमाशीपन ने उसे हीनता दे दी। अपने रगों में दौडने वाले खून के साथ बैर करने की बारी आ पड़ी। मन में उत्पन्न द्वेष भाव को कैसे निकाल दें। आत्म संघर्ष में उलझे शरण के सामने यह प्रश्न खड़ा हो गया था- मैं कौन हूँ ?

'अक्करमाशी' में पच्चीस वर्षों के जीवन की उथल-पुथल है। शरण के हिस्से में दुख बहुत आया, लेकिन इस दुख ने ही उसे मानवतावाद के विराट दर्शन करा दिए।

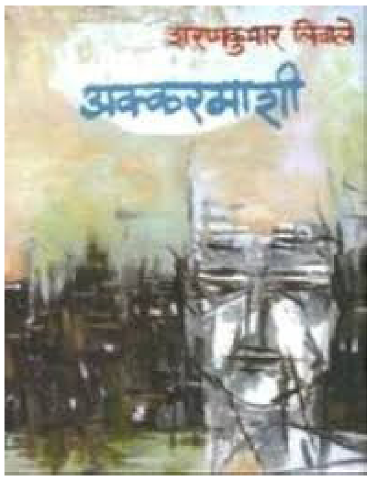

3.3.2.1 अक्करमाशी होने का एहसास

अक्करमाशी की विशिष्टताओं का अध्ययन करते समय उन संदर्भों की छानबीन करना अनिवार्य है जो दलित आत्मकथाओं में पहली बार आयी हैं। अक्करमाशी में तथा

कथित अवैध संतान की गहन पीड़ा का मार्मिक चित्रण किया गया है। अवैध का दंश अछूतों के बीच रचनाकार को अछूत करार देता था। इस आंतरिक अस्पृश्यता का दंश बेहद भयानक था। अक्करमाशी का अर्थ ही था कि तेरा जन्म अनैतिक संबंधों से हुआ है। सवर्ण हो या अवर्ण सभी के मज़ाक का वह विषय बन गया था। अछूत भी उन्हें अछूत सिद्ध करते। अपमान, तिरस्कार और वंचना से पीड़ित शरण को उस समय सुकून मिला जब रचनात्मक अन्विति के रूप में आत्मकथन लेखन का रास्ता उन्होंने अख्तियार किया। आत्मकथन शरण के लिए पिंजरे से उन्मुक्त होने का एहसास था।

"मैं कौन हूँ?" इस अहम प्रश्न का उत्तर आत्मकथा में अपने आप जिस सहजता से उभरता है या स्वयं लेखक द्वारा जितनी आसानी से दिया जाता है वह उतना सहज और आसान कतई नहीं है। मासूम से लगने वाले इस प्रश्न की व्यापकता का दायरा काफी विस्तृत है। यह आत्मकथा लेखक के साथ-साथ उसके अपने माँ-बाप, भाई-बहन, रिश्तेदार तथा उनसे जुड़े समस्त दलित समाज की व्यथा बयान करती है। दरअसल अक्करमाशी शब्द के उत्तर के पार्श्व में बदकिस्मती का एक भयानक और कलंकित अध्याय छिपा पड़ा है।

लेखक स्वीकारता है कि मैंने अस्पृश्य के नाते, अक्करमाशी के तौर पर तथा दरिद्र के रूप में जिस किसी तरह का जीवन जिया है- वही शब्दों में पेश किया है। आत्मकथा लेखक की अन्तर्वेदना या पीड़ा अन्य दलित लेखकों की तरह मात्र अस्पृश्यता और बहिष्कृतता की कोख से जन्मी नहीं है। बल्कि अक्करमाशी होने के अपराधभार तथा हीनता बोध की ज्वलंत वास्तविकता ने उस जानलेवा अन्तर्वेदना पर नमक छिड़कने का काम किया है। इस मोड़ पर आकर उनका लेखकीय लक्ष्य अधिक स्पष्ट हो जाता है।

"मेरी माँ महार तो बाप लिंगायत। माँ झुग्गी झोपड़ी में तो बाप बड़ी हवेली में। बाप ज़मीन्दार तो माँ भूमिहीन और मैं अक्करमाशी।"- लेखक की अकेली यात्रा या तलाश का आरंभिक बिन्दु यही है। इन्हीं विसंगत स्थितियों से वह जानता है कि माँ और तथाकथित बाप के अनैतिक संबंधों से यह दाग उभरा है। असल में यही वे प्रश्न हैं जो उसे अपराधभार, अकेलेपन एवं अन्तर्द्वन्द्व के कारण संतप्त किए रहते हैं। अनवरत तलाश के बावजूद शरण अपनी जड़ों की तलाश नहीं कर पाता। फिर भी उसकी जड़ों की तलाश ज़ारी है। आत्मकथा लेखक के मन में यह सवाल हमेशा पैदा होता है कि उसकी इस अवस्था के लिए मुख्यतः कौन ज़िम्मेदार है। जवाब उभर आता है- जन्मदायिनी माँ, उसकी अपनी जन्मदायिनी माँ। पर सच तो यह था कि उस जन्मदायिनी की मोह-ममता, लाड़-दुलार इनमें से कुछ भी तो उसके हिस्से में नहीं आया। तभी शरण यह कहने के लिए मज़बूर हो गया- "मुझ अभागे को माँ का प्यार दुलार कुछ भी नहीं मिल सका।"

3.3.3 अक्करमाशी-आत्मकथा के विविध पहलू

सामान्यतः किसी भी व्यक्ति के जीवन क्रम में बचपन सर्वाधिक संस्कारक्षम, प्रभावग्राही तथा निर्णायक समझा जाता है। किन्तु इसी महत्वपूर्ण दौर में लेखक अपनी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में झेल रहे थे -

- भूख
- तिरस्कार
- और अक्करमाशी होने का कलंक।

उसके चारों तरफ नकार का माहौल है, बेहद कटु तथा कचोटने वाले प्रसंग हैं।

3.3.3.1 पाठशाला में बहिष्करण की प्रक्रिया

'अक्करमाशी' की शुरुआत में लेखक जिस प्राथमिक पाठशाला का विद्यार्थी है उस पाठशाला द्वारा वन भोजन के लिए आयोजित पिकनिक के वर्णन से होती है। घोर दरिद्रता और अस्पृश्यता का सामना बचपन के दिनों में ही रोज़मर्रा के जीवन में था। साथ ही कदम-कदम पर अपमानित होने के प्रसंगों से जूझना भी शरण के लिए आम बात थी। दलितों व अस्पृश्यों के जीवन में अपमान या अवमानता की सही पहचान और समझ, उस कच्ची उमर में लेखक को करा दी थी। वनभोजन के सामूहिक आयोजन में तो सवर्ण लड़के-लडकियों के साथ अस्पृश्य जातियों के बच्चे भी शामिल थे।

स्कूली दिनों में ही शरण को जातिगत भेदभाव का एहसास होने लगता है। एक ही स्कूल में अनेक जातियों की इकाइयाँ थीं। बनियों तथा ब्राह्मणों के लड़के कबड्डी खेलने लगते हैं तो शरण अन्य अछूत बच्चों के साथ अलग-थलग ही बैठते थे। दलितों का खेल अलग, सवर्णों का खेल अलग। वैसे खेल की प्रक्रिया में बच्चे अक्सर

सभी भेदभाव भूल जाते हैं। ऊंच-नीच, बड़ा-छोटा, गोरा-काला, मोटा-पतला सब कुछ। लेकिन यहाँ तो खेल के मैदान में भी जातिगत भेदभाव स्पष्ट था। एक ही कक्षा के बच्चों के बीच खेल में भी यह अन्तर बालक शरण के मन में कचोट पैदा कर देती है। वे गरीबी और अस्पृश्यता से अपराजित होते ही रहे, लेकिन इस अपमान को उन्होंने वनभोजन की घटना से अत्यन्त ही गहराई से महसूस किया। शरण अपने स्कूली जीवन के उस पक्ष का मार्मिक वर्णन करते हैं।

वनभोजन के वक्त बैठने की जगह में भी भेदभाव स्पष्ट था। सवर्ण बच्चे भोजन के लिए बैठे थे एक घने छायादार वृक्ष की शीतल छाया में जबकि अस्पृश्य बच्चों को बैठना पड़ा था एक निहायत ही फटीचर से पेड़ तले। प्रकृति के उपहार को हासिल करने में भी भेद-भाव। शिक्षक भी सवर्ण बच्चों के साथ। यही वह घटना प्रसंग है जिसके कारण लेखक स्वयं को अन्य सवर्ण विद्यार्थियों के मुकाबले निहायत ही गया गुज़रा तथा दीन-हीन महसूस करता है। अर्थात् यह हीनता बोध उसके मन-मस्तिष्क पर हमेशा के लिए अमिट छाप छोड़ देता है। खास तौर पर इसलिए भी कि उस वनभोजन के वास्ते वह अपने साथ जो भोजन लाया था वह रूखा-सूखा, अपर्याप्त तथा निकृष्ठ किस्म का था और लगभग यही स्थिति अन्य अस्पृश्य बच्चों की थी। सवर्ण बच्चों के साथ शिक्षक बैठते थे। उनका खाना खाते भी थे। खाना खत्म होने पर पता चला सवर्णों की रोटियाँ और सब्जियाँ बच गई थी। अतः मास्टर जी ने सवर्ण लड़के-लड़कियों का बचा जूठन उदारता के साथ अस्पृश्य बच्चों के लिए दे दिया। यह जूठन तो मानो क्षुधापूर्ती की बेशकीमती सौगातों से भी बढ़कर था। शरण का मित्र मारुति जब उस जूठन को लेकर आगे बढ़ने लगा तो सारे दलित बच्चे चीलों की तरह उसके पीछे-पीछे चलने लगे। कई दिनों बाद उन्हें ऐसी चीज़ें मिली थी। उनके पेट की स्थिति भिखारी की झोली की तरह थी। अतः सभी बच्चों ने वह जूठन न जाने कैसे-कैसे चटखारे ले-लेकर भुखड़ों की तरह खा लिया था। शरण के बाल मन में उस वन भोजन के बाद काफी हीनताबोध और समाज के इस रवैये के प्रति आक्रोश उठने लगा था। लेकिन उसे सबसे अधिक अचरज तब हुआ जब घर आकर उसने ये सारी बातें अपनी माँ को बताई तो माँ का कहना कुछ यूँ था- "घर के लोगों के लिए उसमें से थोड़ा ले आता तो क्या बिगड़ता? बचा हुआ अन्न अमृत होता है।" माँ की बातें सुन शरण का मन और विचलित हो जाता है। उसकी अनपढ माँ को जूठन खाने में कोई अपमानबोध ही नहीं हो रहा यह जानकर उसे और दुख होता है। उसके मन में वे सारे दृश्य गहरे रूप से अशान्ति फैलाने लगती हैं- परोसने वाली वे लड़कियाँ, वह छितराया हुआ पेड़, कागज़ में बाँधकर दी गई वह जूठन, माँ की प्रतिक्रिया सब कुछ। इस तरह की मार्मिक-हृदयस्पर्शी घटना-प्रसंग से हुई आत्मकथा की शुरुआत हमें बाँधे रखती है। आगे चलकर इस तरह के प्रसंगों की एक प्रदीर्घ-सी श्रृंखला लेखक के जीवन से जुड़ी हुई मिलती है।

अछूत होने से शरणकुमार को कई तरह से अपमानित होना पड़ता है। पाठशाला में और बाहर भी साधारण हमदर्दी का भी वह हकदार नहीं था। अछूत बालकों को पानी की तरह शिक्षा भी ऊपर से ही परोसी जाती थी। सवर्ण शिक्षक को डर था कहीं सरस्वती अपवित्र न हो जाए। स्कूल में महारों और चमारों के बच्चों को दूसरे सवर्ण बच्चों के साथ बैठने की इज़ाज़त नहीं थी। उसके बारे में लेखक लिखते हैं-

'स्कूल कभी विठोबा अथवा कभी महादेव के मन्दिर में लगा करता था। मंदिर के भीतर ब्राह्मणों तथा वैश्यों के लड़के बैठते थे। पहली कतार में एक ओर लड़के, दूसरी ओर लड़कियाँ। उनके पीछे चमारों के लड़के और सबसे पीछे महार लोगों के, दरवाज़े के निकट।'

बालक शरण को स्कूल में मास्टरों द्वारा कहे गए ऐसे-ऐसे काम करना पड़ता था जो अन्य सवर्ण बच्चों को नहीं करना पड़ता था। वे लिखते हैं- 'हम महार जात के थे, इसलिए प्रति शनिवार पूरे स्कूल की ज़मीन को गोबर से लेपने का काम हमें दिया जाता था। गोबर इकट्ठा करके पूरा स्कूल लेपने के बाद शिक्षक मेरी सराहना करते।'

ज्ञानार्जन की प्रक्रिया की स्वाभाविक फलश्रुति है-अस्मिताबोध का निर्माण। मनुवादी सामाजिक व्यवस्था ने दलितों को ज्ञानार्जन की प्रक्रिया से दूर करने के लिए अनेक चाल चले। ये परिस्थितियाँ शरण में विद्रोह और संकल्प के बीज बोती चली जाती हैं। दरअसल ऐसे संकल्प ही समाज में बदलाव और सामूहिक विवेक निर्माण की भूमिका निभाती है।

3.3.3.2 भूख सबसे बड़ा सच

अस्पृश्यों तथा दलितों की सार्वभौमिक-बेबसी और

उनका चिरकाल से पीछा करती हुई चिरन्तन भूख। यहाँ न सिर्फ आत्मकथा -नायक बल्कि पूरे अस्पृश्य तथा दलित समाज की, विशेषतः कच्ची उमर के बच्चों की भूख हमेशा से ही किसी डायन की तरह पीछा करती रही है। हँसने-खेलने और खाने-पीने की आयु में हर अस्पृश्य बच्चे को भूख से उत्पन्न दर्द की आग में लंबे समय तक झुलसना पड़ा है। भूख का चिरंतन तथा तीव्र एहसास जो इंसान को बेबस, लाचार और बदत्तर बनाकर छोड़ देता है, इस कड़वे सच की तीखी अनुभूति लेखक को अपनी कच्ची उमर में ही हो गई थी।

अक्करमाशी के नायक शरण को बार-बार इस बात का अहसास होता कि दलित जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी भूख है। भूख से पीड़ित बालक शरण को लगता कि ईश्वर ने पेट देकर गलती की है। बिन खाए सोना जैसे परिवार की नियति हो गई थी। एक ओर जहाँ सवर्ण तृप्ति के शिखर पर वहीं दलित जीवन पर सदैव मंडराती भूख की अंतहीन कालिमा। वे लिखते हैं- "बड़े बुरे दिन थे। खाने के लिए मिलता ही नहीं था। सारे भूखे रहते। कभी कुछ मिलता, कभी कुछ भी नहीं। मुझे भूख लगती, मैं रोटी के लिए रोता। भूख सहन नहीं होती थी।"

शरण की नानी संतामाय भूख से लड़ने के लिए अजीब सी तरकीब निकालती- 'फसल के दिनों में जब जानवर ज्यादा खा लेते तब गोबर में बिना पचे अनाज के दाने भी निकलते। दानों से भरे हुए ऐसे गोबर को संतामाय अलग से रखती। नदी के पानी में उस गोबर को धोती और दाने अलग करती। उसे सुखाती और बाद में चक्की में पीसकर रोटी बनाती और खाती। उसमें से गोबर की दुर्गंध आती।'

भूख ने दलित समाज को जानवरों से भी बदत्तर बना दिया था। भूख दलित समाज को परेशान करने वाली एक चिरन्तन सत्य है। जिसके बारे में वे लिखते हैं- 'अन्न का अभाव तो मैं बचपन से ही महसूस करता रहा हूँ। सभी बहनें भूखी सो जातीं। उन्हें खाने के लिए कोई जगाता भी नहीं था। क्योंकि रोटियाँ ही नहीं होती थी। ये भूखी ही सो जाती। हम लोग ही खा लेते। माँ केवल पानी ही पी लेती। दादा बीड़ी पीकर भूख को जगाते।'

शरण ने एक बार अपनी बहन वनी को दूसरों द्वारा फेंके गए केले के छिलके खाते देखा जिसका ज़िक्र वे यों करते हैं- शाम के समय बाज़ार खत्म हो जाता। लोगों द्वारा फेंके गए केले के छिलके वनी इकट्ठे करती। ऐसे ही किसी बाज़ार के दिन रास्ते पर बैठकर छिलके को खाते हुए मैंने उसे देखा। वहीं पर मैंने उसे पीटा। छिलके खा मत- कहकर मैंने छिलके छीन लिए और दूर फेंक दिए। पर थोड़ी देर बाद मेरा विचार बदल गया। मैंने केले के छिलके इकट्ठे किए। मिट्टी से सने उन छिलकों को कमीज़ से पोंछता रहा। बाद में नदी के किनारे जाकर खाने लगा।

अमीरों की अंत्ययात्राएँ जब निकलती तो उनमें पैसे और ज्वार बिखेरे जाते। बालक शरण के मन में उस शवयात्रा से पैसे इकट्ठे करने की लालच जगती। ऐसे ही एक शवयात्रा का उल्लेख वे करते हैं - 'विश्राम के लिए शव को जहाँ रखा गया था वहाँ आँचल भर ज्वार के दानों का ढेर पड़ा हुआ था। श्मशान भूमि के भीतर ले जाने के पूर्व शव को श्मशान भूमि से थोड़ी दूर पर कंधा देने वाले विश्राम के लिए नीचे रखते हैं और खुद भी विश्राम करते हैं। शव को विश्राम के लिए जहाँ रखा जाता है वहाँ आँचल भर ज्वार और कुछ पैसे रखकर लोग शव के पैर छूते हैं, अंतिम दर्शन करते हैं। मुझे विश्राम की वह ज्वार निमंत्रण दे रही थी। अंततः मैं वहीं रुक गया। मैं कमीज़ में ज्वार के उस ढेर को समेटने लगा और फिर तेज़ी से घर की ओर भागा। खुश हुआ कि संतामाय मुझे आज कितनी आत्मीयता से चूमेंगी, प्यार करेंगी।'

शरण ने अपनी नानी को गोबर से ज्वार निकालकर रोटी बनाते देखा है अतः उसने सोचा शव का ज्वार देखकर नानी काफी खुश होगी। लेकिन शव के ऊपर चढ़ाया गया ज्वार ले आने पर संतामाय उल्टा गुस्सा करने लगी। शरण को देखते ही वह उछल पड़ी और फटी चप्पल उस पर फेंकने लगी। वह कहने लगी- 'अरे, वह शव पर की ज्वार है। जा, उसे नदी में फेंक आ।' शरण को लगा अछूतों की बस्ती विश्राम के ज्वार की तरह है। यहाँ का एक-एक व्यक्ति दाने की तरह।

जिस महीने में जानवर अधिक मरते थे महारों के लिए वह खुशी का महीना था। जिस महीने में जानवर मरते ही नहीं वह महीना अकाल की तरह लगता। ऐसे समय कोई अछूत परेशान होकर किसी जानवर को गलत-सलत चीजें खिलाकर मार देता। रात में ही उसे काटा जाता। सबेरे सबके चूल्हों पर मांस पकता। किसी को पता भी नहीं

चलता कि जानवर कहाँ गायब हो गया।

पेट की आग बुझाने के लिए शरण और उसके मित्र क्या-क्या नहीं करते। उनके ही शब्दों में- "पेट की आग बुझाने के लिए हम लोग नदी नालों के किनारे घूमते। केंकड़े और मछलियों को पकडते। मधुमखियों के छत्ते निकालते। बगुलों को पकडते। खरगोशों का शिकार करते। गोह निकालते। गिलोल से चीलों को गिराते। गिलहरियाँ भून कर खाते।"

भूख के बारे में लेखक लिखते हैं- "भूख न होती तो क्यों होती लड़ाइयाँ, चोरियाँ, मार पीट पेट न होता तो क्या होते पाप-पुण्य क्यों होते देश, सीमा, नागरिक, संसद, संविधान आदि-आदि।"

3.3.3.3 पिता का नाम मिलना

लेखक को यह बात बेहद खटकती है कि इस देश में मनुष्य जाति -बिरादरी और धर्म से पहचाना जाता है। उनके पास बाप का नाम नहीं, धर्म और जाति नहीं, न ही वे किसी बाप का उत्तराधिकारी। जब वे अपनी माँ से पूछते हैं कि अपने पिता के नाम पर किसका नाम दूँ तो- 'मसामाय कुन्ती की तरह खामोश हो जाती। ऐसे समय मुझे कर्ण नज़दीक का लगता। भाई लगता। कई बार मैं ही कर्ण हो जाता नदी के प्रवाह में बहने लग जाता। दूर, काफी दूर। गहरे, बहुत गहरे, अपने ही भीतर।'

एक बार मेरे प्रश्नों से तंग आकर मसामाय ने कहा- कहदे गुरूजी से, मेरी माँ पटेल की रखैल है। यह सुनकर शरण को काफी खुशी होती। वह सोचता- कल मैं गुरूजी से कहूँगा ही। मुझे रखैल शब्द का अर्थ ही मालूम नहीं था। मुझे वह शब्द पिता की तरह लगता। पर मुझे क्या मालूम था कि इस शब्द के पीछे जहर छिपाया गया है। व्यभिचारी योनि छिपी है।

किसी भी बच्चे के लिए पिता का नाम उसका जन्म सिद्ध अधिकार होता है। लेकिन शरण अपने पिता का नाम तक नहीं जानता था। जब स्कूल में मास्टर ने हाज़िरी रजिस्टर में दर्ज़ करने के लिए पिता का नाम पूछा तो उन्हें लगा- मेरे पिता भी हो सकते हैं- यह कल्पना बड़ी विचित्र लगी। भोंसले गुरुजी ने स्कूल में शरण के नाम के आगे हणमंता लिंबाले लिख दिया और वे उसे बासलगाँव का पटेल कहकर संबोधन करते। जैसे ही हणमंता को इसकी खबर लगी वह तुरंत चार-पाँच लोगों को लेकर भोंसले गुरुजी को धमकाने आ गए। सौ के नोट का लालच भी दिखाया और यहाँ तक की बन्दूक का डर भी दिखाया। पर भोंसले गुरुजी स्कूल के हेडमास्टर भी थे और एकदम निर्भीक व्यक्ति भी थे। उन्होंने दृढ़ शब्दों में कहा- "इस लड़के का बाप कौन है, यह इसकी माँ बतलाएगी और उसके द्वारा बतलाया गया नाम ही मैं हाज़िरी रज़िस्टर में लिखूँगा।"

इस तरह एक निर्भीक अध्यापक के कारण शरण की दस्तावेज़ी ज़िन्दगी में पिता का नाम मिला।

3.3.3.4 अज्ञान एवं अंधविश्वास

दलित समाज में अज्ञानता और अंधविश्वास के कारण कई रीति-रिवाज़ एवं चलन मौजूद है। जैसे गोमूत्र से मुँह धोना। शरण लिखते हैं- "मुझे याद है कि एक बार संतामाय ने मेरा चेहरा गोमूत्र से धोया था। अच्छा नहीं लगा था। पर करता क्या उन्होंने जबरदस्ती ही मेरा चेहरा धोया था। लगा कि मुँह में दरारें पड़ रही हैं। वह कहतीं, गोमूत्र पी, बीमारियाँ भाग जाती हैं।"

शरण की नानी संतामाय भूत बाधा पर विश्वास करती थी। जब घर में शरण की माँ की जचगी होती है तो संतामाय बच्चों पर काफी गुस्सा करती। कहतीं-शिशु को किसी का स्पर्श नहीं होना चाहिए। किसी के भी स्पर्श से उसे भूत बाधा हो सकती है। प्रतिवर्ष गाँव में कॉलरा की बीमारी फैलती। काफी लोग मरते। दलित समाज में अशिक्षित जनता यही मानती कि कॉलरा उस पर होती है जिस पर मरीआई की अवकृपा होती। उनका अंधविश्वास होता कि कायरं करके मरीआई को शांत करना पड़ेगा। मरीआई की शांति के लिए भैंसा काटा जाता। पोतराज नाचता। शाम को मरीआई का रथ खींचा जाता। मरीआई को गाँव के बाहर ले जाकर छोड़ते। इस प्रकार कॉलरा के प्रकोप से बचने के लिए करते, पर टीका नही लगवाते। इसपर लेखक लिखते हैं- "गाँव में कॉलरा शुरू हुआ कि डॉक्टर टीका लगवाने आते। पहले स्कूल के बच्चों को टीका लगाते। मैं घबराता, रोता, बोम्ब मारता। भाग जाता। घर में भी वही स्थिति। संतामाय मुझे तथा सभी बहनों को लिए जंगल में निकल जाती माँ दरवाज़ा बन्द करके बैठती। बीमारी जब बहुत बढ़ जाती तो संतामाय चूल्हे की राख लेती, दीवार से मिट्टी निकालती तथा हमारे

माथे पर लगाती। "माँ अम्बे, मेरे बच्चों को ठीक कर, कहती। बीमारी न हटती तो कहती, भूतबाधा हुई है।"

नये वर्ष पर महारों के काम का बँटवारा होता। स्थानीय भाषा में इसे पाड़ेवार कहते हैं। पाड़ेवार का अर्थ होता है- अछूतों के काम। उस दिन महारों की बस्ती के पुरुष बस्ती की चौपाल पर इकट्ठे होते। सभी के विचार विमर्श के बाद यह सम्मान चार परिवारों की ओर जाता। सभी परिवारों में यह काम क्रमशः बाँट दिया जाता। इन परिवारों को काम के एवज में अनाज दिया जाता। चार परिवारों को कई काम करने पड़ते। महारों की बस्ती की बैठक को लेपना, वहाँ दीया बत्ती करना। सवर्णों के यहाँ कोई जानवर मर गया हो तो उसे खींचकर लाना, काटना, चमड़ा उतारना और उसे बेचना। गाँव में जानवर मरते ही उसका मालिक बस्ती में आता। जो हकदार होते उन्हें सन्देशा देता। हिन्दू लोग गाय को माँ के रूप में पूजते हैं। उसकी मृत्यु के बाद उसका क्रिया-कर्म करते हैं, परन्तु इसी गाय की मृत्यु के बाद महारों को बुलाते हैं।

अशिक्षित दलित समाज सवर्णों के लिए इस प्रकार के निचले तबके के काम करते रहते हैं वो भी बहुत कम मज़दूरी लेकर। इस प्रकार लाए गए मृत जानवरों को दलित तेज़ी से साफ करते और चानियाँ सुखाने के लिए रखे जाते। चानी यानी - मृत जानवर का माँस अधिक हो जाता तो उसकी छोटी-छोटी बोटियाँ बनाकर उन्हें साफ करके सुखा देते हैं तथा अभावग्रस्त दिनों में उसे खाते हैं। और इस प्रकार सवर्णों के मृत जानवरों को खाने के बाद जब दलित बच्चे स्कूल जाते हैं तो उन्हें इस बात को लेकर चिढ़ाया जाता है। शरण लिखते हैं- 'मैं जब स्कूल गया तब गाँव के बच्चे उंबया, मारुति को परेशान कर रहे थे। धेड़-धेड़ कहकर चिल्ला रहे थे। मेरे जाने के बाद कहने लगे, लो, एक और धेड़ आ गया। इसने हमारा बछड़ा खाया। लड़कियाँ गौर से सुन और देख रहीं थीं। मैं भाग निकला। पेट में स्थित बछड़ा सता रहा था।'

शरण की नानी संतामाय गाँव की सड़कें साफ करती। साप्ताहिक बाज़ार की ज़मीन पर झाड़ू लगाती। लेकिन बदले में कोई निश्चित तंख्वाह नहीं पाती। वहाँ दूकानदारों के सामने भिखारियों की तरह हाथ पसारती। वे लोग जो देते वही उसका वेतन था। कुछ दस-दस पैसे देते, कुछ थोड़ी सी मिठाई। कुछ ऐसे भी थे जो कुछ भी नहीं देते। संतामाय उनसे झगड़ती। ऐसे था उनका जीवन। संतामाय के साथ पूरी ज़िन्दगी बिताने वाले मुसलमान दादा भी शरण के जीवन में एहम स्थान रखते हैं। वे मुसलमान थे लेकिन शरण और संतामाय की देखभाल भली भाँति करते। अशिक्षित होने के कारण दिन रात मेहनत तो करते लेकिन उस हिसाब से वेतन माँगना नहीं जानते। दादा के बारे में लेखक यों ज़िक्र करते हैं- "दादा बस अड्डे पर तो हमाली करते ही थे, अलावा इसके अगर कहीं बाहर गाँव में हमाली का काम मिलता तो चले जाते। भूखे पेट, सिर पर बोझ लिए मीलों चलते जाते। हमाली के पैसे लाकर संतामाय को देते, तब संतामाय अनाज ले आतीं।"

महारों की बस्ती में चार-पाँच घरों में दारू की भट्टियाँ थी। शरण के घर में भी थी। उनके घर हमेशा ग्राहक आते रहते। शराबी कुछ न कुछ गुनगुनाते हुए आते। पीकर वहीं कै करते। उस कै की दुर्गंध फैलती। दारु का कप या बोतलें लेते समय मसामाय के हाथों का स्पर्श करते। शरण अपनी माँ को ऐसी हालातों में देखकर भी कुछ नहीं कर पाता। ऊपर से पुलिस वालों का हमेशा डर रहता।

अन्य भारतीय समाज में व्याप्त अंधविश्वासों की तरह दलित समाज में भी कई तरह के अंधविश्वास व्याप्त हैं। जैसे- पैदा हुए बच्चे का सफेद पैर होना। हुआ यूँ कि शरण के जन्म के कुछ ही दिनों बाद उसे झूले में डालने की रस्म होने वाली थी। संतामाय का इकलौता भाई लक्ष्मण जो कि लकडियाँ चीरकर जीवनयापन करता था वह बच्चे को देखने आया हुआ था। लेकिन बच्चे का मुख देखने से पहले उसे लगा बच्चे को नहलाने के लिए लकड़ियों की ज़रूरत तो पड़ेगी ही। वैसे भी लकड़ियाँ बेचकर ही वह जीता था। अतः वह घर के पीछे स्थित एक काफी पुराने पेड़ पर कुल्हाडी चलाने लगा। और जब पेट टूटने की स्थिति में था तभी वह भागने की ताक में लगा था लेकिन दुर्भाग्यवश वो ऐसा नहीं कर सका। लेखक के ही शब्दों में– "जब पेड़ टूटने की स्थिति में आया था, तभी लक्ष्मण भागने की तैयारी में था। परन्तु क्षण दो क्षण का फर्क हुआ। उसका सिर पेड़ के तने के नीचे आकर चकनाचूर हो गया। सातूबाप का वंश खत्म हो गया। मुझे झूलने में डालने के बजाय लक्ष्मण का शव बैलगाड़ी में डालकर पोस्टमार्टम के लिए दवाखाने में ले जाना पड़ा। मैं सफेद पैर का साबित हुआ। इस प्रकार शिशु की कोई गलती न होने पर भी उसपर सफेद पैर होने का आरोप

लगाया गया।"

कभी-कभी संतामाय के शरीर में देवी का प्रकोप होता। वह रात को देवी के आ जाने से चिल्लाती। उनका चिल्लाना शरण के लिए विद्रूप लगता। वह भयभीत हो जाता। संतामाय के निकट सोने में उसे डर लगता। वह बाहर भाग निकलता।

3.3.3.5 दलित समाज की आंतरिक अस्पृश्यता

दलित विमर्श के सामने एक सवाल आंतरिक जातिवाद का भी है। शरणकुमार लिंबाले के अनुसार दलितों को आंतरिक जातिवाद से भी लड़ना होगा, इसके बिना जाति व्यवस्था खत्म नहीं होगी। दलितों के बीच पाई जाने वाली आंतरिक अस्पृश्यता के बारे में वे लिखते हैं- "महार जाति का शरण और मातंग जाति का भीमू मित्र थे। दोनों ही दलित समाज के। लेकिन मातंग जाति को महार उनसे नीच समझते। गरमी के दिनों में जब शरण और भीमू खेल रहे थे तो यह देख संतामाय चिल्ला उठी- 'अरे मातंग को साथ लिए क्यों घूम रहा है। उसके साथ क्यों खेल रहा है। गाँव जल गया क्या कि इसके साथ खेलने लगा उसे लोटा मत दे। अपवित्र हो जायेगा। और वह भीमू को डाँट ते हुए कहने लगीं, चल यहाँ से निकल।"

शरण के बाल मन में इसका बहुत गहरा असर पड़ा। वह सोचने लगा- "बिरादरी दोस्ती से भी बड़ी होती है क्या? प्यास से भी बिरादरी बड़ी होती है क्या? भीमू आदमी नहीं है क्या? फिर उसके स्पर्श से पानी अपवित्र कैसे हो जाऐगा?"

महार और मातंग दोनों ही दलित जाति के होने पर भी वे स्वयं अपने बीच ही ऊँच-नीच की भावना रखते थे। महार के पानी को मांग छूता नहीं। मांग के घर का पानी पीने से महार अपवित्र हो जाता है। यह काफी हास्यास्पद लगता है। नदी पर भी महारों का अलग घाट था और मातंगों का अलग। लेखक को लगता कि यहाँ तो पानी ही पानी का बैरी बन चुका है।

3.3.3.6 प्रेम

शरण की बस्ती में रहने वाली शेवंता उस समय दस बारह साल की थी। जिस दिन शरण का परिचय शेवंता की आँखों से हुआ उस दिन से उसके मन में एक अजीब तरह की कसमसाहट होने लगी। शेवंता भी शरण की तरह ही बेहद गरीब परिवार से थी। उसकी माँ को जहाँ काम मिलता वहीं चली जाती। पिता गढ्ढे खोदता और शेवंता घर पर तीन भाईयों को लिए बैठी रहती। माँ बच्चों को जन्म देती और शेवंता बच्चों को संभालने का काम करती। घर में भोजन की हमेशा कमी रहती। शेवंता के बारे में लेखक लिखते हैं- "शेवंता कभी खुलकर हँसती नहीं थी। बालों को न कभी तेल मिला न पानी। माँ-बाप की ज़िन्दगी में शेवंता कोल्हू का बैल बन चुकी थी। उसकी आँखों में गाय की आँखों जैसी निरीहता झलकती थी। ....मैं शेवंता की ओर देखता जैसे किसी दुर्घटना को देख रहा हो।"

वह जब घर में होती तो शरण सीटी बजाता। गाना गाता। उसकी आवाज़ सुनकर शेवंता जान बूझकर बाहर आती और बरतन माँजने बैठती। जब शरण नदी की ओर जाता तो शेवंता भी नदी की ओर निकलती। शेवंता अपनी झोपड़ी से शरण के चेहरे पर आईना मारती। वे दोनों एक दूसरे से उलझ रहे थे। शेवंता और शरण की प्रेम कहानी गाँव में फैल गई। कोढ़ की तरह उनका प्रेम बढ़ रहा था लेकिन दोनों की शादी संभव नहीं थी। शरण अक्करमाशी जो ठहरा। अतः शरण की नानी संतामाय कुछ यूँ उपदेश देती है- "महार बहुत भयंकर होते हैं। तेरी बोटियाँ काट डालेंगे। उन्हें पूछने वाला भी कौन है और अपने घर में तो न कोई पुरुष और न कोई जिम्मेदार आदमी। हम औरतों के साथ तो वे बुरी तरह पेश आएँगे। सार्वजनिक बलात्कार करेंगे। तू सोच। शेवंता को भूल जा। अगर गाँव की कोई सवर्ण स्त्री के साथ तू शादी करेगा तो दलित बस्ती तेरे पीछे ताकत बनकर खड़ी हो जाएगी।" इस प्रकार एक अक्करमाशी होने के कारण शरण को अपना पहला प्यार का गला घोंटना पड़ा।

3.3.3.7 स्त्री जीवन

शरणकुमार लिंबाले के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी उसका अक्करमाशी होना था और इसका प्रमुख कारण उसकी माँ की ज़िन्दगी से जुड़ा हुआ है। उसकी माँ -मसामाय, संतामाय की इकलौती बेटी थी और उसकी शादी विठ्ठल कांबले नामक एक गरीब व्यक्ति से कर दी गई थी। उसके यहाँ खाने के लिए लाले पड़ते। हमेशा भूखा रहना पड़ता। विठ्ठल कांबले एक खेत के मालिक हणमंता लिंबाले के यहाँ साल भर की शर्त पर मज़दूर था। रात-दिन मालिक के घर या खेत पर काम करता। खेत के

अनेक जानवरों में एक और जानवर। कोल्हू के बैल की तरह वह मालिक के खेत में काम करता था। बुरे समय में मालिक हणमंता उसकी सहायता करता। लेकिन इस सहायता के बदले में उसकी नज़र मसामाय पर थी। ऐसा अक्सर होता था। हणमंता और मसामां के अनैतिक संबंधों का पता पूरे गाँव को चल गया और इस प्रकार विठ्ठल कांबले ने मसामाय से तलाक ले लिया। विठ्ठल कांबले ने दूसरी शादी कर ली। पुरुषों के लिए सब मुमकिन जो था लेकिन मसामाय ने अकेले ही जीने का निर्णय लिया। हणमंता लिंबाले इसी टोह में था। उसने मसामाय से संपर्क किया और उसे अक्कलकोट में किराए के एक कमरे में रख दिया। मसामाय ने मजबूरन हणमंता का हाथ पकड लिया। लेखक के ही शब्दों में- "जिस व्यक्ति को लेकर उसे बदनाम किया गया था, जिन्दगी से उठा दिया गया था, उसी के साथ रहना उसने तय किया। हणमंता ने मसामाय के दाम्पत्य जीवन को तोड़ दिया और उसे अपने नियंत्रण में रख लिया जैसे कोई शौक से कबूतर पालता हो। दोनों मज़े में रहने लगे। मसायी गर्भवती हुई। लड़का हुआ। लड़के का बाप कौन? हणमंता को मसायी चाहिए थी। उसका शरीर चाहिए था। पर संतति? दलित समाज में सुन्दर दिखने वाली कई औरतों की यही अवस्था थी। गाँव के पटेल पैसों के बल पर उनका शोषण करते, उनकी भरी-पूरी ज़िन्दगी उखाड़ देते और बाद में संतानोत्पत्ति होती तो पिता के हक से वंचित रखते। उनको डर लगा रहता कि कहीं ऐसे उत्पन्न हुए बच्चे उनसे उनका हक न माँग लें।"

लेखक दलित स्त्रीयों की इस अवस्था के बारे में यों लिखते हैं- "जिनके पास वर्ण श्रेष्ठत्व से प्राप्त सत्ता तथा वंश परंपरा से प्राप्त संपत्ति रही है उन्होंने यहाँ कि दलित स्त्रीयों को सतत भोगा है। देहात-देहात के ज़मीनदारों, पटेलों ने खेतों में काम करने वाली दलित स्त्रीयों के साथ ऐसा ही व्यवहार किया है। रण्डियों की तरह उन्होंने इनका उपभोग किया है। दलितों की लड़कियाँ इनकी वासना का शिकार होती है। इनके द्वारा किए गए स्वैराचार से संतति जन्म लेती रहती हैं। ज़मीन्दार के इशारों पर जीने वाला घर हर गाँव में होता है। पूरा गाँव इस घर को पटेल की रण्डी का घर कहता रहता है। इस स्त्री की संतति की पहचान पटेल की रंडी के बच्चों के रूप में ही बनती है। पटेल की दया पर, खुश होकर ही जीने में उनके जीवन की सार्थकता होती है। यों बदले में उन्हें मिलता ही क्या है?"

शरण की माँ मसामां से हणमंता ने कुछ साल बाद रिश्ता तोड़ दिया था। अब मसामां किसी पटेल के यहाँ रहने लगी। एक मालिक से दूसरे मालिक के पास रेहन में पड़े रहना। दूसरे से तीसरे की ओर, उपभोग्य वस्तु की तरह। शरण की नानी संतामाय की ज़िन्दगी में मुसलमान दादा ने सालों पहले प्रवेश किया था। दस्तगीर ज़मादार की पत्नी का लड़का है दादा। बुहरानपुर की किसी स्त्री से उसका विवाह हुआ था पर संतति नहीं हुई। वह भाग गई। परिणामतः दादा ने पूरी ज़िन्दगी संतामाय के साथ गुज़ार दी। जाति बिरादरी के परे जाकर दादा ने शरण को प्यार किया। दादा अपनी बढती उम्र में भी हमाली करके शरण और संतामाय का खयाल करते। संतामाय के पति ने उसे इसलिए त्यागा कि उसकी संतति नहीं हो रही थी। इस प्रकार संतामाय की ज़िन्दगी में दादा आए। इतना सब होकर भी संतामाय को वर्षों बाद उनके पति के गुज़र जाने की खबर मिली तो वे काफी रोने लगी।

दलित समाज की लड़कियों की स्थिति काफी दयनीय थी। गरीबी और भूख के कारण अन्य समाज की लड़कियों की तरह उनके संस्कार परिष्कृत नहीं हैं। वे दिन-भर बाहर घूमती रहतीं, चोरी करतीं, गाली खातीं और कई बार मार भी खातीं। लेखक लिखते हैं- "बुधवार को वनी, नागी, निरमी बाज़ार में टहलतीं। दिन-भर बाहर ही रहतीं। बाज़ार में जो मिलता, खा लेतीं। नागी व निरमी तो बाज़ार में चोरी भी करती। खाने की चीज़ें चुराकर घर ले आतीं।"

शरण की नानी संतामाय जचगी करती। गाँव की किसी स्त्री का पेट दर्द होने लगता तो उन्हें बुलाया जाता। वह गर्भवती स्त्रीयों के पेट में तेल लगाकर मालिश करती। भीतर बच्चा सीधा नहीं होता तो उसे मालिश से सीधा करती। भीतर हाथ डालकर बच्चे का सिर पकड़ती। बच्चे को खींचकर बाहर निकालती। प्रसूति के बाद संतामाय का आंचल अनाज से भरा जाता। चूड़ियाँ तथा ब्लाउज़ के लिए पैसे दिए जाते।

3.3.3.8 अस्पृश्यता

गाँव का नाई भी अपने को महार से श्रेष्ठ समझता और शरण की बाल काटने से इन्कार कर देता। बुधवार के बाज़ार में जब शरण बाल कटवाने नाई के पास जाता

है तो वो कहता है- "तू यहाँ क्यों खड़ा है? मैं तेरे बाल नहीं काटूँगा।" शरण उस समय काफी अपमानित हुआ। उसने सोचा- गाँव के भैंसों के भी बाल साफ करने वाले उस नाई के लिए पता नहीं मैं क्यों अपवित्र था। बाद में शरण चार-पाँच मील चलकर दूसरे गाँव में जाकर वहाँ की नाई से बाल कटवाने लगा। दूसरे गाँव का नाई उसकी जात जानता ही नहीं था।

गाँव में होटलों में अछूतों के लिए बाहर अलग से कप सॉसर रखे हुए होते। उन अलग से रखे कप-सॉसरों को देखकर शरण को चिढ होती। अस्पृश्यता से उन्हें चिढ होती। कॉलेज में पढाई करते वक्त उनमें स्वाभिमान जग गया था और जातीयता से उनका मन खिन्न होने लगता। उन होटलों में बाहर रखे गए कप सॉसर उन्हें उनकी जाति का अपमान लगता। पानी भी होटलों में ऊपर से दिया जाता। चाय पीने के बाद दलित पैसे हाथ में नहीं दे सकता था। ज़मीन पर पैसे रख देता अथवा ऊपर से देता।

जिस कुएँ को खोदने में दलितों ने जी तोड़ परिश्रम किया उसी का पानी उनके लिए निषिद्ध था। वे लिखते हैं- 'नारायण पाटील का कुँआ। पिछले वर्ष दलितों ने इसे बनाया है। घोंडुण्णा, दत्तू, देवप्पा, सिद्धया, त्रिमूक, विष्णु, मसा, मनु, मल्या, शिवलिंग, नामदेव आदि ने इस कुँए का काम ठेके पर लिया था। यहाँ दलितों ने पसीना बहाया था। यहीं पर उन्होंने बारूद बिछायी थी। इस धरती को फोड़कर उन्होंने पानी निकाला। पर आज यह कुँआ दलितों के लिए खुला नहीं है। उसका पानी वे नहीं पी सकते।..............भयभीत होकर या चोरी से ही हमें हमारी प्यास बुझानी पड़ती थी। इस पानी पर भी बिरादरी का हक था।.........ऐसा क्या है हमारे स्पर्श में हमारे स्पर्श से पानी अपवित्र हो जाता है, पनघट अपवित्र हो जाता है, अन्न अपवित्र हो जाता है, कपड़े अपवित्र हो जाते हैं, पनघट अपवित्र हो जाता है, श्मशान भूमि अपवित्र हो जाती है, होटल-ढाबा अपवित्र हो जाते है। ईश्वर, धर्म और मनुष्य भी अपवित्र हो जाता है।'

शरण का मन यह सब देख सुन काफी विचलित होता। खासकर उसकी नानी संतामाय इक प्रकार की अनेक कहानियाँ सुनाती- 'संतामाय मुझे अन्याय की कहानियाँ सुनातीं। उनकी आँखों से टपकने वाले आँसू मुझे महाकाव्य की तरह लगते। उनकी एक-एक कहानी मुझे महायुद्ध की चिंगारी का एहसास दिलाती। जिस भूतकाल को हम जी चुके हैं, वह कितना भयावह है इसका एहसास मुझे होने लगा। मेरी व्यथा मुझ तक सीमित नहीं है। वह व्यथा आज की नहीं है। इस अन्याय की जड़ें हज़ारों वर्षों के इतिहास में फँसी हुई है।'

शरण का स्थानांतरण लातूर में जब हुआ तब रहने के लिए मकान मिलना अपने आप में जोखिम भरा काम हो गया। जाति-बिरादरी शत्रु की तरह बाधा बन रही थी। उनसे स्पष्ट कहा जाता- मुसलमान और महारों को हम घर किराए पर देना नहीं चाहते। यह सुन शरण का मन करता कि सारे शहर को आग लगा दें। और अन्त में उन्हें भीमनगर में शरण लेना पड़ा। लातूर के भीमनगर का मतलब है श्मशान भूमि। पूरे शहर की लाशें जहाँ जलाई जाती थीं।

3.3.3.9 शिक्षा एवं नौकरी

मनुवादी समाज व्यवस्था से बहिष्कृत, बेदखल तथा ऊपर से अक्करमाशी के हीनता बोधक आत्मविश्वास के साथ शिक्षित होने का उपक्रम जिस जद्दोज़हद से शरण ज़ारी रखता है- वह निसंदेह प्रशंसनीय है। आगे शिक्षा की बदौलत उसे सतत संघर्षरत रहने की प्रेरणा प्राप्त होती गई और शिक्षा ही के कारण जगे आत्मविश्वास के कारण वह अपने स्वाभिमान को बरकरार रखने में सफल रहा। अक्करमाशी में शुरुआती दौर से कॉलेज जीवन तक का लगभग ढाई-तीन दशकों का कालखंड बेहद प्रभावी तरीके से पेश किया गया है- खास तौर पर कॉलेज जीवन में वैचारिक परिवर्तन संबंधी, दलितों के सांस्कृतिक आंदोलन के संदर्भ में दलित समाज के भीतरी प्रवाह पर लिखा है। विस्तार से न सही संक्षिप्त में।

शरण की हाईस्कूल तक की पढाई चुंगी और चपलगाँव- इन दो गाँवों में हुई। चपलगाँव के बोर्डिंग में रहकर उन्होंने पढा। प्राइमरी स्तर पर गणित तथा चित्रकला के प्रति जो आकर्षण था वह कम सा हो गया। अलबत्ता उनकी अंग्रेज़ी पक्की हो गई। कक्षा में उनकी गिनती बुद्धिमान लड़कों में होने लगी।

शरण जानता है कि हार अटल है, लेकिन यह भी निश्चित है कि शरणागत होना स्वीकार्य नहीं होगा। पच्चीस बरस की ज़िन्दगी में उसने एक संघर्षशील लेखक के रूप में अपनी अस्मिता को बनाया है। उसके संघर्ष को

एक मिथकीय आयाम प्राप्त हो गया है। उसने शिक्षा प्राप्त की और शिक्षा ने लड़ने की प्रेरणा दी, शिक्षा ने अभिमान को जगाया, अम्बेडकर की विचारगति से उसने अपनी ज़िन्दगी की मशाल जला दी।

उन्होंने मेट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। सभी ओर से उनकी प्रशंसा हुई। और महाविद्यालयी शिक्षा के लिए वे सोलापुर गए। देहाती स्कूलों की तुलना में वहाँ की दुनिया ही निराली थी। चारों तरफ नया परिवेश और नया उत्साह था। महाविद्यालयी शिक्षा ने शरण को व्यवस्था के खिलाफ आवाज़ उठाने की प्रेरणा प्रदान की। खासकर के हॉस्टल का माहौल। उन दिनों की उनकी मानसिक अवस्था पर वे लिखते हैं- हॉस्टल में सभी दलित छात्र। हॉस्टल छावनी की तरह लगता। मेरे भीतर एक प्रचण्ड संघर्ष आकार धारण कर रहा था। मैंने नमस्कार करना छोड़ दिया। जय भीम कहने लगा। अम्बेडकर कहना मैंने छोड़ दिया। बाबासाहब कहने लगा। मेरी तरुणाई को एक नया अर्थ प्राप्त होने लगा। शरीर भर का पूरा रक्त लावा की तरह उबल रहा था। विचार अराजकता और विध्वंस में बदल रहे थे। बाबासाहब की प्रतिमा देखता तो लगता सात जन्म की माँ से भेंट हो गई है। अन्याय, अत्याचारों के समाचारों से जल रहा था। बेचैन हो रहा था।

महाविद्यालयी शिक्षा ने शरण के मन में अपनी गरीबी और जाति के प्रति और हीनताबोध जगा दिया। यहाँ तक कि उसकी प्रिय नानी संतामाय के प्रति भी उसके मन में अलगाव पैदा होने लगा। हॉस्टल में जब उनकी नानी संतामाय मिलने आती तो नानी की फटेहाल अवस्था देखकर वह काफी शर्मिन्दगी महसूस करता। वे लिखते हैं- 'संतामाय बूढी स्त्री। हमेशा तम्बाकू खाने वाली। साड़ी-चोली हमेशा फटी हुई। संतामाय को हॉस्टल के कमरे में कैसे ले जाऊँ। संतामाय अगर गोरी, बेहतरीन कपड़ों में होती तो मैं कमरे पर ले जाता। मुझे संतामाय से लाज आ रही थी। सामने से जब कॉलेज के दोस्त दिखते तो मैं संतामाय से दूरी रखकर चलता जैसे कि यह दरिद्र स्त्री मेरी कोई लगती ही न हो। संतामाय मुझसे पूछताछ कर रही थी, मैं बोल नहीं रहा था। संतामाय यदि थाली होतीं तो मैं उन्हें अपने भीतर छिपा लेता।'

कॉलेज में शरण की छटपटाहट बढ़ती गई। अन्याय नामक शब्द उनके मन मस्तिष्क में एक नया अर्थ दिए जा रहा था। वे इसे यों दर्ज करते हैं- 'कॉलेज की दुनिया में हमारी गरीबी फबती नहीं थी। गरीबी का दुख बड़ा गहरा होता है। यह दुख ही आदमी को अमर्यादित बनाता है।'

गाँव में किसी ने माँ-बहनों से छेड़खानी की है यह सुनकर शरण को अध्ययन में मन नहीं लगता। ऊपर से सवर्ण समाज आरक्षण की प्रावधान को खत्म करने पर ज़ोर देने लगे। उन्हीं दिनों सुनने में आया कि दलित छात्रों को दी जाने वाली आरक्षण की सुविधा सरकार समाप्त करने की सोच रहे हैं। शरण का मन यह सुन काफी विचलित होता। उन्हें लगता- 'आरक्षण की सुविधाएँ हैं, इसलिए तो मुझ जैसे लोग पढ़ पा रहे हैं। इस उम्र में जानवरों की रखवाली करना और माँ-बाप की ज़िम्मेदारियों में हाथ बँटाना ज़रूरी होता है। पर मैं उस समय कॉलेज में पढ़ रहा था। दादा और संतामाय रात-दिन मेहनत-मज़दूरी कर रहे थे। किताब के प्रत्येक पन्ने पर उनके श्रम, भूख और आशा को मैं देखता। संतामाय का जोगवा और दादा की हमाली को भूल नहीं पा रहा था। गाँव में किसी ने माँ बहनों से छेड़खानी की है- यह सुनकर अध्ययन में मन नहीं लगता। इच्छा होती कि कॉलेज की पढ़ाई छोड़ दूँ और फावड़ा लेकर निकलूँ, दादा और संतामाय की सहायता करूँ।'

लेखक को उनकी जाति से डर लगने लगा था। महाविद्यालयी शिक्षा के लिए वे दयानन्द महाविद्यालय सोलापुर गए। और वहाँ के क्लर्क ने जब उसका नाम और जाति पूछा तो उसने बताया कि वह हिन्दू अछूत है और उसका नाम शरणकुमार लिंबाले है तब वह क्लर्क अचरज में पड़ गया। उसने आश्चर्य सहित अपनी शंका व्यक्त की कि क्या लिंबाले उपनाम महारों में भी होता है?

अहमदपुर में लिंबाले की नियुक्ति टेलीफोन ऑपरेटर के रूप में हो गई थी।

3.3.3.10 विवाह की अड़चनें

पारंपरिक समाज में अक्करमाशी का विवाह अनेक तरह की कठिनाइयों का कारक था। सबसे बड़ी कठिनाई थी शरण का अक्करमाशी होना। शरण के मन में शेवंता के प्रति प्यार था लेकिन एक अक्करमाशी होने के कारण वह शेवंता से शादी नहीं कर पाया। शेवंता की शादी किसी और से हो गई थी और शरण के लिए लड़की ढूँढना मसामाय के लिए भी मुश्किल हो गया था। घर में दारू पीने के लिए जो ग्राहक आते उनमें से एक मयाप्पा

कांबले भी था जो कि पैसों के अभाव में अपनी लड़की की शादी नहीं करवा पा रहा था। शरण से वह कई बार पैसे ले जाता और बदले में अपनी बेटी कुसुम का विवाह शरण से करवा देने का वादा करता है। वैसे शरण और कुसुम की मुलाकात नहीं हुई थी फिर भी वह विवाह के लिए राज़ी हो गया क्योंकि कोई उसे अपनी लड़की देने के लिए तैयार ही न था। कुसुम का भाई इस शादी के लिए राज़ी न था। वह निरंतर कहने लगा- 'शरण रंडियों के पास जाता है, शराब पीता है। इसलिए कुसुम के साथ इसका विवाह न किया जाए। पर मयाप्पा कांबले ने किसी की बात न सुनी और शादी पक्की कर दी।'

शादी हुई पर लड़की को वे ससुराल भेजने के लिए तैयार ही न थे। सास कहती– 'तुम्हारे घर का चाल-चलन ठीक नहीं है। घर में शराब का धन्धा है। दस घर के लोग आते हैं। मेरी लड़की बिगड़ जाएगी। जब तुम्हारी नौकरी लग जाएगी तब भेजूँगी। तब तक तड़की को विदा नहीं करूँगी।' शादी के बाद अपनी पत्नी कुसुम को अपने साथ अपने घर ले आने में असमर्थ शरण काफी परेशान हुआ। ससुर हर बार शराब पीकर झगड़ता, सास गालियाँ देती- तुम सड़े हुए लोग हो। हम लोगों ने तुम्हें शुद्ध किया है। सड़क पर तो पड़े हुए थे।

अंत में लड़ झगड़कर शरण अपनी पत्नी कुसुम को लेकर वहाँ से निकला। मयाप्पा कांबले बीच में आया और कुसुम के हाथों की थैलियाँ सड़क पर फैंककर वह ज़बरजस्ती उसे खींचकर भीतर ले जाने लगा। और कुसुम शरण, शरण कहकर रोने लगी। शरण दौड़ता हुआ गया और उसने अपने ससुर का गर्दन पकड़ लिया तब जाकर मज़बूर होकर उसने कुसुम को छोड़ा। इस प्रकार विधिपूर्वक विवाह करने पर भी काफी मुश्किलों का सामना कर शरण को अपनी पत्नी कुसुम मिल पाई।

3.3.3.11 प्रतिशोध का दर्शन

अक्करमाशी की रचना प्रक्रिया का एक प्रमुख सरोकार है- सवर्ण आधिपत्य के अस्वीकार की मुखरता। उसी से निर्मित होता है प्रतिशोध का दर्शन। और प्रतिशोध के इस दर्शन की स्वाभाविक परिणति है विद्रोह। आरक्षण के कारण दलितों को मिलने वाली सुविधाओं में तेज़ी से बदलाव आने लगे। शिक्षा के कारण उनमें उभरती अस्मिता व स्वाभिमान ने एक नयी दलित समाज का निर्माण किया जिनमें प्रतिशोध का दर्शन स्पष्ट झलक रहा था। अक्करमाशी में भी इस प्रकार का प्रतिशोध और उसके परिणामतः उत्पन्न होने वाली विद्रोह के कई उदाहरण मौजूद हैं।

किशोरावस्था में सवर्ण शोभी द्वारा किशोर शरण और परश्या के बार-बार अपमानित करना बेहद नागवार लगता। ऐसे में प्रतिशोध की आग में तपते शरण और परश्या द्वारा शोभी का रास्ता रोकना एकदम स्वाभाविक लगता है। लेखक लिखते हैं- 'उसी तरह सार्वजनिक होटलों में अछूतों के लिए चाय के बर्तन अलग रखना युवा दलितों को बेहद अपमानजनक लगता है। शिवराम के होटल के बाहर रखा गया कप-सॉसर उन्हें उनकी जाति का अपमान लगता।'

गाँव में यदि कोई जानवर मर जाता तो सवर्ण दलितों को दोषी ठहराते। उन्हें लगता किसी दलित ने ही जान बूझकर जानवर को कुछ उल्टा-सीधा खिलाकर मार दिया होगा। ताकी उन्हें उसका माँस और चमड़ा मिले। वे लिखते हैं- 'उन दिनों गाँव में कोई जानवर मर जाता था तो पूरा गाँव दलितों से चिढ़ जाता। बस्ती को परेशान करता। पूरी बस्ती के दलितों को खम्भे से बाँधकर जानवरों की तरह पीटते, तुम लोगों ने ही ज़हर देकर हम लोगों के जानवर को मारा है। ऐसे आरोप लगाते। औरतें बच्चे रोते। सारे पुरुष पीटे जाते। बस्ती को बहिष्कृत किया जाता। खेतों में मज़दूरी नहीं दी जाती। पैसों के बावजूद दुकान से सामान नहीं दिया जाता। सभी ओर से उन्हें परेशान करते। दलित कसम खाते, छटपटाते।' यह सब देख लेखक का मन प्रतिशोध से भर जाता। कॉलेज में शरण की छटपटाहट बढ़ती गयी। 'अन्याय' नामक शब्द उनके मन मस्तिष्क में एक नया अर्थ दिए जा रहा था। उन्हें अपनी जाति से डर लगने लगा था। संपूर्ण जाति व्यवस्था के प्रति विद्रोह उभर रहा था। वे इस प्रतिशोध को यूँ व्यक्त करते हैं। मुझे मेरी जाति से डर लग रहा था। वास्तव में पिता के धर्म पर, उनकी जाति-बिरादरी पर, किसी पर भी मेरा हक नहीं था। मैं हिन्दू-महार से सुविधाएँ ले रहा था। मैं महार नहीं हूँ। मेरे शरीर में एक सवर्ण का रक्त है- शिख से नख तक। भीतर के इस रक्त को क्या मैं निकाल बाहर कर सकता हूँ? मुझे अपने शरीर से घृणा हो रही है।

लातूर में रहने के लिए मकान जब कोई दे नहीं रहा

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

था और जब स्पष्ट रूप से कहा जाता कि- मुसलमान और महारों को हम घर किराए पर नहीं दे सकते तो शरण के मन में प्रतिशोध की भावना जग जाती और उनका मन करता कि सारे शहर को आग लगा दें। उन्हें लगता-प्रत्येक शहर जातिवादी। प्रत्येक घर जातिवादी। प्रत्येक मनुष्य जातिवादी। उन्हें इस बात का एहसास होता कि जाति ने यहाँ के लोगों को भीतर से इतना तोड़ दिया हैं कि कहीं पर मनुष्य ही शेष नहीं है।

लेखक के मन में प्रतिशोध की भावना ने अनेक सवाल ला खड़ा किया- मनुष्य जन्म से ही जाति-बिरादरी लेकर कैसे आता है? जन्म से वह शूद्र कैसे हो जाता है? जन्म से वह गुनहगार कैसे हो जाता है?

Critical Overview / अवलोकन

आत्मकथा के कथा प्रवाह में अथ से अंत तक शरण कुमार लिंबाले नामधारी लेखक के व्यक्तित्व के पहलू प्रभावी ढंग से व्यक्त हुए हैं। समूची आत्मकथा की संरचना पर गौर करने से पता लगता है कि इस आत्मकथा से एक साथ दो प्रमुख स्वर ध्वनियाँ उभरती हैं। पहली-समकालीन दलित समाज की व्यथा वेदना को व्यक्त करने वाली विद्रोह और नकार की प्रातिनिधिक स्वर और दूसरी वह जो लेखक के अंतस में गहरे तक बैठ चुकी अन्तर्वेदना को रचनात्मक अभिप्राय अथवा औज़ार के रूप में उभरने वाला स्वर। समाज की अवहेलनापूर्ण उपहास तथा स्वयं लेखक का वैयक्तिक आक्रोश इन सब के संयोग से उत्पन्न एक विशिष्ट असह्य अंतर्वेदना ही इस आत्मकथा की थीम है। बहिष्कृत समाज ने भी जिसे बहिष्कृत किया उस यतिहीन महार युवक की दुखयात्रा की कहानी है-अक्करमाशी। यह दुखयात्रा, वेदना जितनी शरण की है उतनी ही उन सभी की हैं जो ऐसे अभागे हैं। अर्थात् यह अन्तर्वेदना लेखक की जितनी वैयक्तिक है उतनी ही वह इस तरह के दुर्भाग्य का शिकार बने अन्य नाजायज़ कही जाने वाले औलादों की भी हो सकती है। शरणकुमार की परवरिश जिस माहौल में हुई वह किसी तरह से उसके अनुकूल नहीं था। इसके बावजूद भी उसने अपनी संवेदनशीलता को जीवित रखा अमानवीय पर्यावरण में रहकर भी उनके मन में मानवतावादी मूल्य विकसित हुए।

जो बात दलित आत्मकथा और अन्य आत्मकथा में फर्क करती है वह यह है कि दलित लेखक स्वयं और अपने परिवार के द्वारा झेले गए यथार्थ का चित्रण करने में नहीं हिचकता। यदि दलित लेखक के परिवार की महिला को मज़बूरीवश, भयवश, बलवश अथवा किसी अन्य कारणों से भी शारीरिक और यौन शोषण झेलना पड़ता है तो वह उसको अपनी आत्मकथा में अपने अनुभव और सोच के अनुसार स्थान देने में नहीं हिचकता।

Recap / पुनरावृत्ति

- आत्मकथा अर्थात आत्मेतिहास व्यक्ति के जीवन और कालखंड का इतिहास।
- दलित आत्मकथन केवल एक व्यक्ति के जीवन पर आधारित नहीं है उसमें संपूर्ण दलित समाज की मौजूदगी भी है।
- शरणकुमार लिंबाले के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी उसका अक्करमाशी होना था
- अक्करमाशी के नायक शरण को बार-बार इस बात का अहसास होता कि दलित जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी भूख है।
- अक्करमाशी की रचना प्रक्रिया का एक प्रमुख सरोकार है-सवर्ण आधिपत्य के अस्वीकार की मुखरता।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. शरण की माँ का नाम क्या था?
2. संतामाय कौन थी?
3. शरण के पिता का नाम क्या था?
4. किस निर्भीक अध्यापक के कारण शरण को स्कूल की हाज़िरी रज़िस्ट्री में अपने पिता का नाम मिला?
5. किस लडकी से शरण को प्यार हो गया था?
6. अक्करमाशी का क्या मतलब होता है?
7. चानी किसे कहते हैं?
8. मृत जानवरों के मास को खाने से गाँव के सवर्ण बच्चे दलित बच्चों को क्या नाम देकर चिढ़ाते थे?
9. शरणकुमार लिंबाले की पत्नी का नाम क्या था?
10. शरण का ससुर कौन था?

Answers / उत्तर

1. मसामाय
2. शरण की नानी
3. हणमंता लिंबाले
4. भोंसले गुरुजी
5. शेवंता
6. उच्चकुलीन मर्द और निम्न जाति औरत इन दोनों के संकर से पैदा लड़के को समाज द्वारा अवहेलना और नफरत के साथ 'थूं' कहकर दी जाने वाली महज़ एक गाली है 'अक्करमाशी' शब्द।
7. चानी - मृत जानवर का माँस अधिक हो जाता तो उसकी छोटी-छोटी बोटियाँ बनाकर उन्हें साफ करके सुखा देते हैं तथा अभावग्रस्त दिनों में उसे खाते हैं उसे चानी कहते हैं।
8. धेड़
9. कुसुम
10. मयाप्पा कांबले

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. 'अक्करमाशी' आत्मकथा में सबसे हृदयस्पर्शी प्रसंग कौन सा लगा। संक्षिप्त विवरण दीजिए।
2. 'अक्करमाशी' के आधार पर दलित स्त्री जीवन की त्रासदी पर प्रकाश डालिए।
3. नाजायज संतानों के दुख को उजागर करने में आत्मकथा 'अक्करमाशी' कहाँ तक सफल हो पाया है। स्पष्ट कीजिए।

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Reference

1. दलित साहित्य वेदना और विद्रोह - सं शरणकुमार लिंबाले, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
2. हिन्दी दलित आत्मकथा - डॉ. संजय नवले, अमन प्रकाशन, कानपुर।
3. दलित चिन्तन का विकास - डॉ. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
4. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - शरणकुमार लिंबाले, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
5. दलित चेतना की पहचान - सं डॉ. सूर्य नारायण रणसुभे, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
6. उत्तर-आधुनिकतावाद और दलित साहित्य - कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
7. दलित साहित्य के प्रतिमान - डॉ. एन. सिंह, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
8. दलित हस्तक्षेप - रमणिका गुप्ता, शिल्पायन, दिल्ली।

Video Link

1. Akkarmashi (Episode 10) https://youtu.be/jMP5HTPKzwM
2. Akkarmashi (Episode 11) https://youtu.be/hl1ayBG1EEw
3. Akkarmashi (Episode 12) https://youtu.be/EBUVjUdGFV4
4. Akkarmashi (Episode 13)https://youtu.be/aEPI63OzzcA
5. Akkarmashi (Episode 14)https://youtu.be/iFqzb5Xsykk
6. Akkarmashi (Episode 15)https://youtu.be/NKEB3LMRbVY
7. Akkarmashi (Episode 16)https://youtu.be/3wkDGAtWRb4

BLOCK - 04

दलित साहित्यः कहानियाँ

इकाई 1

'सलाम'

- ओमप्रकाश वाल्मीकि

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- दलित कहानी से परिचित होता है
- दलित कहानीकार ओमप्रकाश वाल्मीकि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से अवगत होता है
- दलित कहानी 'सलाम' से परिचित होता है
- 'सलाम' कहानी में चित्रित दलित जीवन और उनकी समस्याओं से अवगत होता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म 30 जून, 1950 ई. को उत्तर प्रदेश के मुज़फ्फरनगर जिले के बरला गाँव में हुआ। उनकी माता का नाम मुकुंदी और पिता का नाम छोटनलाल था। ओमप्रकाश के चार भाई और दो बहनें हैं। उनका परिवार सवर्णों के घर में साफ-सफाई या मजदूरी करके अपना गुजारा करते थे। उनका जन्म अछूत वाल्मीकि परिवार में होने के कारण उन्हें बचपन से ही अभावग्रस्त जीवन जीना पडा। उन्हें सामाजिक, आर्थिक और मानसिक यातनाओं का सामना करना पडता था। उनकी शिक्षा ग्रहण का सफर भी काफी चुनौती पूर्ण रहा है। स्कूल में नाम दर्ज करने के लिए उन्हें काफी संघर्ष करना पडा था। वे बारहवीं की परीक्षा में फेल हुए थे, फिर भी उन्होंने उम्मीद नहीं छोडी और विपरीत परिस्थितियों के बावजूद एम.ए तक की शिक्षा संपन्न की है। शिक्षा के दौरान उन्हें उपजीविका चलाने के लिए तरह-तरह का काम करना पडा। इसके बाद उन्हें महाराष्ट्र में ऑर्डिनेंस फैक्टरी में नौकरी मिल गई। महाराष्ट्र में रहते हुए वे यहाँ के दलित चिंतक के संपर्क में आये और उन्होंने डॉ. अंबेडकर के पुस्तकों का गहरा अध्ययन किया। अंबेडकर की प्रेरणा लेकर वे दलित साहित्य लेखन से जुड़ गए। ओमप्रकाश का 17 नवंबर, 2013 ई को देहरादून में कैंसर से निधन हो गया।

ओमप्रकाश वाल्मीकि हिन्दी दलित साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं। हिन्दी दलित साहित्य का बीजारोपण, संपोषण और संवर्धन करने में वाल्मीकि जी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आज जो दलित साहित्य विकसित होकर विशालकाय महावृक्ष की तरह है। उसकी जडें जमाने में वाल्मीकि ने अपना पूर्ण योगदान दिया है। सदियों से वंचित, उपेक्षित, शोषित एवं पीडित दलित जीवन की वेदना को वाणी देने का सर्वप्रथम साहस वाल्मीकि ने अपनी रचनाओं में किया है। उनकी रचनाएँ दलित जीवन के भोगे हुए यथार्थ के विविध पहलुओं से भरी पडी है। वे अपनी रचनाओं में न केवल यथार्थ का रेखांकन करते हैं, अपितु सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए आंदोलन भी खडा करते हैं। इसलिए उनकी पहचान एक रचनाकार के साथ-साथ एक आंदोलनकारी भी रही है।

ओमप्रकाश बहुमुखी प्रतिभा के धनी कलाकार थे। उन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं में कलम चलाकर दलित विमर्श को सशक्त और मजबूत किया है। वे एक सुपरिचित दलित कवि है। उनके चार कविता संग्रह प्रसिद्ध हुए हैं। उनका पहला कविता संग्रह 'सदियों का संताप' 1989 ई में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् 1997 ई में 'बस्स ! बहुत हो चुका', 2009 ई में 'अब और नहीं', 'शब्द झूठ हीं बोलते' आदि प्रकाशित हुए हैं। उनकी

सबसे लोकप्रिय रचना 'जूठन' है। यह एक आत्मकथा है ओर इसका प्रकाशन 1997 ई में हुआ। इसका दूसरा संस्करण भी प्रकाशित हो चुका है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने कहानी विधा में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। 'सलाम' उनका प्रथम कहानी संग्रह हैं और इसका प्रकाशन वर्ष 2000 ई में राधाकृष्ण प्रकाशन द्वारा हुआ है। इसमें लगभग 14 कहानियाँ संकलित है। 'घुसपैठिये' इनका दूसरा कहानी संग्रह है। इसका प्रकाशन 2003 ई में हुआ। इसके अलावा इनके 'अम्मा एंड अदर स्टोरीज' और 'छत्तरी' कहानी संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। इनके आलोचनात्मक रचनाओं में 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र', 'मुख्यधारा और दलित साहित्य', 'सफाई देवता', 'दलित साहित्यःअनुभव, संघर्ष और यथार्थ' आदि प्रकाशित हो चुकी हैं। 'दो चेहरे', 'उसे वीर चक्र मिला था' नामक इनके दो नाटक भी प्रकाशित हो चुके हैं। अनुवाद के क्षेत्र में भी इन्होंने उल्लेखनीय कार्य किया है। 'सायरन का शहर' शीर्षक में अरुण काले की मराठी कविताओं का इन्होंने हिन्दी में अनुवाद किया है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

दलित साहित्य का बीजारोपण, सदियों से वंचित, शोषित एवं पीडित दलित, दलित वर्ग का साहित्यकार, आंदोलनकारी, बहुमुखी प्रतिभा

Discussion / चर्चा

दलित जीवन को केन्द्र बनाकर लिखी गई कहानी है 'सलाम'। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने प्रस्तुत कहानी में दलित समाज की स्थिति-परिस्थिति का संवेदनशील चित्रण खींचा है। आजादी के इतने सालों बाद भी गाँव में दलित समाज को छुआछूत की समस्या का सामना करना पडता है। उन्हें अछूत समझकर छोटी-छोटी चीजों से वंचित रखा जाता है। इस कहानी में दलित जीवन की करुण स्थिति का मार्मिक चित्रण मिलता है।

कहानी में हरीश एक दलित युवक है, जो पढा-लिखा है। वह अपनी शादी के लिए गाँव आता है। इस शादी में उसका दोस्त कमल उपाध्याय भी आता है जो ब्राह्मण है और परिवर्तनवादी विचारधारा से जुडा हुआ है। वह छूआछूत जैसी रूढिवादी मानसिकता से ऊपर उठकर दलित-सवर्ण भेदभाव को मिटाने में विश्वास रखता है। कहानी की शुरुआत में गाँव में दलितों की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। हरीश की शादी में जो बाराती आये हैं, उन्हें रात में रुकने के लिए स्कूल के कमरे के दरवाजे न खोल देना और हेडमास्टर का ताले की चाबी लेकर दूसरे गाँव चले जाना आदि यही दर्शाता है कि गाँव में दलितों को किसी भी तरह का सहयोग नहीं मिल रहा है। बारातियों को स्कूल के बरामदे में सोने के लिए मजबूर होना पडता है। गाँव में दलितों की इन हालातों पर नजर डालते हुए कमल कहता है- "गाँव के बारे में सिर्फ पढा था। देखा आज ही है। हालत दयनीय है कितना धैर्य है लोगों में।" बेशक गाँव में दलितों की स्थिति शोचनीय है।

'सलाम' कहानी का नायक हरीश भंगी समाज का है। पूरी कहानी का ताना-बाना हरीश के विवाह के चारों तरफ घूम रहा है। हरीश का एक मित्र कमल उपाध्याय जो उसकी बारात में ही शामिल नहीं होता बल्कि उसके विवाह की तैयारियों में भी घर-परिवार का सदस्य बनकर लगा रहता है। हरीश की बारात देहरादून से मुजफ्फरपुर नगर के पास के एक गाँव में पहुँचती है। अगले दिन सुबह कमल को चाय की तलब लगती है और वह ढूँढते हुए गाँव की एक चाय की दुकान पर पहुँचता है। दुकानदार का विचार है कि यह देहरादून से जुम्मन चूहडे के यहाँ बारात में आया है तो चूहडा ही होगा। ऐसा सोचकर कमल को चाय नहीं देता। यहाँ उसे जिस अपमानजनक स्थिति से गुजरना पडा है, वह चाय वाले और कमल के संवादों के माध्यम से अवगत हो पायेगा। चायवाला कहता है कि- "यहाँ चूहडे चमारों को मेरी दुकान पर चाय ना मिलती ..... कहीं और जाके पियो।" तो कमल भी चायवाले से उसकी जाति पूछ लेता है। इस पर चायवाले भभक उठ्ता है और कहता है- "मेरी जात से तुझे क्या लेणा देणा। इब चूहडे चमार भी जात पूछने लगे कलजुग आ गया है।" इसके बदले कमल अपनी बात आगे रखते हुए कहते हैं- "तुम अपनी जात नहीं बताना चाहते हो, तो

सुनो मेरा नाम कमल उपाध्याय है। उपाध्याय का मतलब तो जानते ही होंगे, या समझाऊं .... उपाध्याय यानी ब्राह्मण।" लेकिन चायवाले 'चूहडों की बारात में बामन' कहकर मजाक उडाता है। ऐसा संवाद जब चलता रहा तो वहाँ पर बल्लू रांयड का रामपाल भी आता है और कमल को गाली गलौज देने लगता है। कमल आसपास खडे लोगों पर निगाहें डाल हिंसक शिकारी तेज नाखूनों से उस पर हमला करने की तैयारी कर रहे थे। उसने पहली बार अखबारों में छपी उन खबरों को बडी शिद्दत से महसूस किया उस पर वह विश्वास भी नहीं कर पाता था। अपने दोस्त इन खबरों के बारे में बात करते थे पर वह विश्वास नहीं करता था। लेकिन आज उनके सामने खुद ऐसी घटना घटित हो गयी।

सलाम कहानी में जातिवाद, छुआछूत और बहिष्कार के कई उदाहरण मिलते हैं। कमल को चायवाला बूढा चूहडे का बाराती होने से चाय देने से इनकार कर देता है। कमल की माँ का हरीश की जाति जानकर उसके प्रति किया गया बर्ताव याद आता है। कमल और हरीश बचपन से मित्र रहे हैं। एक दिन हरीश कमल के साथ उसके घर चला जाता है। कमल की माँ दोनों को खाना परोसती है। दोनों खाना खाने बैठ जाते हैं। हरीश पहला निवाला अपने मुख में रखने वाला होता है तभी कमल की माँ उससे पूछती है कि तुम्हारे पिताजी क्या काम करते हैं। हरीश बिना हिचकिचाहट के बता देता है कि वह नगरपालिका में सफाई कर्मचारी है। यह सुनकर कमल की माँ आग बबूला होकर कमल को जोरदार थप्पड़ मारती है और कहती है, "पता नहीं कहाँ-कहाँ से इन कंजडों को पकडकर घर ले आता है। खबरदार जो आगे से किसी हरामी को दुबारा यहाँ लाया।" इतना ही नहीं माँ ने हरीश को गालियाँ देकर भगा दिया और उसके जाने के बाद घर को फिर से धोया और गंगाजल छिडककर जमीन को पवित्र किया।

इसके बाद कहानी का सबसे बडा प्रसंग आता है जिसमें दलित जीवन की मूल संवेदना अभिव्यक्त होती है। दलितों को शादी के बाद सवर्णो के दरवाजे पर 'सलाम' करने जाने की रिवाज है। उसे सख्ती से पालन करने की ज़रूरत है। यह रिवाज दलितों के सम्मान एवं स्वाभिमान पर चोट करता है और उनके आत्मविश्वास को कमजोर कर डालता है। हरीश ने जब भी किसी दूल्हे या दुल्हन को इस तरह दरवाजे पर घूमते देखा तो उसे लगता था जैसे स्वाभिमान चिंदी-चिंदी करके बिखर जा रहा है। गाजे-बाजे के साथ घूमता दूलहा निरीह जीव दिखाई पडता था। कहानी के इस प्रसंग में दलित जीवन की केन्द्रीय संवेदना प्रकट हुई है। हरीश 'सलाम' पर जाने से इनकार कर देता है और कहता है- "मैं इस रिवाज को आत्मविश्वास तोडने की साजिश मानता हूँ। यह सलाम की रस्म बंद होनी चाहिए।" यह कहकर वो सलाम प्रथा को तोडता है। बाद में सवर्णो के यहाँ से लोग आकर हरीश के ससुराल वालों को सलाम प्रथा न करने पर धमका देता है। इसके बीच जमींदार बल्लू रांघड हरीश के ससुर जुम्मन पर न केवल अपना हुकुम चलाता है, बल्कि उन्हें शिक्षा से दूर रहने की सख्त हिदायत देता है। वो कहता है- "तभी तो कहूँ जातकों (बच्चों) को स्कूल ना भेज्जा करो। स्कूल जाकर इन्हें कौन-सा बालिस्टर बनना है। ऊपर से इनके दिमाग चढ जांगे। यो न घर के रहेंगे न घाट के। गाँव की नाक तूने पहले ही कटवा दी जो लौंडिया कू दसवीं पास करवा दी। क्या जरूरत थी लडकी को पढाने की, गाँव की हवा बिगाड रहा है तू।" सवर्ण मानसिकता दलित शिक्षा के विरोधी रही है। इस बात को कहानिकार ने इस कहानी में बखूबी चित्रित किया है।

फिर हरीश के ससुरालवाले जल्द से जल्द बारात को विदा कर उस गाँव की सीमा से बाहर ले जाने की कोशिश में जुड जाते हैं। इसके बीच बारात के एक बुजुर्ग अपने बच्चे से शीघ्र खाना खाने का आग्रह करते हैं। मासूम सा वह बच्चा हठपूर्वक खाने से यह कहते हुए इंकार करता है कि वह मुसलमान के हाथ से बनाई रोटी नहीं खाएगा। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने कहानी यह कहते हुए खत्म की है कि "कमल और हरीश फटी-फटी आँखों से उस लडके को देख रहे थे। कुछ देर पहले जगा आत्मविश्वास लडके की आवाज़ में दबने लगा था। कमल और हरीश दोनों खामोशी के अंधेरे जंगल में भटक गए थे।" कहानी की व्यंजना यही है कि आदमियत की सही मंजिल तक की यात्रा सचमुच कितना कठिन है। न जाने कितने अवरोधों को पार करना होगा। कहानी का यह अंत हताशा या निराशा का सूचक नहीं बल्कि एक बेचैनी जरूर उपजाता है। संजीदगी के साथ संघर्ष को जारी रखने की जरूरत पर बल देता है।

इस संकलन की पहली कहानी 'सलाम' है जिसके आधार पर ही संकलन का नामकरण हुआ है। सवर्णो के

गाँव में पहूँचे दलितों की बारत के प्रति सवर्ण मानसिकता का यथार्थ को प्रस्तुत कर रहा है कहानिकार ओमप्रकाश वाल्मीकि। वे यह दिखाना भी चाहते हैं कि नई पीढी के शिक्षित और प्रबुद्ध नवयुवक किस प्रकार अपने संकल्पों के खातिर जोखिम उठाने को तैयार हो जाते हैं। कहानी का मुख्य पात्र हरीश बुज़ुर्गों की नसीहत, आसन्न विपत्ति की संभावनाओं और दुष्परिणामों के बावजूद विवाह के अवसर पर सवर्णों के घर जाकर सलामी देने और बख्शीश पाने की सदियों से चली आ रही प्रथा की खिलाफत करता है और अंत तक अपने निर्णय पर दृढ रहता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'सलाम' कहानी एक बहुचर्चित कहानी है। इस कहानी से गुजरते हुए जहाँ एक ओर समकालीन दलित जीवन की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थिति का पता चलता है, तो दूसरी ओर विकासशील भारत की पारंपरिक-रूढिवादी तस्वीर का भी। आजादी के इतने सालों बाद भी दलितों को छूआछूत, जातिवाद और गुलामी की समस्या का सामना करना पडता है। आज भी गाँव में दलितों को जीवनावश्यक चीजों से केवल इसीलिए वंचित रखा जाता है कि वे अछूत हैं। उनके छूने से सवर्ण अपवित्र हो जाता है। 'सलाम' जैसी कुप्रथा न केवल दलितों के आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाती है, बल्कि वर्णवादी सवर्णों की कुत्सित मानिसकता को भी खोल देती है। प्रस्तुत कहानी में एक तरफ दलित जीवन के दुःख, दर्द और वेदना को अभिव्यक्ति मिली है तो दूसरी तरफ सवर्णों के अमानवीय चेहरे और अनैतिक चरित्र का पर्दाफाश किया गया है। इतना ही नहीं कहानी में आधुनिक शिक्षा की ताकत और परिवर्तन के स्रोतों से भी परिचय होता है। अतः कहानी की अंतर्वस्तु यथार्थवादी होने से काफी सशक्त बन गई है। कुल मिलाकर ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'सलाम' कहानी से गुजरने के बाद कहा जा सकता है कि यह एक अद्वितीय रचना है।

Critical Overview / अवलोकन

ओमप्रकाश वाल्मीकि के आगमन से समकालीन कथा साहित्य को एक नई दिशा, आयाम, आधार और चेतना मिली। उन्होंने हाशिये के जीवन को अपनी कथा की अंतर्वस्तु बनाकर कथा साहित्य को नई ताज़गी दी। उन्होंने दलित चेतना को अपनी कथाओं का केंद्र बनाया। इस दृष्टि से उनकी 'सलाम' कहानी विशेष स्थान रखती है। इस कहानी में उन्होंने समकालीन दलित जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। अतः 'सलाम' कहानी अन्ततः परम्परा एवं प्रथा के अमानवीय पहलुओं को उजागर करते हुए उसके नेपथ्य में काम कर रही जातिप्रथा एवं वर्चस्व की सोच को उजागर करती है। यह कहानी असमानता, अस्पृश्यता, भेदभाव एवं जातिगत वर्चस्व की मानसिकता को बदलने तथा समतापरक भारत के निर्माण की आकांक्षा को साकार करने का लक्ष्य सामने रखती है।

Recap / पुनरावृत्ति

- दलित कहानी साहित्य में सर्वप्रथम नाम ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'सलाम' कहानी को है।
- 'सलाम' कहानी दलित जीवन को केंद्र में रखकर लिखी गयी है।
- दलित समाज की स्थिति का संवेदनशील चित्रण।
- सलाम कहानी में जातिवाद, छुआछूत और बहिष्कार के कई उदाहरण।
- हरीश और कमल इस कहानी के मुख्य पात्र।
- हरीश दलित युवक और कमल ब्राह्मण युवक।
- शिक्षित और समझदार हरीश।
- परिवर्तनवादी विचारधारा से जुडा कमल उपाध्याय।
- हरीश की शादी में कमल का आगमन।
- दलित विवाह में आने के कारण ब्राह्मण कमल उपाध्याय को दलित समझकर चाय न देना।
- सलाम प्रथा का बहिष्कार।
- बच्चों में आ रहे मानसिक बदलाव।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि की आलोचनात्मक पुस्तक का नाम लिखए।
2. सलाम कहानी के मुख्य पात्र कौन-कौन हैं?
3. सलाम कहानी की मुख्य समस्या क्या है?
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा का नाम क्या है?
5. किस महान व्यक्ति की प्रेरणा से ओमप्रकाश वाल्मीकि साहित्य लेखन से जुड गए थे?
6. ओमप्रकाश वाल्मीकि का पहला कविता संग्रह कौन-सा है?
7. ओमप्रकाश वाल्मीकि का प्रथम कहानी संग्रह कौन-सा है?
8. ओमप्रकाश वाल्मीकि के दो नाटकों का नाम लिखिए।
9. घुसपैठिये का प्रकाशन वर्ष कब है?
10. जूठन आत्मकथा का प्रकाशन वर्ष कौन-सा है?

Answers / उत्तर

1. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र
2. कमल उपाध्याय और हरीश
3. सलाम प्रथा
4. जूठन
5. डॉ. भीमराव आंबेडकर
6. सदियों का संताप
7. सलाम
8. दो चेहरे, उसे वीर चक्र मिला था
9. 2003
10. 1997

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. समकालीन कथा साहित्य में दलित चेतना के हस्तक्षेप पर टिप्पणी तैयार कीजिए।
2. दलित कहानी लेखन की परंपरा पर टिप्पणी लिखिए।
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि के कृतित्व पर आलेख तैयार कीजिए।
4. 'सलाम' कहानी का सारांश लिखिए।
5. 'सलाम प्रथा' दलित समाज के लिए अभिशाप विषय को लेकर टिप्पणी तैयार कीजिए।
6. 'सलाम' कहानी पर चित्रित दलित समस्या पर आलेख तैयार कीजिए।
7. 'सलाम' कहानी की प्रासंगिकता पर पर्चा लिखिए।

Reference सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. दलित विमर्श, दशा और दिशा : मुकेश मिरोठा - प्रभात प्रकाशन।
2. हिन्दी के दलित साहित्य संवेदना और विमर्श : पी.एन सिंह - लोकभारती प्रकाशन।
3. आधुनिकता के आईने में दलित : सं उदयकुमार दुबे - वाणी प्रकाशन।
4. मुख्य धारा और दलित विमर्श : ओमप्रकाश वाल्मीकि - स्पेस पब्लिशिंग हाउस।
5. दलित विमर्श और हिन्दी साहित्य : सं दीपक कुमार पाण्डेय - लोकभारती प्रकाशन।

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

इकाई 2

'आवाज़ें'

- मोहनदास नैमिशराय

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- दलित साहित्यकार मोहनदास नैमिशराय से परिचित होता है
- मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'आवाज़ें' से परिचित होता है
- 'आवाज़ें' कहानी की कथावस्तु से परिचित होता है
- 'आवाज़ें' कहानी में अभिव्यक्त दलित जीवन यथार्थ से अवगत होता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

मोहनदास नैमिशराय हिन्दी के दलित रचनाकारों की प्रथम पीढी के प्रतिनिधि हैं। इस पीढी के दलित रचनाकारों को घर और बाहर दोनों जगह बाधाओं का सामना करना पडा। हिन्दी के अधिकांश दलित रचनाकार ग्रामीण परिवेश से आए हैं। वे आसानी से शिक्षा संस्थानों में नहीं जा सकते थे। परिवार और बिरादरी का माहौल भी प्रायः उत्साहवर्धक नहीं रहा। ये किसी तरह स्कूल पहुंचे तो वहाँ के जातिवादी शिक्षक इन्हें हर संभव हतोत्साहित करने में लगे रहते थे। सरकारी नौकरियों में दलित विभाग के जो लोग गए हैं उन्हें कदम-कदम पर तिरस्कार और अपमान सहने पडे हैं। दलित रचनाकारों की कहानियाँ इन अनुभवों की बेबाक गवाही देती हैं।

मोहनदास नैमिशराय का जन्म उत्तर प्रदेश के मेरठ में 5 सितंबर 1949 को हुआ। उन्होंने एम.ए, बी.एड. तक की शिक्षा ग्रहण की। प्रारंभ में कुछ दिन गाजियाबाद के एक प्राइमरी स्कूल में अध्यापन किया और फिर मेरठ छावनी के एक इण्टर कॉलेज में पढाया। इसके बाद नैमिशराय ने पत्रकारिता का व्यवसाय अपनाया और तमाम पत्र-पत्रिकाओं के संपादक, उपसंपादक रहे। आपकी प्रकाशित कृतियों की संख्या तकरीबन 30 है। इसमें आत्मकथा 'अपने अपने पिंजरे' (दो भागों में) उपन्यास- 'क्या मुझे खरीदोगे', 'मुक्तिपर्व', नाटक- 'अदालत नामा', 'हैलो कामरेड', ऐतिहासिक जीवनी- 'वीरांगना झलकारी बाई', कविता संग्रह- 'सफदर एक बयान', 'आग और आंदोलन' तथा कहानी संग्रह– 'आवाज़ें' मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त डॉ. भीमराव आंबेडकर पर आपकी कई पुस्तकें प्रकाशित हैं। आपने दलित आंदोलन का संक्षिप्त इतिहास भी लिखा है।

कहानीकार के रूप में आपकी ख्याति 'आवाज़ें' कहानी संग्रह से हुई। इसमें आपकी 13 कहानियाँ शामिल हैं। यह संग्रह पहली बार 1998 में छापा। इसका दूसरा संस्करण 2002 में सामने आया। पहले संस्करण की भूमिका में मोहनदास ने अपनी रचना-प्रकिया का खुलासा करते हुए लिखा, "जहां तक इस संग्रह में प्रकाशित मेरी कहानियों की बात है उनके पीछे कोई बौद्धिक विलास या काल्पनिक सुख नहीं है बल्कि एक-एक कहानी की पृष्ठभूमि में दलित होने का एहसास है। हर एक कहानी लिखने के दौरान मुझे दुर्घटनाओं के आर-पार की जद्दोजहद से जूझना पडा है। मैं भीतर-बाहर अंगारा बन दहकता रहा।" नैमिशराय की लगभग सभी कहानियों में आक्रोश झलकता है। वे पहले दलित उत्पीडन का चित्रण करते हैं फिर उनके विद्रोहात्मक रवैये को दर्शाते हैं। आशावाद से उनकी कहानियों का अंत होता है। इनकी कहानियों के पात्र प्रतिकूल स्थितियों के सामने घुटने टेकते नहीं दिखाई देते।

Keywords / मुख्य बिन्दु

ग्रामीण परिवेश, जातिवादी शिक्षक, बेबाक गवाही, दलित आंदोलन, सफाई का काम, मेहतर समुदाय का यथार्थ

Discussion / चर्चा

'आवाज़ें' कहानी एक पारंपरिक गांव पर आधारित है। इस गांव में मेहतरों का एक टोला है। इस टोले को किसी भी पुराने गांव में आसानी से चिन्हित किया जा सकता है। आस-पास होते हुए भी गैर दलितों की दुनिया दलितों की दुनिया से बिलकुल अलग रह सकती है। एक तरफ तो मेहतरों का टोला है, वहाँ मकान के नाम पर कुछ फूस की झोंपडियाँ तथा आंगन के रूप में गोबर से लिपे-पुते ज़मीन के छोटे-बडे टुकडे थे। गन्दगी के साम्राज्य के बीच अधिकांश मेहतर बडी बेफिक्री से रहते थे। दूसरी तरफ ठाकुरों की बस्ती थी जो अलग से पहचानी जा सकती थी। खूब साफ लिपे-पुते मकान। लोहे के चौडे दरवाजे। उनके आसपास खूब खाली जगह होती है। कोई घर ऐसा न था जिसमें रखी लाठी पर दो-चार तोले चांदी न मढी गई हो। हर महीने उन लाठियों को सरसों का तेल जरूर पिलाया जाता था। एक दिन टोले के बडे-बुज़ुर्ग लोग आपस में सलाह-मशिवरा करके तय करते हैं कि अब वे गंदगी की सफाई का काम नहीं करेंगे और न गांव के ठाकुरों के जूठन पर अपना गुजारा करेंगे। मेहतर टोले के इस निर्णय से ठाकुरों के मुहल्ले में हलचल मच जाती है। ठाकुरों के लिए यह बिलकुल अप्रत्याशित स्थिति है। आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ था कि कोई मेहतर खुल्लम-खुल्ला बागी बन जाए।

इस बार तो पूरा मेहतर मुहल्ला ही निर्णय ले चुका है कि वह सवर्णों की गंदगी नहीं उठाएगा। मेहतरों के इस सामूहिक निर्णय को पहले तो ठाकुर औतार सिंह जैसे लोगों ने बहुत हल्के में लिया। उन्हें लगा कि ऐसी बगावत अधिक से अधिक एकाध हफ्ते चलेगी। अंततः मेहतरों को अपने काम पर लौटना ही पडेगा। आखिरकार, पेट तो भरना ही पडता है और पेट भरने का इन्तज़ार हम ठाकुरों के पास है। ठाकुर मुहल्ले से जूठन न जाए तो मेहतरों को भूखे मरने की नौबत आ जाए। लेकिन, दूसरा हफ्ता बीतते-बीतते औतार सिंह को अपनी राय पर पुनर्विचार करना पड़ गया। उन्हें यकीन होने लगा कि मेहतर समुदाय का यह संकल्प इतना कच्चा, आधारहीन और हल्का नहीं है। यह निर्णय हड़बडी में नहीं उठाया गया है। बहुत सोच समझकर ऐसा फैसला किया गया होगा, अन्यथा एक हफ्ते के भीतर ही सभी मेहतर काम पर वापस आ गए होते। अब तो ठाकुर मुहल्ले की हालत यह है कि जगह-जगह कूडे के ढेर लगे हुए हैं। गंदगी का सर्वत्र पसारा है। नालियाँ बदबू से सटी पडी है और आवारा कुत्तों के झुंड घूम रहे हैं।

गाँव के सवर्ण समुदाय के लिए मेहतरों का यह अडिग फैसला किसी त्रासद सांस्कृतिक आघात से कम न था। ठाकुरों ने पहले तो अपने रौब का इस्तेमाल करके मेहतरों को सफाई के काम पर वापस लाना चाहा। फिर उन्होंने थोडे समझौते के अंदाज में अपने एक कारिन्दे को भेजकर काम निकालना चाहा। मेहतर समाज ठाकुरों की किसी भी चाल के सामने नहीं झुका। अंततः उन्होंने अपना पुरातन क्रूर चेहरा दिखाया। मेहतरों को तरह-तरह से उत्पीडित करना शुरु कर दिया। जातीय दंभ में आकंठ डूबे मकदूमपुर गांव के ठाकुर पुरजोर कोशिश करते हैं कि गांव के मेहतर अपने पुश्तैनी पेशे से विलंग न हों। उन्हें यह असह्य लगता है कि दलित स्वाभिमान से, अपनी इच्छानुसार जीने की बात करने लगे हैं। पहले तो वे मेहतर टोले को डराते-धमकाते हैं, बाद में गिरफ्तार करा देते हैं। अपने कुचक्रों में नाकामयाब रहने पर आखिरकार वे मेहतरों की बस्ती को जला डालते हैं। ठाकुरों को यह बात कैसे सहन होती कि मेहतर भी खुद फैसला कर सकते हैं और द्विजों की सेवा-टहल से इनकार कर सकते हैं। जब शास्त्रों, स्मृतियों ने ही उनके जिम्मे सेवा का दायित्व निश्चित कर दिया है तो उसके परिपालन में ढील कैसे बरती जा सकती है ? फिर इतनी शताब्दियों से अत्याचार करने, दबा कर रखने और उनसे वे सारे काम, जो गंदे समझे जाते हैं, करवाने की आदत पड गई है उसे एकाएक कैसे विस्मृत किया जा सकता है।

मकदूमपुर गांव के मेहतर उस पेशे को छोडना चाहते हैं जिसके कारण उनका जीवन लांछित है। देश भर में चल रही परिवर्तन की लहर से वे थोडे अवगत होते हैं

और उसके प्रभाव में अपने पर थोपे गए सफ़ाई के काम को नकारने का सामूहिक निर्णय लेते हैं। यह निर्णय भूचाल-सा आ जाता है और गांव के ठाकुर मेहतरों को सबक सिखाने की ठान लेता है। स्थानीय पुलिस व्यवस्था उनकी मुट्ठी में है और इंस्पेक्टर ठाकुर रामवीर सिंह गांव के सभी मेहतरों को डकैती के झूठे केस में फंसाकर गिरफ्तार कर लेता है। लेकिन, दलित नेताओं की सक्रियता, एक नामी वकील की कोशिश तथा अखबारों में छपी खबरों के परिणामस्वरूप गिरफ्तार हुए सभी मेहतर एक हफ्ते में छूट गए। इस बात पर मकदूमपुर के मेहतर अपनी आर्थिक हैसियत के अनुसार जश्न मनाते हैं। खुशनुमा रात में मेहतरानियाँ नाचती-गाती हैं और पुरुष कच्ची शराब और सुअर के मांस खा-पीकर मस्त हो जाते हैं। मुहल्ले में क्रमशः सन्नाटा पसर जाता है। उधर भकुर बाडे में अशान्ति फैली हुई है। मेहतारों का जेल से छूट जाना और इस खुशी को समारोहपूर्वक मनाना उनके लिए बर्दाश्त नहीं है। ठाकुर औतार सिंह क्रूर प्रतिशोध लेता है। आधी रात का समय रहा होगा, मेहतरों के टोले में आग की लपटें देखी गई, जो लपलपाती हुई ऊँची होने लगी थी। शराब में धुत्त किसी को होश न था। जब होश आया तो वे सब कुछ गंवा चुके थे। किसी को चार सुअर थे तो चारों ही झुलस गए थे। बच्चों तक को आग ने लपेट लिया। बस्ती में कोई घर ऐसा न था जिसमें कोई मरा न हो। बस्ती आग की घाटी में बदल गई।

कहानीकार रचना में दलित सवर्ण टकराहट का दृश्य रचता है। यही इस कहानी का केन्द्रबिन्दु है। टकराहट के बिना यह प्रश्न उठ ही नहीं सकता। सवर्ण अपनी तथाकथित श्रेष्ठता का दंभ त्यागने के लिए तैयार नहीं है और स्वाभिमान का बोध हो जाने के बाद दलित समझौता करने, झुकने या पूर्व स्थिति में बने रहने को राजी नहीं होता। इस तनाव में ही कहानी संपन्न होती है। ठाकुरों की गुलामगिरी को नकारने के बाद मेहतर भी सिलसिलेवार उत्पीडन झेलने को अभिशप्त हैं। उनका संकल्प इतना मज़बूत था कि ठाकुरों की कोई भी चाल, दमन का कोई भी तरीका सफल नहीं हो पाया। अडिग, अपराजेय संकल्प के साथ कहानी का समापन होता है।

जो लोग भारतीय गांवों की संरचना से परिचित हैं उन्हें यह समझते देर नहीं लगेगी कि सामूहिक जीवन शैली का लोकतांत्रिक रूप पारंपरिक गांव अपना ही नहीं सकते। पारंपरिक गांवों में सेवक और स्वामी का स्पष्ट विभाजन है, अत्याचार की ऐसी अन्तर्धारा है जो अपने बाह्य रूप में बडी सहज-सामान्य लगेगी। सभी जाति समूहों की सामाजिक भूमिकाएं तयशुदा हैं और प्रदत्त भूमिकाओं से विचलन की कोई गुंजाइश नहीं छोडी गई है। आजीविका के लिए अगर तमाम विकल्प मौजूद हों तो किसी भी समुदाय या व्यक्ति का दमन सामान्यतः संभव नहीं होता। हमारे समाज के सवर्ण इस बात को शायद प्रारंभ से ही भली-भांति समझ चुके थे। उन्होंने ऐसी व्यवस्था की कि समुदायों की पहचान उनके धंधे से तय हो जाएँ। चाहे-अनचाहे लोग कार्य विशेष से इस प्रकार संबद्ध हो जाए तो वही उसकी पहचान हो जाती है। विकल्पहीनता की लंबी अवधि ने ऐसी मानसिकता रची कि दलित समुदाय का अधिकांश हिस्सा तिरस्कृत और लांछित जीवन को अपनी नियति मान बैठा। बीच-बीच में जब भी प्रतिरोध के स्वर फूटे, उन्हें कभी शास्त्र का भय दिखाकर कभी हिंसा का सहारा लेकर दबा दिया गया। 'आवाज़ें' कहानी को इस ऐतिहासिक प्रक्रिया के दस्तावेजीकरण के रूप में देखा जाना चाहिए।

Critical Overview / अवलोकन

भारतीय समाज में दमन की परंपरा जितनी पुरानी है, उतनी ही प्रतिरोध की परंपरा भी। प्रतिरोध की परंपरा में एक निर्णायक मोड तब आया जब डॉ. आंबेडकर की आवाज़ गूँज उठी। उन्होंने भेदभाव और गैर बराबरी पर टिकी समाज व्यवस्था के आमूल परिवर्तन का मुद्दा उठाया। उनका सूत्र था कि गुलाम को उसकी गुलामी का एहसास करा दो, वह विद्रोह कर देगा। नैमिशराय की कहानी इसी वैचारिकता से प्रेरित है। आर्थिक रूप से कमजोर होने के बावजूद दलित समुदाय में जो आत्मविश्वास दिखाई पडता है वह प्रभुत्ववर्ग की सत्ता को मन से नकारने का परिणाम है।

Recap / पुनरावृत्ति

- मेहतरों का एक टोला जो दलित समाज का प्रतिनिधि है।
- दूसरी तरफ ठाकुरों की बस्ती जो सवर्णों का प्रतिनिधि है।
- एक दिन मेहतरों का टोला ठाकुरों की गंदगी न साफ करने का निश्चय लेता है।
- मेहतर टोले के इस निर्णय से ठाकुरों के महल्ले में हलचल।
- मेहतर समाज का प्रतिरोध।
- ठाकुरों के मुहल्ले से जूठन न जाए तो मेहतरों के पेट न भरना।
- ठाकुर मुहल्ले गंदगी से भर गया।
- मेहतरों को सफाई के काम पर वापस लाने का प्रयत्न।
- मेहतरों पर पुलिस व कानून के द्वारा प्रताडना।
- दलित नेताओं की सक्रियता।
- मेहतर बस्ती को ठाकुरों द्वारा आग लगाना।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मोहनदास नैमिशराय के उपन्यास का नाम लिखिए।
2. 'हैलो कामरेड' मोहनदास नैमिशराय के किस विधा की रचना है?
3. लेखक के कहानी संग्रह का नाम क्या है?
4. मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा का नाम लिखिए।
5. लेखक के ऐतिहासिक जीवनी का नाम क्या है?
6. मेहतर समुदाय ने अचानक कौन-सा निर्णय लिया था?
7. मेहतरों के खिलाफ ठाकुरों ने किस तरह का प्रतिशेध व्यक्त किया था?
8. ठाकुर औतार सिंह किस वर्ग के प्रतिनिधि है?

Answers / उत्तर

1. मुक्तिपर्व, क्या मुझे खरीदोगे
2. नाटक
3. आवाज़ें
4. अपने अपने पिंजरे
5. वीरांगना झलकारी बाई
6. ठाकुरों के मुहल्ले की गंदगी न साफ करने का निर्णय।
7. ठाकुरों ने मेहतर बस्ती में आग लगायी।
8. सवर्ण वर्ग

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. आवाज़ें कहानी को एक ऐतिहासिक प्रक्रिया के दस्तावेजीकरण के रूप में देखा जा सकता है। अपना मत प्रकट कीजिए।
2. 'आवाज़ें' कहानी का परिचय देकर दलित समाज की यथा-स्थिति को समझाइए।
3. 'आवाज़ें' कहानी दलितों के प्रतिशोध की गाथा है, अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए।
4. कहानी में अभिव्यक्त दो समाज के भीतर जो अंतर है, उस पर अपना आशय प्रकट कीजिए।
5. दलित समाज में अभिव्यक्त जूठन प्रथा पर पर्चा लिखिए।
6. दलित समाज में अभिव्यक्त शोषणों पर आपकी राय प्रकट कीजिए।

Reference सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. दलित विमर्श, दशा और दिशा : मुकेश मिरोठा - प्रभात प्रकाशन।
2. हिन्दी के दलित साहित्य संवेदना और विमर्श : पी.एन सिंह - लोकभारती प्रकाशन।
3. आधुनिकता के आईने में दलित : सं उदयकुमार दुबे- वाणी प्रकाशन।
4. मुख्य धारा और दलित विमर्श : ओमप्रकाश वाल्मीकि - स्पेस पब्लिशिंग हाउस।
5. दलित विमर्श और हिन्दी साहित्य : सं दीपक कुमार पाण्डेय - लोकभारती प्रकाशन।

इकाई 3

‘तलाश’

- जयप्रकाश कर्दम

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- दलित लेखक जयप्रकाश कर्दम से परिचित होता है
- जयप्रकाश कर्दम की रचना संसार से अवगत होता है
- जयप्रकाश कर्दम की कहानी ‘तलाश’ से परिचित होता है
- ‘तलाश’ कहानी में अभिव्यक्त दलित समस्याओं से अवगत होता है
- ‘तलाश’ कहानी के ज़रिए दलित जीवन से अवगत होता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

डॉ. जयप्रकाश कर्दम एक हिन्दी साहित्यकार हैं। वे दलित साहित्य से जुड़े हुए हैं। कविता, कहानी और उपन्यास के अलावा दलित समाज की वस्तुगत सच्चाइयों को सामने लानेवाले अनेक निबंधों व शोध आलेखों की रचना व संपादन भी उन्होंने किया है। जयप्रकाश कर्दम जी का जन्म 5 जुलाई 1958 को उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद के इंदरगढ़ी में हुआ। उन्होंने हिन्दी साहित्य में पी.एच.डी की है। जयप्रकाश कर्दम की 50 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हैं। उन्होंने कविताएँ, कहानियाँ, लेख, उपन्यास, आलोचना, बाल साहित्य और खंड काव्य (राहुल) लिखे हैं।

उनका पहला उपन्यास ‘छप्पर’ हिन्दी दलित साहित्य का भी पहला उपन्यास माना जाता है। हिन्दी दलित साहित्य वार्षिकी का आप वर्षों से संपादन कर रहे हैं। प्रकाशित रचनाएँ : ‘गूँगा नहीं था मैं’, ‘तिनका-तिनका आग’, ‘बस्तियों से बाहर’, ‘राहुल’ (कविता-संग्रह); ‘करुणा’, ‘श्मशान का रहस्य’, ‘छप्पर’ (उपन्यास); ‘तलाश’, ‘खरोंच’ (कहानी-संग्रह); ‘जर्मनी में दलित साहित्य : अनुभव और स्मृतियाँ’ (यात्रा-संस्मरण); ‘मेरे संवाद’ (साक्षात्कार); ‘श्रीलाल शुक्ल कृत ‘राग दरबारी’ का समाजशास्त्रीय अध्ययन’, ‘इक्कीसवीं सदी में दलित आन्दोलन : साहित्य एवं समाज चिन्तन’, ‘दलित विमर्श : साहित्य के आईने में’, ‘वर्तमान दलित आन्दोलन : दशा और दिशा’, ‘हिन्दुत्व और दलित : कुछ प्रश्न कुछ विचार’, ‘डॉ. अम्बेडकर, दलित और बौद्धधर्म’, ‘समाज, संस्कृति और दलित’, ‘दलित साहित्य : सामाजिक बदलाव की पटकथा’, ‘दलित कविता : समकालीन परिदृश्य’ (आलोचना और वैचारिक पुस्तकें); ‘चमार’ (ब्रिटिश लेखक जी.डब्ल्यू. ब्रिग्स द्वारा लिखित पुस्तक ‘दि चमार्स’ का हिन्दी में अनुवाद); ‘मानवता के दूत’, ‘डॉ. अम्बेडकर की कहानी’, ‘बुद्ध की शरणागत नारियाँ’, ‘बुद्ध और उनके प्रिय शिष्य’, ‘महान बौद्ध बालक’, ‘आदिवासी देवकथा-लिंगो’, ‘हमारे वैज्ञानिक : सी.वी. रमन’ (बाल-साहित्य)।

Keywords / मुख्य बिन्दु

मनुवादी मानसिकता, संवैधानिक अधिकार, वर्णव्यवस्था, अविद्या एवं अज्ञानता

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Discussion / चर्चा

तलाश कहानी का प्रारंभ रामवीर के मकान की तलाश से शुरु होता है। रामवीर एक व्यापार कर अधिकारी है और दलित समाज से संबंधित है। नौकरी के कारण पिछले एक सप्ताह से वह गेस्ट हाउस में ठहरा हुआ है। वह एक घर की तलाश में, चूंकि गेस्ट हाउस की अपनी कुछ सीमाएँ होती हैं। वहाँ एक लंबे समय तक ठहरना संभव नहीं होता। ऐसी अवस्था में रामवीर ने तय किया कि वह एक किराए का मकान तलाश लेगा और इतमीनान से अपने लेखन कार्य पर ध्यान केन्द्रित करेगा। यहाँ से रामवीर की एक किराए के मकान की तलाश शुरु होती है। वह कई मकान देखता है कुछ मकान उसको पसंद आता है तो कुछ के मालिकों की शर्ते उसे स्वीकार्य नहीं होती। काफी मुश्किलों के बाद रामवीर को एक मकान पसंद आता है जो उसकी आवश्यकताओं के अनुकूल है। यह मकान किसी गुप्ता का है। गुप्ता भी अन्य मकान मालिकों की तरह रामवीर से उसके बारे में जानकारी लेता है। नाम क्या है, क्या करता है वगैरह वगैरह। जब उसे पता चलता है कि रामवीर एक व्यापार कर अधिकारी है तो तुरंत मकान किराए पर देने के लिए तैयार हो जाता है। और इस तरह रामवीर भी राहत की सांस लेता है।

कहानी के बीच में रामवीर को जिस भयानक समस्या का सामना करना पडता है, उससे कहानी में एक और मोड आ जाता है। रामवीर रामबती नामक एक दलित स्त्री को साफ-सफाई के लिए लगाता है। उसके काम से खुश होकर रामवीर रामबती से खाना पकाने का कार्यभार भी सौंप दिया जाता है। लेकिन इस बात का पता चलने पर गुप्ता की पत्नी हल्ला मचा देती है। उसे रामबती के घर में प्रवेश से आपत्ति है। इसका मुख्य कारण है कि रामबती दलित है। यदि वह घर की वस्तुओं को छुएगी तो संपूर्ण घर अशुद्ध हो जाएगा। इस बारे में गुप्ता की बीवी गुप्ता के कान भरती है। परिणाम स्वरूप गुप्ता रामवीर से रामबती को काम से हटाने को कहता है।

लेकिन रामवीर जो कि एक तर्कशील व्यक्ति है और वह गुप्ता को समझाने की कोशिश करता है कि सभी इंसान संविधान के सम्मुख बराबर है और जाति-पांति से कोई छोटा या बडा नहीं होता। किंतु गुप्ता के ऊपर इन बातों का कोई असर नहीं पडता है। वह शर्त रख देता है कि या तो रामबती को काम से हटा दो नहीं तो कमरा खाली कर दो। कहानी के अंत में रामवीर गुप्ता की बात न मानकर कमरा खाली करने को तैयार हो जाता है और उस दिन वह काम पर न जाने के बदले दूसरे मकान की तलाश में जुट जाता है।

'तलाश' कहानी के बारे में बात करें तो यह कहानी अन्य कहानियों की भांति सरल एवं सामान्य कहानी नजर आती है। जो इसके नायक की दिक्कतों को पाठक के सामने रखती है जो मात्र नायक का ही नहीं बल्कि पूरे दलित जाति की समस्या बनकर सामने आती है। इस कहानी में दलित होने का जो अभिशाप है उसको बहुत ही मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। पूरी कहानी में भेदभाव की दृष्टि व्याप्त हे। जाति को लेकर जो स्थिति हमारे समाज में व्याप्त है उसका कोई हल अब तक नहीं ढूंढ पाया है। अतः यह कहानी उस आजाद भारत की कहानी है जो आजाद हुए कई दशक हो चुके हैं, लेकिन आज भी लोगों की मानसिकता जातिवाद के गुलाम नज़र आती है।

इस कहानी में रामवीर बार-बार समतामूलक समाज और संविधान की बात करता है। उसके अनुसार सब बराबर है। वह कहता है कि हमारे संविधान, जिस पर हमारा देश चलता है उसकी नज़र में सब बराबर है। कोई छोटा या बडा या छूत-अछूत नहीं होता। लेकिन गुप्ता जो तथाकथित सवर्ण या उच्च वर्ग का प्रतिनिधि है कुछ और ही मूल्यों का अनुसरण करता है। जब रामवीर रामबती के संदर्भ में गुप्ता जी की बात को खारिज करता हुआ कहता है- "चूहड़ी है तो क्या हुआ? है तो वह भी इंसान ही और फिर वह साफ शुद्ध रही है।" लेकिन इस बात से गुप्ता को कोई फर्क नहीं पडता। वह कहता है "इंसान तो सब हैं साहब पर इंसान इंसान में भेद होता है। सब इंसान बराबर नहीं होते। हज़ारों सालों से समाज में यह भेद बना हुआ है। समाज के बीच समाज के अनुसार चलता है।" अतः लोगों के मन में अभी भी जाति को लेकर जो मानसिकता है उसमें कोई बदलाव नही है। शहर हमेशा आधुनिकता का प्रतीक होता है, पर जैसा कि कहानी में घटित होता है लोगों की सोच अब भी रूढिवादी है। तिरस्कार, भेदभाव, जातिवाद का जो जहर है वे सब अब भी यूँ ही समाज में

फैले हुए हैं।

Critical Overview / अवलोकन

कहानी आधुनिक भारत में दलितों के प्रति मनुवादी मानसिकता को दर्शाती है। इससे पता चलता है कि जाति की जड़ें समाज में कितनी गहरी है। पुरातनवादी सवर्ण समाज अपनी सोच बदलने को तैयार ही नहीं है। आज दलितों को संवैधानिक अधिकार प्राप्त है। फिर भी दलितों के प्रति सवर्ण समाज की मानसिकता बदलती नहीं। संविधान में दलितों को बराबरी का दर्जा दिया गया है। लेकिन समाज में कोई बराबरी नहीं मिल रही है। दलित समाज सदियों से वर्णव्यवस्था के शोषण का शिकार है। उसे मानवीय जीवन जीने से वंचित रखा गया। हिन्दू समाज के धर्म एवं शास्त्रों की आड़ में दलित समाज पर जुल्म और अत्याचार किये जाते रहे। उनकी आवाज को खामोश कर दिया गया। उन्हें विद्या अर्जित करने के अधिकार से वंचित रखा गया। उन्हें भय यह था कि विद्या अर्जित करने से उनकी शोषणकारी नीति का भेद खुल जाएगा। अविद्या एवं अज्ञानता के तहत दलितों का शोषण होता रहा है।

Recap / पुनरावृत्ति

- किराए के मकान की तलाश में नायक रामवीर सिंह
- शहरों में भी जातिवाद चल रहा है
- छुआछूत का व्यवहार दलितों के साथ आज भी कायम
- कई मकान देखने पर भी कुछ पसंद न होना और अंत में एक मकान इच्छानुसार मिलना
- घर ढूंढने पर अनेक शर्तों से गुज़रना।
- हर जगह नाम और जाति के बारे में पूछताछ
- अंत में गुप्ता नाम के आदमी के मकान को लेना
- उच्च अधिकारी होने पर गुप्ता द्वारा रामवीर के साथ अच्छा व्यवहार
- रामवीर का रामबती नामक दलित स्त्री को घर में काम के लिए रखना
- इस बात पर गुप्ता और उनकी पत्नी का एतराज
- गुप्ता को समझाने की कोशिश
- अंत में कामवाली को न छोडकर घर छोडा रामवीर सिंह
- एक नए मकान की तलाश में दुबारा रामवीर

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. तलाश कहानी का लेखक कौन है?
2. तलाश कहानी का नायक कौन है?
3. रामवीर सिंह किस चीज़ की तलाश में है?
4. जयप्रकाश कर्दम के पहले उपन्यास का नाम क्या है?
5. लेखक के किन्हीं दो कविता-संग्रहों का नाम लिखिए।
6. अनुभव और स्मृतियाँ किस प्रकार की रचना है?
7. जयप्रकाश कर्दम के साक्षात्कार का नाम लिखिए।
8. लेखक की ब्रिटीश भाषा से अनूदित रचना का नाम क्या है?

Answers / उत्तर

1. जयप्रकाश कर्दम
2. रामवीर सिंह
3. रहने केलिए मकान की तलाश
4. छप्पर
5. 'गूँगा नहीं था मैं', 'तिनका-तिनका आग', 'बस्तियों से बाहर', 'राहुल'
6. यात्रा संस्मरण
7. मेरा संवाद
8. चमार

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. दलित लेखक जयप्रकाश कर्दम पर पर्चा लिखिए।
2. जयप्रकाश कर्दम की रचना संसार का परिचय दीजिए।
3. 'तलाश' कहानी में अभिव्यक्त दलित जीवन पर आलेख तैयार कीजिए।
4. 'तलाश' कहानी में अभिव्यक्त दलित समस्याओं पर प्रकाश डालिए।
5. 'तलाश' कहानी में चित्रित विषय पर अपना मत प्रकट कीजिए।

Reference सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. दलित विमर्श, दशा और दिशा : मुकेश मिरोठा - प्रभात प्रकाशन।
2. हिन्दी के दलित साहित्य संवेदना और विमर्श : पी.एन सिंह - लोकभारती प्रकाशन।
3. आधुनिकता के आईने में दलित : सं उदयकुमार दुबे - वाणी प्रकाशन।
4. मुख्य धारा और दलित विमर्श : ओमप्रकाश वाल्मीकि - स्पेस पब्लिशिंग हाउस।
5. दलित विमर्श और हिन्दी साहित्य : सं दीपक कुमार पाण्डेय - लोकभारती प्रकाशन।

इकाई 4

'दलित' - ब्राह्मण

- सत्य प्रकाश

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- दलित लेखक सत्य प्रकाश से परिचित होता है
- दलित कहानी 'दलित ब्राह्मण' से परिचित होता है
- 'दलित ब्राह्मण' कहानी की कथावस्तु से अवगत होता है
- कहानी में चित्रित दलित समस्याओं से अवगत होता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

'दलित ब्राह्मण' कहानी दलित लेखक सत्य प्रकाश द्वारा रचित है। सत्य प्रकाश को भारतीय दलित साहित्य अकादमी द्वारा अंबेडकर फेलोशिप सम्मान से सम्मानित किया गया है। यह कहानी तीन मित्र विजयरंजन कुरील, शिवदत्त और गौर शंकर माहेश्वरी की है जो भद्रजन सरकार में अधिकारी हैं। यह कहानी जातिवाद की समस्या पर लिखी गयी है। शिवदत्त धर्म के पैमाने से बौद्ध है। विजयरंजन और गौरीशंकर दलित हैं। लेकिन उन तीनों की दोस्ती में धर्म बाधा नहीं है। शिवदत्त अपना सामाजिक दायित्व सच्चाई और न्याय से करता है। कुरील केवल समाज और दुनिया के नाम पर अपना गुस्सा दिखाता तो है लेकिन स्वयं अपना दायित्व सही ढंग से नहीं निभाता। इसी के आधार पर पूरी कहानी लिखी गई है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

छुआछूत, जातीय घृणा, सामाजिक दायित्व, भ्रष्टाचार

Discussion / चर्चा

'दलित ब्राह्मण' कहानी का परिवेश कानपुर शहर है। वहाँ तीन मित्र विजयरंजन कुरील, गौरीशंकर माहेश्वरी और शिवदत्त भद्रजन भारत सरकार के उच्चाधिकारी हैं। पूरा वातावरण धर्म और जात-पात से भरपूर है। कुरील का मानना है कि केवल ब्राह्मण या किसी और सवर्ण जाति के लोग दलितों के साथ अन्याय करते हैं। लेकिन वह स्वयं अपनी जिम्मेदारी पूरी तरह नहीं निभा पाता है। पर कहानी का वातावरण ऐसा दिखाया गया है कि शोषण कोई भी करें दोष केवल ब्राह्मणों या दूसरे सवर्णों पर लगाया जाता है। कहानी के प्रारंभ में कुरील साहब गुस्से में समाज को कोसते हुए कहते हैं कि समाज ने मुझे क्या दिया? मैं समाज की परवाह क्यों करूं? शिवदत्त उन्हें समझाते हुए कहता है कि आज हम, आप जिस पद पर हैं हमें वहाँ पहुंचाने में समाज ने भी त्याग और अपना योगदान दिया है। समाज ने इसमें अपनी अहम भूमिका निभाई है। तो हमें भी अपने सामाजिक दायित्वों को कभी नहीं भूलना चाहिए। समाज के हितों की रक्षा के प्रति कटिबद्ध होना चाहिए।

गौरीशंकर माहेश्वरी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि सब मिला कर देखें तो आज जाति-पात, धर्म आदि ये चीजें

और बढ़ रही हैं। जाति, वर्ग, धर्म, संप्रदाय के नाम पर वैमनस्य बढ़ रहा है। फर्क बस इतना है पहले जातीय घृणा लोगों में बाहर थी अब अंदर है। खाली छुआछूत खत्म होने का मतलब यह थोड़े ही है कि जात पात या जातीय घृणा खत्म हो गई। तीनों जब दफ्तर से छूटते तो घंटों बैठकर बातें करते गप्प-शप्प करते घर जाते हैं। एक दिन कुरील को दफ्तर आने में लेट हो जाता है माहेश्वरी और शिवदत्त उसका इंतजार करते हैं। कुरील जब आए तो दोनों ने पूछा कहाँ रह गए थे इतनी देर कैसे हो गई? बार-बार पूछने पर कुरील कहता है कि "मैं आपकी तरह दब्बू अधिकारी नहीं हूँ। मैं आज तक एक भी डी.पी.सी की बैठक में नहीं गया। मैं तो साफ कह देता हूँ। फाइल घर लाओ। जिसे जरूरत होती है सारी फाइलें तैयार करके घर लाता है। घंटों बैठता हूँ, तब जाकर हस्ताक्षर करता हूँ। खुशामद भी करते हैं, चढ़ावा भी चढ़ाते हैं। वह भी खुश, हम भी खुश।"

दोनों मित्र कुरील की और आश्चर्य से देखते हैं कि जो व्यक्ति कुछ दिन पहले समाज को कोस रहा था कि समाज ने उसे क्या दिया। आज वही समाज की व्यवस्था को भ्रष्ट कर रहा है। वैसे अब तक तो यह सारे दोष ब्राह्मणों या दूसरे सवर्णों पर लगाये जाते थे। आमतौर पर अब तक ब्राह्मणों पर यह आरोप लगता रहा है कि उन्होंने दलित समाज के साथ अन्याय किया है। माहेश्वरी, कुरील को समझाते हुए कहते हैं कि सही- गलत तो विवाद का विषय हो सकता है। शिवदत्त, कुरील साहब को समझाते हुए कहते हैं कि मुझे संतोष है कि मैंने किसी के साथ कोई अन्याय नहीं किया है और न होने दिया। एक-दूसरे को कहने-सुनाने और समझाने के बाद तीनों एक दूसरे को परस्पर नमस्कार करते हुए अपने-अपने घरों की ओर चल देते हैं।

घटना के 6 महीने बाद एक दिन कुरील साहब समय पर नहीं पहुंचे, तो शिवदत्त और माहेश्वरी साहब चिंतित हुए और बोले चलिए देख आते हैं। तो कुरील साहब रास्ते में ही मिल जाते हैं। वे बताते हैं कि उनके साथ बड़ा अन्याय हुआ है।

दरअसल बात यह थी कि प्रमोशन की लिस्ट में कुरील साहब का नाम नहीं आया। उनसे जूनियर को प्रमोशन मिला भी है। कुरील साहब कहते हैं धांधलेबाजी चल रही है। वे गुस्से में आकर कहते हैं हेडक्वार्टर की डी.पी.सी में भी एस.सी. / एस.टी. का मेंबर भी होगा ही। जरूर उसी ने फाइल बिना स्टडी किए हस्ताक्षर कर दिया होगा। वह भड़कते हुए कहता है कि एक बार बस पता लगा लूं फिर गद्दार समाजद्रोही को छोडूंगा नहीं। माहेश्वरी कहते हैं मैं आपको यही बता देता हूँ इसमें हेड क्वार्टर से पता करने की क्या बात है? कुरील साहब ने जिज्ञासा प्रकट की और पूछा कौन हो सकता है।

माहेश्वरी साहब के मुंह से यंत्रवत निकल गया, "और कौन होगा कुरील साहब, होगा कोई दलित ब्राह्मण।" यह सुनते ही कुरील साहब का चेहरा पीला पड़ जाता है। काटो तो खून नहीं। शिवदत्त जी कुरील साहब के कंधे पर हाथ रखते हुए कहते हैं, "चलो कुरील साहब, घर चलो। निकालना ही होगा कोई ना कोई तरीका इन दलित ब्राह्मणों से निपटने का।" दलित होकर भी कुरील साहब दलितों के विषय में चुप थे। बिना सोचे समझे वह हस्ताक्षर करता था और आखिर उन्हें अपने कर्म पर धोखा मिल गया।

Critical Overview / अवलोकन

'दलित ब्राह्मण' कहानी में लेखक ने जात-पात के नाम पर होनेवाली लापरवाही व भ्रष्टाचार का चित्रण किया है। कहानी में तीन मित्र, शिवदत्त, गौरीशंकर माहेश्वरी और विजय रंजन कुरील है। शिवदत्त धर्म से बौद्ध और शेष दोनों दलित हैं। माहेश्वरी और शिवदत्त समाज के प्रति अपने दायित्व को पूरी ईमानदारी के साथ निभाते रहे हैं। किंतु कुरील साहब एक तरफ तो समाज को कोसते हैं कि समाज ने उन्हें क्या दिया। वह खुद समाज के प्रति अपना दायित्व भूल जाता है। उसका फल उन्हें भुगतना पडता है। उनके जैसे ही काम करनेवाला कोई भ्रष्ट पदाधिकारी अपनी लापरवाही से कुरील का नुक्सान कर देता है। धन की लालच में किये गये कार्य का खामियाजा खुद भुगतना पडा। कुरील के माध्यम से इस कथा में यही बताने का प्रयास किया गया है।

Recap / पुनरावृत्ति

- हर दिन पार्क में एक जुड होनेवाले तीन दोस्त
- तीनों जाति से ऊपर अपने रिश्ते को स्थान देते हैं
- तीनों भद्रजन भारत सरकार में उच्चाधिकारी थे
- कुरील साहब बिना सोचे समझे फाइल पर हस्ताक्षर करते थे
- रिश्वत लेता कुरील साहब
- इस के खिलाफ हैं बाकी दोनों
- रिश्वत न लेने की बात को न मानते हैं कुरील साहब
- अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मारता है कुरील साहब
- दोनों दोस्त मिलकर कुरील साहब को 'दलित ब्राह्मण' नाम देते हैं

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'दलित ब्राह्मण' कहानी का लेखक कौन है?
2. कहानी के तीन नायकों का नाम क्या-क्या हैं ?
3. कहानी के नायक कहाँ काम करते थे?
4. रिश्वत लेकर हस्ताक्षर करने का कार्य किसने किया था?
5. कुरील साहब की परेशानी का कारण क्या था?

Answers / उत्तर

1. सत्य प्रकाश
2. शिवदत्त, गौरी शंकर माहेश्वरी और विजय रंजन कुरील
3. तीनों भद्रजन भारत सरकार में उच्चाधिकारी थे।
4. विजय रंजन कुरील
5. प्रमोशन के लिस्ट में कुरील साहब का नाम नहीं था।

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. कहानी की मूल समस्या पर प्रकाश डालिए।
2. प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने व्यक्ति के सामाजिक दायित्वों के बारे में संदेश दिया है। अपनी राय व्यक्त कीजिए।
3. कहानी में 'दलित ब्राह्मण' का नाम कहाँ तक उचित है?
4. कुरील साहब को 'दलित ब्राह्मण' नाम क्यों दिया गया था?

Reference सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. दलित विमर्श, दशा और दिशा : मुकेश मिरोठा - प्रभात प्रकाशन।
2. हिन्दी के दलित साहित्य संवेदना और विमर्श : पी.एन सिंह - लोकभारती प्रकाशन।
3. आधुनिकता के आईने में दलित : सं उदयकुमार दुबे - वाणी प्रकाशन।
4. मुख्य धारा और दलित विमर्श : ओमप्रकाश वाल्मीकि - स्पेस पब्लिशिंग हाउस।
5. दलित विमर्श और हिन्दी साहित्य : सं दीपक कुमार पाण्डेय - लोकभारती प्रकाशन।

BLOCK - 05

दलित साहित्य : कविता

SGOU

इकाई 1

सुनोब्राह्मण - कविता

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- दलित कविता के बारे में समझता है
- प्रमुख दलित कवियों के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- दलित कवि मलखान सिंह की जानकारी प्राप्त करता है
- मलखान सिंह की कविता 'सुनो ब्राह्मण' के बारे में समझता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

समकालीन दलित कविता में दलित चेतना पहले से और ज्यादा प्रखर होती हुई दिखायी पड़ती है। जाति, सत्ता, इतिहास, संस्कृति, भाषा आदि में निहित शोषण का बारीक पड़ताल आज की दलित कविता करती है। चेतना की प्रौढ़ता के साथ दलित कविता का आत्मविश्वास भी बढ़ा है।

दलित कविता में आरंभ से ही हिन्दू धर्म-संस्कृति, हिन्दू धर्मग्रंथों और ईश्वर की आलोचना मौजूद है, क्योंकि दलितों के शोषण और उनकी गुलामी की जड़ें इन्हीं में मौजूद हैं। जिसके खिलाफ प्रतिरोध भी दलित कविता की खासियत है। हज़ारों साल के लम्बे इतिहास को परखें तो मालूम होगा कि दलित सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से तिरस्कृत हैं। जिसका प्रमुख कारण ब्राह्मणवादी विचारधारा है। दलित कविता में इसके खिलाफ प्रतिरोध है। दलित कविता में व्यक्ति की टकराहट परम्परावादी और यथार्थवादी समाज से होती है। इस टकराहट के बाद वह आत्मसंघर्ष और आत्मविश्वास की आधारभूमि पर खड़े होकर परम्परावादी इतिहास को नकारता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

दलित कविता, मलखानसिंह, सुनोब्राह्मण, श्रमसंस्कृति

Discussion / चर्चा

मनुष्य समाज में जबसे स्वामित्व, सत्ता का उदय हुआ तबसे सत्ता और उसकी संरक्षक धर्मसत्ता (अर्थात् ब्राह्मण और शासक) अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए अनेक तत्वों, प्रथाओं, रूढ़ियों, प्रतीकों और व्यवस्थाओं का निर्माण करते रहे हैं और जन्मजात विषमता दृढ़ होती गयी है। जो लोग अस्पृश्य (अछूत) माने गये हैं जिन्हें शूद्र-अस्पृश्य (शूद्रातिशूद्र) कहा गया है। मनुष्य के रूप में उनके अधिकारों को नकारा गया है। उनको अवसर, साधन और शिक्षा से वंचित रखा गया है। मलखान सिंह की 'सुनो ब्राह्मण' कविता इस हाशिएकृत समाज की विसंगतियों को तीखे स्वर में अभिव्यक्त करती है। पौराणिक मिथकों का नव-संस्कार भी इस कविता की पहचान है।

दलित कविता- सामान्य परिचय

हिन्दी दलित कविता मध्यकाल के निर्गुण संत कवि रैदास और कबीर से होती हुई जिस तरह 'हीरा डोम' और 'अछूतानन्द' तक आयी है। इस बीच लगभग 500 वर्षों का अन्तराल है। निश्चित रूप से इस बीच भी कुछ कवि हुए होंगे जिन्होंने वर्चस्ववादी हिन्दू धर्म और संस्कृति के विरुद्ध आवाज उठायी होगी। सन् 1914 के बाद भी दलित कविता कभी लोकगीत के रूप में तो कभी रैदास और कभी अम्बेडकर के जीवन और विचारों के काव्यात्मक आख्यानों के रूप में निरन्तर विकसित होती रही। लेकिन साठ के दशक में मराठी के दलित कवियों ने अपनी विद्रोही चेतना से सम्पूर्ण मराठी साहित्य की नींव हिला दी। जिसके कारण उसे देश में ही नहीं विदेश में भी मान्यता प्राप्त हुई। उसी से प्रेरणा लेकर हिन्दी के कवियों ने भी दलित कविता का सृजन किया। जो अब प्रतिष्ठित होकर स्थापित हो गई है।

स्वतन्त्रता पूर्व काल में जिन कवियों की रचनाएं प्रकाशित हुईं, उनमें 'हीरा डोम' की कविता 'अछूत की शिकायत' सरस्वती मासिक के सितम्बर 1914 अंक में प्रकाशित हुई थी। इसके सम्बन्ध में श्रीमती रमणिका गुप्ता की टिप्पणी है कि सितम्बर, 1914 की सरस्वती में पटना के हीराडोम की कविता 'अछूत की शिकायत' प्रकाशित हुई। यह भोजपुरी में है और सम्भवतः उस भाषा में लिखी हुई यह एक मात्र कविता है, जो द्विवेदी जी की सरस्वती में प्रकाशित हुई थी। श्री माता प्रसाद ने हीराडोम को 'वाराणसी' का निवासी बताया है। जब कि रमणिका गुप्ता उन्हें पटना का निवासी लिखती हैं। वस्तुतः श्री हीरा डोम के जीवन और साहित्य पर अभी शोध होना शेष है। क्योंकि सम्भव है, उन्होंने कुछ और भी कविताएँ लिखी हों। उनके जन्म और जन्म स्थान का भी पता लगाया जाना चाहिए।

इस काल के दूसरे सबसे महत्त्वपूर्ण कवि श्री अछूतानन्द हरिहर (6 मई 1879. 20 जुलाई 1933) हैं। जिन्होंने दलित जागरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनकी एक काव्य कृति 'आदिवंश का डंका' का उल्लेख मिलता है। इसके संम्बन्ध में श्री राजपाल सिंह "राज" ने लिखा है कि 'आदि वंश का डंका' नामक लघु काव्यसंग्रह गीत, ग़ज़ल, कव्वाली, भजन, रसिया और जयमंगल गान आदि लोक छन्दों की एक अनूठी कृति है। लोकप्रियता के कारण यह पुस्तक सन् 1983 तक ग्यारह बार प्रकाशित हो चुकी है।

श्री बिहारी लाल 'हरित' (13 दिसम्बर 1910 से 26 जून 1999) सचमुन अछूतानन्द 'हरिहर' की परम्परा के एक महत्वपूर्ण दलित कवि हैं। विहारी लाल हरित जी गुरु शिष्य परम्परा में विश्वास करते थे। उनके शिष्यों में श्री नत्थूराम ताम्चे, श्री लक्ष्मीनारायण सुधाकर, श्री राजपाल सिंह राज, श्री यादकरण याद, श्री कालीचरण गौतम, श्री कमलेश कुसुम वियोगी, श्री जसराम हरनौटिया, श्री लालचन्द्र आदि है। उनकी मृत्यु पर अपनी श्रद्धांजलि में श्योराज सिंह बेचैन ने लिखा है कि 'दलित वर्ग में जन्मे कवि बिहार लाल 'हरित' अपनी 90 वर्ष की आयु पूरी करके 26 जून 1999 की रात को हमारे बीच से शारीरिक रूप से चले गये। कवि हरित का जन्म 13 जनवरी 1910 (लगता है यह प्रमादवश गलत छप गया, उनकी जन्म तिथि-13 जनवरी 1913 है) को चन्द्रावली गाँव (शाहदरा) में हुआ था। अपनी रचना श्री लता के दम पर इन्होंने अपनी देश व्यापी पहचान बना ली थी।' हरित को दलित साहित्य अकादमी ने 1985 में राष्ट्रीय अम्बेडकर पुरस्कार से सम्मानित किया। मथुरा की एक संस्था ने उन्हें साहित्यालंकार से उपाचित किया। एशिया रिफरेंस बुक में उनका उल्लेख आया है। इसके अतिरिक्त उन्हें नेहरू स्मृति पुरस्कार, हिन्दी अकादमी सम्मान इत्यादि मिले।

श्री बाबूलाल 'सुमन' ने 'अम्बेडकर' (महाकाव्य) की रचना की है। इस काव्य के सम्बंध में श्री माताप्रसाद ने लिखा है कि- श्री बाबू लाल सुमन कृत अम्बेडकर महाकाव्य ग्यारह सर्गो में लिखा गया एक सुन्दर ललित एवं सुरुचिपूर्ण ग्रन्थ है। हर सर्ग में कुछ उपसर्ग विभिन्न स्थानों या घटनाओं को लेकर है। हिन्दी साहित्य में इसकी गणना उच्चकोटि के ग्रंथों में की जाती है।

श्री माताप्रसाद, हिन्दी के वरिष्ठ कवियों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। हालाँकि इनका रचना काल 1950 के पूर्व का ही है। लेकिन इन्हें ख्याति 1950 के बाद ही मिली। इनकी अब तक कई काव्यकृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। अपने 'एकलव्य' खण्डकाव्य में वर्णव्यवस्था पर चोट करते हुए वे कहते हैं- 'श्रम हर क्षण करते रहते, पाते भरपेट नहीं भोजन। वो काम नहीं कुछ भी करते, उनको सुख के सब आयोजन। श्री राजवैद्य माताप्रसाद सागर भी इस काल के महत्त्वपूर्ण कवियों में रहे है। उन्होंने भी लोकजागृति के लिए आल्हा की तर्ज पर 'भीमचरित मानस' की रचना की जो, बहुत लोकप्रिय भी हुआ। इसके अतिरिक्त कई कविताएँ भी हैं।

इन कवियों के अतिरिक्त चन्द्रिका प्रसाद 'जिज्ञासु', डॉ. गयाप्रसाद प्रशांत, अवधेश बिहारी, आनन्द प्रकाश, गुरुप्रसाद मदन, पन्नालाल प्रेमी, कवि गुरु कंवरलाल खद्योत, कालीचरण गौतम, बुद्धसंघ प्रेमी, अंनेगदास, शिवचरण, परमानन्द जडिया, डॉ. रविन्द्र भ्रमर, श्यामलाल शमी, धर्मजीत सरल, गोकरनराम करुणाकर, रमाधीन सजग, राजपाल सिंह राज, डॉ. दयानंद बटोही, बाल गंगाधर 'बागी', डॉ. प्रेमशंकर, मोहनदास नेमिशराय, मलखान सिंह, ओमप्रकाश वाल्मीकि, कंवल भारती, डॉ. सुशीला टाकभौरे, डॉ. एन सिंह डॉ. सीबी. भारती, डॉ. जयप्रकाश कर्दम, असंगघोष आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

1.2.1 सुनो ब्राह्मण - मलखान सिंह

मलखान सिंह

हिन्दी दलित कवियों में मलखान सिंह का नाम सर्वोपरि है। इनका जन्म 30 फरवरी 1948 को ग्राम बसई काजी, जनपद अलीगढ़ (उ.प्र.) में हुआ। उच्च शिक्षा अलीगढ़ और आगरा से हुई।

हिन्दी आउटलुक के सन् 2012 के साहित्य सर्वेक्षण में दलित साहित्य के सबसे लोकप्रिय कवि माने गए मलखान सिंह अपने पहले कविता संग्रह 'सुनो ब्राह्मण' के साथ 1996 में चर्चा में आए और साहितय जगत में छा गए। 'ज्वालामुखी के मुहाने' उनका दूसरा प्रकाशित काव्य-संग्रह है। 'लहर', 'उन्नयन', 'परिवेश' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं एवं 'अमर उजाला' दैनिक में उनकी कविताएँ प्रकाशित एवं चर्चित होती रही हैं।

क्रांतिकारी और विद्रोही कवि के रूप में वे प्रसिद्ध हैं। विद्यार्थी जीवन में समाजवादी युवक सभा से सक्रिय रूप से जुड़े रहे, डॉ. कुसुम वियोगी के अनुसार 'भाई मलखान सिंह मेरे शहर हाथरस के नजदीकी गांव के रहने वाले थे जो छात्र जीवन से ही मुखर प्रखर कुशल वक्ता थे। मलखान सिंह छात्र जीवन से ही कम्युनिस्ट विचारधारा के थे। विदित हो कि हाथरस व्यापार का एक बड़ा केंद्र था जहां अनेकों कारखाने मिले थे। जिनमें शहर का आसपास के गांवों के दलित मजदूरी व पल्लेदारी का काम करने हाथरस शहर के मिलों में आते थे। मिलों में जब कभी हड़ताल होती तो वह भाषणबाजी करते और कविताएँ सुनाते और हाथ में लिए छोटे-छोटे लाल रंग के पम्फलेट साथी छात्रों व मजदूरों के बीच बांटते। 'मजदूर दिवस के उपलक्ष्य में दो बार तिहाड़ जेल गए। 1979 से 2008 तक बेसिक माध्यमिक शिक्षा विभाग में विभिन्न पदों पर कार्य किया।

मलखान सिंह दलित जीवन के यथार्थ को बिना किसी हिचकिचाहट पेश कर देते हैं। वे बिना किसी लाग-लपेट सीधा-सीधा लिख देते हैं। समाज की विद्रूपताओं को चित्रित करने में उनकी अनुभवजन्य टीस पाठक को झकझोर कर रख देती है। शोषण,अत्याचार, अन्याय, जैसे सामाजिक विसंगतियों की बेधक अभिव्यक्ती उनकी कविता में हुई है। "मैं नहीं जानता कि मैं कविता क्यों लिखता हूँ? हाँ, इतना अवश्य जानता हूँ कि जाति-पाँति ऊँच-नीच, छूतछात, पाखंड, शोषण और अत्याचार का शिकार जब मैं स्वयं होता हूँ या किसी सहोदर को होते देखता हूँ, तो मेरे अन्दर कुछ उबलने लगता है, कुछ घुमड़ने लगता है, जिसे मैं शब्दों में पकड़ने की कोशिश करता हूँ। लेकिन पूर्ण को कभी कभी पकड़ नहीं पाता। पूर्ण को एक साथ न पकड़ पाने की यह छटपटाहट ही अंश के रूप में मेरी कविताओं को जन्म देती चली है।"

मलखान सिंह का निधन 9 अगस्त, 2019 को आकस्मिक हो गया। वह लंबे समय से कैंसर जैसी घातक बीमारी से ग्रस्त थे। बावजूद इसके उनकी साहित्य और समाज के प्रति सक्रियता अंतिम समय तक बनी हुई थी।

सुनो ब्राह्मण

एक
हमारी दासता का सफ़र
तुम्हारे जन्म से शुरू होता है
और इसका अंत भी
तुम्हारे अंत के साथ होगा।

दो
सुनो ब्राह्मण
हमारे पसीने से
बू आती है तुम्हें।

फिर ऐसा करो
एक दिन
अपनी जनानी को
हमारी जनानी के साथ
मैला कमाने भेजो।

तुम! मेरे साथ आओ
चमड़ा पकाएँगे
दोनों मिल बैठ कर।

मेरे बेटे के साथ
अपने बेटे को भेजो
दिहाड़ी की खोज में।

और अपनी बिटिया को
हमारी बिटिया के साथ
भेजो कटाई करने
मुखिया के खेत में।

शाम को थक कर
पसर जाओ धरती पर
सूँघो ख़ुद को
बेटे को
बेटी को
तभी जान पाओगे तुम
जीवन की गंध को,
बलवती होती है जो
देह की गंध से।

तीन
हम जानते हैं
हमारा सब कुछ
भौंड़ा लगता है तुम्हें।

हमारी बग़ल में खड़ा होने पर
क़द घटा है तुम्हारा
और बराबर खड़ा देख
भवें तन जाती हैं।

सुनो भूदेव
तुम्हारा क़द
उसी दिन घट गया था
जिस दिन कि तुमने
न्याय के नाम पर
जीवन को चौखटों में कस
कसाई बाड़ा बना दिया था।
और ख़ुद को शीर्ष पर
स्थापित करने हेतु
ताले ठुकवा दिए थे
चौमंज़िला जीने से।
वहीं बीच आँगन में
स्वर्ग के—नरक के
ऊँच के—नीच के
छूत के—अछूत के
भूत के भभूत के
मंत्र के तंत्र के
बेपेंदी के ब्रह्म के
कुतिया, आत्मा, प्रारब्ध
और गुण-धर्म के
सियासी प्रपंच गढ़
रेवड़ बना दिया था
पूरे के पूरे देश को।

तुम अक्सर कहते हो कि
आत्मा कुआँ है
जुड़ी है जो मूल-सी
फिर निश्चय ही हमारी घृणा
चुभती होगी तुम्हें
पके हुए शूल-सी।
यदि नहीं—
तुम सुनो वशिष्ठ!
द्रोणाचार्य तुम भी सुनो!
हम तुमसे घृणा करते हैं।
तुम्हारे अतीत
तुम्हारी आस्थाओं पर थूकते हैं।

मत भूलो कि अब
मेहनतकश कंधे
तुम्हारा बोझ ढोने को
तैयार नहीं हैं
बिल्कुल तैयार नहीं हैं।

देखो!
बंद किले से बाहर
झाँक कर तो देखो
बरफ़ पिघल रही है।
बछेड़े मार रहे हैं फ़ुर्री
बैल धूप चबा रहे हैं
और एकलव्य
पुराने जंग लगे तीरों को
आग में तपा रहा है।

सारांश

'सुनो ब्राह्मण' मलखान सिंह का 1996 में छपा कविता संग्रह है। इसमें कुल 15 कविताएँ हैं। 'सुनो ब्राह्मण' कविता में उनके चिंतन तथा आन्तरिक पीड़ा को क्रांति चेतना के साथ उद्भासित किया हुआ है। साथ ही कवि ने ब्राह्मणवादी विचारधारा का खंडन कर गाँव के दलित-जीवन के यथार्थ को व्यक्त किया है। धर्म, परंपरा, संस्कृति के नाम पर हो रहे अन्याय एवं शोषण के प्रति प्रतिरोध भी इसमें मौजूद है।

स्वतन्त्रता के बाद भी भारत में जाति-व्यवस्था सामाजिक सच्चाई है। यानी आज भी सवर्ण और अवर्ण के बीच बड़ी दीवारें मौजूद हैं। दलित उच्चवर्ग द्वारा नियन्त्रित एवं प्रताड़ित है। दलित की समस्याओं का मूल कारण मुख्यतः ब्राह्मणवादी सामन्ती व्यवस्था है। जिसके तहत रूपायित जाति-प्रथा वास्तव में इन वर्ग को सामाजिक समानता, आर्थिक समता और धार्मिक स्वतन्त्रता से वंचित रखने का षड़यत्रं है। इस व्यवस्था के कारण हमारे समाज में इतना वैषम्य रहा है कि मानवीयता की सरे आम धज्जियाँ उड़ाई जाती रही है। यानी वर्ण और जाति पर आधारित व्यवस्था ने बहुसंख्यक समाज को इनसान ही नहीं माना उनके साथ पशुओं से भी बदतर व्यवहार किया। इस जातिव्यवस्था की सवर्ण नीती ने दलितों की मेहनत का फल भोगते हुए ही उन्हें विवेचन एवं पददलन का शिकार बनाया। यानी सामाजिक व्यवस्था में दलित का अस्तित्व मात्र मेहनत करने के लिए रह गए हैं। यानी उनका श्रम का शोषण कर उच्चवर्ग समृद्धि पा रहे हैं। मलखान सिंह की 'सुनो ब्राह्मण' कविता इस सामाजिक विसंगतियों पर प्रश्नचिह्न डालती हैं।

सदियों से दलित ब्राह्मणवादी कुप्रथाओं, प्रतारणाओं से प्रताड़ित हैं। ब्राह्मणवाद से उत्पन्न सामाजिक विसंगतियों ने दलित में निराशा, कुण्ठा, गहन नैराश्य पैदा किया है। इन सबका अंकन 'सुनो ब्राह्मण' कविता में मौजूद है। ब्राह्मणवाद शोषण पर आधारित है, इसलिए कवि इसका अंत चाहते हैं। कवि भलीभाँति समझते हैं कि शोषक वर्ग ताकतवार हैं इसलिए यह काम आसान भी नहीं है।

'सुनो ब्राह्मण' कविता में कवि कहता है कि उच्चवर्ग को आराम एवं सुन्दर जिन्दगी मिलने के लिए मेहनतकश वर्ग स्वयं मैले हो रहे हैं। जिस आधार पर उच्चवर्ग उन्हें मैले मानते हैं वे वास्तव में उनका मेहनत है, उनकी श्रम संस्कृति है। इस सच्चाई को व्यक्त करने के साथ ही कवि उच्चवर्ग को ललकार कर कहते हैं कि तुम अपनी जननी को हमारे साथ मैला कमाने भेजो, और तुम स्वयं हमारे साथ चमड़ा पकाएँ, तुम्हारी बेटी को मुखिया के खेत में कटाई केलिए भेजो, बेटे को दिहाडी की खोज में। यहाँ कविता दलित के श्रम के महत्व को स्पष्ट करने के साथ ही उच्चवर्ग की अकर्मण्यता पर भी प्रहार करती है। साथ ही मेहनत पर गर्व करनेवाली दलित की छवि भी हम देख सकते हैं।

शाम को थक कर
पसर जाओ धरती पर
सूँघो ख़ुद को
बेटे को
बेटी को
तभी जान पाओगे तुम
जीवन की गंध को,
बलवती होती है जो
देह की गंध से।

सुनो ब्राह्मण कविता में कवि परंपरागत मिथकों के रहस्यों को भी उदघाटित करके एक नया अर्थ प्रदान कर रहा है। परम्परागत मान्यताओं के आधार पर एकलव्य, शम्बूक आदि निचले पायदान के लोग हैं। कवि एकलव्य के प्रसंग की व्याख्या नई दृष्टि से लेकर समाज में प्रतिष्ठित मान्यताओं का पुनर्व्याख्या करते हैं। अब तक धर्म के नाम पर परोसे गये नीतियों को शोषण कहकर ठुकराते हैं। ब्राह्मणवादी व्यवस्था के कुटिलबुद्धि पर कवि इन पक्तियों से वार करता है - 'वशिष्ठ और द्रोण दोनों को फटकारते हुए कवि लिखते हैं कि - सुनो वशिष्ठ ! / द्रोणाचार्य तुम भी सुनो ! हम तुमसे घृणा करते हैं / अतीत / तुम्हारी आस्थाओं पर थूकते हैं।'

वस्तुतः कवि ने इस कविता के माध्यम से ब्राह्मणवाद को खत्म करने का आह्वान किया है। साथ ही कवि स्पष्ट करना चाहता है कि दलित को आज अपने साथ हो रहे अन्याय एवं शोषण की पहचान है। इसलिए उच्चवर्ग को ढोने से वे पूर्णतः असहमति प्रकट कर रहे हैं। श्रम शोषण की पहचान एवं असहमति इन पक्तियों में दृष्टव्य हैं-

'मत भूलो कि अब
मेहनतकश कंधे
तुम्हारा बोझ ढोने को
तैयार नहीं हैं
बिल्कुल तैयार नहीं हैं।'

Critical Overview / अवलोकन

सुनोब्राह्मण कविता ब्राह्मणवादी विचारधारा का खंडन करती है। इस व्यवस्था में अधिकांश उच्चवर्ग निम्न वर्ग को हीन मानता है। दलित द्वारा किए जानेवाले काम को घृणित दृष्टि से देखते हैं। किन्तु उसका फल भोगनेवाला स्वयं उच्चवर्ग ही है। कविता उच्च वर्ग के इस मनोभाव एवं शोषण पर प्रहार करती है। साथ ही उच्चवर्ग को अपने श्रम की श्रेणी में शामिल होने के लिए ललकरते हैं। यहां मेहनत पर गर्व करनेवाले दलित की छवि भी मिलती है। व्यवस्था में निहित शोषण के खिलाफ प्रतिरोध भी इसमें है। दलित को मैले, गन्दे कहनेवाले उच्चवर्ग को, दलित बताना चाहता है कि जो उनकी श्रम की संस्कृति है।

कविता परंपरागत मिथकों के रहस्यों को उदघाटित करती है तथा एकलव्य के प्रसंग की व्याख्या को भी नयी दृष्टि से करती है।

Recap / पुनरावृत्ति

- दलित कविता का सामान्य परिचय प्राप्त करती है।
- हिन्दी दलित कवियों में मलखान सिंह का नाम सर्वोपरि है।
- 'सुनो ब्राह्मण' मलखान सिंह का 1996 में छपा कविता संग्रह हैं।
- 'सुनो ब्राह्मण' कविता ब्राह्मणवादी विचारधारा का खंडन है।
- 'सुनो ब्राह्मण' कविता सामाजिक विसंगतियों पर प्रश्नचिह्न डालती हैं।
- दलित के श्रम के महत्व को स्पष्ट करता है।
- उच्चवर्ग की अकर्मण्यता पर भी कविता प्रहार करती है।

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'अछूत की शिकायत' कविता का प्रकाशन वर्ष?
2. 'अछूत की शिकायत' किसकी कविता है?
3. 'सुनो ब्राह्मण' किसकी कविता है?
4. 'सुनो ब्राह्मण' कविता का प्रकाशन वर्ष कब है?
5. मलखान सिंह का जन्म कब और कहाँ हुआ?
6. तुम सुनो वशिष्ठ!, द्रोणाचार्य तुम भी सुनो!, हम तुमसे घृणा करते हैं। तुम्हारे अतीत, तुम्हारी आस्थाओं पर थूकते हैं। ये पक्तियाँ किस कविता की हैं?
7. 'सुनो ब्राह्मण' में कुल कितनी कविताएँ हैं?
8. 'सदियों का संताप' का प्रकाशन वर्ष?

Answers / उत्तर

1. 1914
2. हीरा डोम
3. मलखान सिंह
4. 1996
5. 30 फरवरी 1948 को ग्राम बसई काजी, जनपद अलीगढ़ (उ.प्र.)
6. सुनो ब्राह्मण
7. 15
8. 1989

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. सुनो ब्राह्मण कविता पर टिप्पणी लिखिए।
2. मलखान सिंह के काव्यत्त पर टिप्पणी लिखिए।
3. दलित कविता की विशेषताएँ लिखिए।
4. प्रमुख दलित कवियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
5. 'सुनो ब्राह्मण' कविता के शीर्षक की सार्थकता पर चर्चा कीजिए।

Reference

1. दलित साहित्य का सैन्दर्यशास्त्र - डॉ. शरणकुमार लिंबाले
2. दलित साहित्य के प्रतिमान - डॉ. एन. सिंह
3. दलित चेतना साहित्य एवं सामाजिक सरोकार - रमणिका गुप्ता
4. दलित चिंतन का आधुनिक परिदृश्य - डॉ. किरन हजारिका
5. दलित विमर्श समकालीन साहित्य चिन्तन - डॉ. पंडित गायकवाड
6. भारतीय दलित समस्याएँ एवं समाधान - डॉ. रामगोपाल सिंह
7. गाँधी और दलित, भारत-जागरण - श्री. भगवान सिंह

इकाई 2

कबीर तुम ज़िन्दा हो!

- बाल गंगाधर 'बागी'

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- कवि बाल गंगाधर बागी की जानकारी प्राप्त करता है
- कविता 'कबीर तुम ज़िदा हो' के बारे में समझता है
- समाज में व्याप्त जातीय असमानता की जानकारी प्राप्त करता है
- भक्तिकाल के प्रमुख कवि कबीरदास की प्रासंगिकता से अवगत हो जाता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

कबीरकालीन विकृतियों, विसंगतियों, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों से आज भी हमारा समाज मुक्त नहीं हो पाया है। जाति-पांति, छुआछूत, सांप्रदायिकता, अशिक्षा, गरीबी जैसी विषमताएँ जड़ जमाये बैठी हैं। आर्थिक स्वार्थ, दंभ, नैतिक पतन ने व्यक्ति को संवेदनहीन और स्वार्थी बना दिया है। शोषण, उत्पीड़न, झूठ, फरेब आज भी भयानक रूप में मौजूद है। अतः कबीर के समता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व गढ़ने के विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। जिन मानवीय मूल्यों की स्थापना हेतु वे जीवनभर संघर्षरत रहें, उस संघर्ष की लौ को फिर से जीवित रखने की आवश्यकता आ पड़ी है। प्रेम, मानवता, सद्भाव, सौहार्द और नैतिकता की बहाली के लिए कबीर के विचारों का पुनः अनुसरण समय की मांग है। बालगंगाधर बागी ने यहां कबीर का पुर्नपाठ कर समाज में व्याप्त असमानता का पर्दाफाश किया है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

'कबीर तुम ज़िदा हो', बाल गंगाधर बागी, कबीर की प्रासंगिकता, दलित शोषण

Discussion / चर्चा

बालगंगाधर बागी कवि के रूप में नया हस्ताक्षर है। वे अपनी कविताओं के माध्यम से सामाजिक क्रांति के संदेश देते हैं। बागी को अपनी समाज की दशा और देश के लम्बे इतिहास को अपनी कविताओं के माध्यम से बंया करते हैं।

बालगंगाधर बागी

बालगंगाधर बागी का जन्म 15 मई 1989 को मौजा भिलोल जिला बस्ती, उत्तर प्रदेश में हुआ था। वह प्रभावी रूप से छात्र पॉलिटिक्स से जुड़ गए। इस संबंध में, उन्होंने यूनाइटेड दलित स्टूडेंट्स फोरम (यूडीएसएफ) की अध्यक्षता की। 2014 में, वह नवगठित बर्सा अंबेडकर फुले स्टूडेंट्स एसोसिएशन (बा पीसा) के संस्थापक सदस्य थे। परिसर की राजनीति के साथ- साथ प्रासंगिक संघों में प्रभावी भागीदारी के बैनर तले जेएनयू छात्र संघ चुनाव में हिस्सा लिया।

'बागी' स्वयं उत्तर प्रदेश के एक अल्पज्ञात गांव से आते हैं। बागी उस गाँव से आते हैं जहाँ विशेषकर उनके समुदाय में काव्यात्मक गंभीरता का अभाव था। वह एक निजी किस्से का जिक्र करते हैं जहाँ एक दलित महिला

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

को उनके सामने पीटा गया था जिसने उन्हें कविता लिखने के लिए प्रेरित किया। उनकी कविता का तीखा स्वर उनके स्वयं के जीवनी संबंधी बहिष्कार की घटनाओं से निकलता है। इसलिए उनका मानना है कि दलितों पर किसी भी अत्याचार को रोमांटिक नहीं बनाया जा सकता है। इसलिए वे एक तीखे और सीधे हमले की मांग करते हैं। संविधान में अपनी आस्था जताते हुए 'बागी' का तर्क है कि ज्ञान के प्रकाश से ही आकाश स्पष्ट हो सकता है। उनका तर्क है कि हमें ब्राह्मणवाद से मिलकर लड़ना होगा क्योंकि भगवान इस समस्या को सुलझाने नहीं आएंगे। उनका मानना है कि उनके गांव ने उन्हें अनुभव दिया। जे. एन.यू. का अध्ययन ही था जिसने उनमें चेतना का संचार किया। उनका काम बिरसा मुंडा, अशोक से लेकर सावित्री बाई फुले आदि कई समाज सुधारकों के विचारों को एकत्रित करता है। क्रांतिकारी विधा के अलावा कवि के पास समाज के पूर्ण परिवर्तन के चिंतन में एक चिंतनशील विधा भी है। 'बागी' ने सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए वास्तविक मुद्दे पर अधिक जोर दिया है।

कबीर तुम ज़िन्दा हो !

ये कबीर भी कितना ही मस्त मौला था
दोहे से जन-मन जगाने का काम किया
ईश्वर-अल्लाह के अस्तित्व को नकार कर
तार्किक ज्ञान से पाखण्ड को परास्त किया

पत्थर पूजने से किसी को हरि नहीं मिलता
मस्जिद में चिल्लाने से अल्ला नहीं मिलता
आप कभी नहीं किसी भगवान के सहारे थे
झूठ बोलते हैं ब्राह्मण कि तुम्हें राम प्यारे थे
पत्थर में समाहित चिन्गारी है जैसे
सरसों में समाहित इतना तेल है कैसे?
सोचो दुर्बलों फिर डरो अब नहीं
लाचार न रहो तुम शासक हो यहाँ के

संसार में कहीं भी भगवान नहीं है
लोगों का भरम है कोई शैतान नहीं है
सच का दर्शन समतावादी कबीर का
जग में स्वर्ग नरक कोई मुकाम नहीं है

यह संपदा तुम्हारी, संसाधन यहाँ का
असहाय बने तुम्हारा कुछ नहीं रहा
उठो और 'अत्त दीपो भव' बन जाओ
पाखण्डी दुष्चक्र को समझ लो खरा

ब्रह्म है तुम में, न तुम आत्मा उसके
अपने संसाधना के ढेर पे मुरझाये हो केसे?
जल में नलनी है कुम्हलायी क्यों हुई?
बैठाये गए हाय क्यों हाथ पे रखके?

भारत पाखण्ड के दल-दल में फंस गया
ब्राह्मणी आडम्बर का तूफान है बरपा
कबीर का दर्शन इसी के विरुद्ध था
दासता बंधन में अभी, समाज है फंसा

जोड़े हैं कितने लोगों ने, दोहे तुम्हारे नाम
दर्शन बदल तुम्हारा दिया, हिन्दुत्व का नाम
राम की महिमा से, सारा बीजक भर दिये
नवजागरण को फिर से, कर दिया नाकाम

भगवान के अनुयायी तो मंदिर जाते हैं
मंदिर और मस्जिद को नकारा आपने
पाखण्ड ही ईश्वर है, ईश्वर ही पाखण्ड
गांव व नगर घूम-घूम, बताया आपने

कबीरा कहे समाज से, लो मध्यम मार्ग अपनाय
छोड़ो सब की चाकरी, न रहो किसी की छांव
इसी बुद्ध के ज्ञान को कबीरा खूब रहा समझाय
आंखों देखी मानो साधो, सब झूठ दो ठुकराय

कितने दिन बीत गये जन-मन
कबीरा पढ़ा खूब दुनिया बेहतर
जुलाहा घर को लालन पालन से
मसि काग़ज न छुआ क़लम

वह अनपढ़ था अज्ञानी नहीं
दोहा व छन्द उसका बेमानी नहीं
अनपढ़ आदमी ऐसा कह नहीं सकता
पर ब्राह्मणों ने गढी क्यों, कहानी नई?

कबीरा तेरा एकतारा, बेसुर ब्राह्मण रहा बजाय
बीजक की धरती पर, भगवान की फसल उगाय
तत्व ज्ञान सब छोड़ कर, दिया मनुवाद फैलाय
मूल ज्ञान के मरम से, दिया समाज भरमाय

अब कबीर ज़िन्दा ब्राह्मणवाद
साखी सबद रमैनी का, अनुपम सार मिटाय
रैन की आंखों में कहाँ, अब चाँद रहा मुस्काय?
ब्राह्मणवाद कबीर घर, कब्जा लिया जमाय

सारांश

कबीरदास भक्तिकाल के प्रमुख समाज सुधारक थे। उनकी वाणी समाज में व्याप्त जातिपाँति, साम्प्रदायिकता जैसी असमानता के खिलाफ थीं। कबीर अपने तार्किक ज्ञान से आडम्बरपूर्ण मिथ्याधारणाओं का खण्डन कर प्रेम को स्थापित किया। बालगंगाधर बागी ने 'कबीर तुम जिन्दा हो' कविता के माध्यम से कबीर की प्रासंगिकता को उजागर करने की कोशिश की है।

'कबीर तुम ज़िदा हो' कविता बालगंगाधर 'बागी' के 'आकाश नीला है' कविता संग्रह से लिया हुआ है। सोशल जस्टिस की दृष्टि से ही उन्होंने किताब का नाम 'आकाश नीला' रखा है। इसके मुख पृष्ठ में आप देखेंगे एक हाथ में कलम है और उसी कलम पर लगा हुआ तीर है। तीर का मतलब हथियार या क्रांति है तो दूसरे पर लगा कलम शिक्षा से किया गया है।

बालगंगाधर बागी ने समाज से 'कबीर तुम ज़िदा हो' पूछकर सामाजिक असमानता पर व्यंग्य किया। 'कबीर तुम ज़िदा हो' कविता में कवि कबीर के दोहो में प्रयुक्त तार्किक ज्ञान का उल्लेख करते हुए समाज में धर्म एवं संस्कृति में व्याप्त जटिलताओं को तोड़ने की कोशिश करते हैं। सामाजिक व्यवस्था में मौजूद असमानता को भी कविता व्यक्त करती है।

दलित को धर्मशास्त्रों, मिथकों, पाप-पुण्य के नाम पर सदियों से गुलाम बनाए रखनेवाले षड्यंत्र पर भी कविता प्रहार करती है। भक्ति एंव ईश्वर के नाम पर की जानेवाली ब्राह्मणवादी व्यवस्था के छल-कपट को व्यक्त कर कवि कहते हैं कि - तुम न ब्रह्म हो, न तुममें ब्रह्म हैं। इन सबकी अवधारणा ही प्रभुत्व को बनाए रखने केलिए है। उसको पहचानने तथा प्रतिरोध करने का आह्वान कविता करती है- 'उठो और अत्त दीपो भव बनजाओ, पाखण्डी दुष्चक्र को समझ लो।'

कविता कबीर के द्वारा धर्म, परंपरा, संस्कृति में निहित पाखण्ड को उजागर करती है। दलित कविता ईश्वर को नहीं मानती। उनकेलिए ईश्वर ब्राह्मणवाद की उपज है। अपनी नीतियों को बनाने का प्रतीक मात्र हैं। यह प्रतीक एवं मिथक दलित को पाप-पुण्य जैसी संकल्पनाओं में कैदी बनाए हुए हैं। इसलिए कवि कबीर की वाणी के द्वारा इन मिथ्या धारणाओं का खण्डन कर मानवीय मूल्य को स्थापित करने का प्रयत्न करता है। कवि बताता है कि स्वर्ग-नरक का कोई मुकाम नहीं। भगवान ही नहीं ये सारी सृष्टियाँ दलित पर शासन करने केलिए की गयी साजिश हैं। कवि दलित को इस जकडबंधियों से स्वयं को मुक्त कर अपने हक केलिए लडने केलिए प्रेरित करते हैं।

कबीर का दर्शन समाज में व्याप्त पाखण्ड, अंधविश्वास, दासता आदि मुद्दों के खिलाफ थे, जो आज के समय एवं समाज केलिए भी संगत है। किन्तु प्रभुत्व को बनाए रखने केलिए कबीर की वाणी का दुरुपयोग करनेवाले ब्राह्मणवादी सोच को भी कविता व्यक्त करती है। 'अब कबीर ज़िन्दा ब्राह्मणवाद साखी सबद रमैनी का, अनुपम सार मिटाय रैन की आंखों में कहाँ, अब चाँद रहा मुस्काय? ब्राह्मणवाद कबीर घर, कब्जा लिया जमाय।'

Critical Overview / अवलोकन

'कबीर तुम ज़िन्दा हो' कविता ने भक्तिकाल के प्रमुख समाज सुधारक कबीर की प्रासंगिकता को उजागर करने की कोशिश की है। बालगंगाधर बागी ने समाज से 'कबीर तुम ज़िदा हो' पूछकर सामाजिक असमानता पर व्यंग्य किया है। इस कविता में कवि कबीर के दोहो में प्रयुक्त तार्किक ज्ञान का उल्लेख करते हुए समाज में धर्म एवं संस्कृति में व्याप्त जटिलताओं को तोड़ने की कोशिश करते हैं। वस्तुतः कबीर का दर्शन समाज में व्याप्त पाखण्ड, अंधविश्वास, दासता आदि मुद्दों के खिलाफ थे, जो आज के समय एवं समाज केलिए भी संगत है। किन्तु प्रभुत्व को बनाए रखने केलिए कबीर की वाणी का दुरुपयोग करनेवाले ब्राह्मणवादी सोच को भी कविता व्यक्त करती है।

सामाजिक व्यवस्था में मौजूद असमानता तथा धर्म एवं

संस्कृति में व्याप्त जटिलताओं को व्यक्त करती हैं। साथ ही सदियों से दलित को धर्मशास्त्रों, मिथकों, पाप-पुण्य के नाम पर किए जानेवाले शोषण के खिलाफ प्रतिरोध भी है। कवि ने दलित मुक्ति की कामना की है।

Recap / पुनरावृत्ति

- 'कबीर तुम ज़िन्दा हो' कविता बालगंगाधर 'बागी' के 'आकाश नीला है' कविता संग्रह से लिया हुआ है।
- कवि ने समाज में व्याप्त असमानता का पर्दाफाश किया है।
- कबीर के विचारों का पुनः अनुसरण समय की मांग है।
- कवि कबीर के दोहो में प्रयुक्त तार्किक ज्ञान का उल्लेख करते हुए समाज में धर्म एवं संस्कृति में व्याप्त जटिलताओं को तोड़ने की कोशिश करते हैं।
- बालगंगाधर बागी ने 'कबीर तुम जिन्दा हो' कविता के माध्यम से कबीर की प्रासंगिकता को उजागर करने की कोशिश की है।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'कबीर तुम ज़िन्दा हो' किसकी कविता हैं?
2. 'कबीर तुम ज़िन्दा हो'
3. कबीरदास किस काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं?
4. बागी का जन्म स्थान कहाँ है?
5. बालगंगाधर बागी ने अपना शोध कार्य कहाँ पर किया था?
6. नीला आकाश किसका काव्य संग्रह हैं?
7. बागी किसका उपनाम है?
8. बालगंगाधर बागी का जन्म कब हुआ?

Answers / उत्तर

1. बालगंगाधर बागी
2. नीला आकाश
3. भक्तिकाल
4. उत्तर प्रदेश
5. जे.एन.यू.
6. बालगंगाधर बागी
7. बालगंगाधर का
8. 15 मई 1989

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. कबीर तुम ज़िदा हो कविता पर टिप्पणी लिखिए।
2. बालगंगाधर बागी की कविता में चित्रित दलित जीवन पर टिप्पणी लिखिए।
3. कबीर के दोहों के आधार पर कबीर तुम जिंदा हो कविता का मूल्यांकन कीजिए।
4. बालगंगाधर बागी की कविताओं की विशेषता लिखिए।
5. कबीर तुम जिन्दा हो कविता के शीषर्क की सार्थकता पर टिप्पणी लिखिए।

Reference

1. दलित साहित्य का सैन्दर्यशास्त्र - डॉ. शरणकुमार लिंबाले
2. दलित साहित्य के प्रतिमान - डॉ. एन. सिंह
3. दलित चेतना साहित्य एवं सामाजिक सरोकार - रमणिका गुप्ता
4. दलित चिंतन का आधुनिक परिदृश्य - डॉ. किरन हजारिका
5. दलित विमर्श समकालीन साहित्य चिन्तन - डॉ. पंडित गायकवाड
6. भारतीय दलित समस्याएँ एवं समाधान - डॉ. रामगोपाल सिंह
7. गाँधी और दलित, भारत-जागरण - श्री. भगवान सिंह

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

इकाई 3

ठाकुर का कुआँ

- ओमप्रकाश वाल्मीकि

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- ओमप्रकाश वात्मीकी के बारे में समझता है
- 'ठाकुर का कुआँ' कविता के बारे में समझता है
- ओमप्रकाश वाल्मीकी की रचनाओं की जानकारी प्राप्त करता है
- ओमप्रकाश वात्मीकी की दलित चेतना से अवगत हो जाता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

वर्णव्यवस्था में ब्राह्मण, ठाकुर सबसे ऊपर थे। इन्होंने राज्य किया, आचार संहिता बनायी और शूद्रों को नीचे पायदान में रख दिया। उत्पादन करना और अछूत रहना। उनकी कमाई उनके ही हाथ से छूटकर अछूत हो जाती थी।जातिवाद की कठोरता का इतिहास इस देश में लम्बा चला है। इसके नियामक ब्राह्मण थे। इसीलिए दलितों के सबसे बडा शत्रु ब्राह्मण और उनका ब्राह्मणवाद है। 'ठाकुर का कुआँ' कविता ब्राह्मणवाद की इस जटिलता को व्यक्त करती है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

ओमप्रकाश वाल्मीकि, ठाकुर का कुआँ, ब्राह्मणवाद

Discussion / चर्चा

कवि कथाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि हिन्दी कवियों में सर्वप्रमुख हैं। उनकी प्रमुख कविता 'ठाकुर का कुआँ' जातिव्यवस्था में निहित अन्याय, शोषण एवं उत्पीड़न को व्यक्त करती है।

डॉ. ओमप्रकाश वाल्मीकि

कवि और कथाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म 30 जून, सन् 1950 ई. जनपद मुजफ्फर नगर (उ.प्र.) के बरला नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री छोटन लाल तथा माता का नाम श्रीमती मुकन्दी देवी था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में ही हुई। इसके बाद इन्होंने जबलपुर तथा बम्बई से तकनीकी शिक्षा ग्रहण की और रक्षा मन्त्रालय (भारत सरकार) के उत्पादन विभाग में कार्यरत रहते हुए भारत के विभिन्न भागों में सेवा की। देहरादून में कार्यरत रहते हुए एम.ए. (हिन्दी) तथा साहित्यरत्न की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। सन् 1975 में गम्भीरता पूर्वक लेखन प्रारम्भ करने वाले ओमप्रकाश वाल्मीकि की अब तक कई महत्त्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं- 'सदियों का सन्ताप', 'बस्स! बहुत हो चुका' (काव्य संग्रह) तथा 'जूठन' (आत्मकथा) 'सलाम' तथा 'घुसपैठिए' (कथा संग्रह) तथा 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' आदि। इसके अतिरिक्त इनकी कविताएँ- 'दर्द के दस्तावेज', 'उत्तर हिमानी', 'दलित चेतना' कविता तथा कहानियाँ- 'कथा-परिदृश्य' और 'काले हाशिए पर' आदि संग्रहों में भी संकलित की गयी हैं। देश की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में निरन्तर सम्मानपूर्वक स्थान पाए ओमप्रकाश वाल्मीकि

ने अब तक लगभग 60 नाटकों में अभिनय भी किया है। उनके नाट्य आलेख 'दो चेहरे' का कई नाट्य दलों द्वारा मंचन भी किया गया है। अपने अभिनय और निर्देशन के लिए कई बार पुरस्कृत भी हुए है। दलित आन्दोलन तथा सामाजिक सेवा के लिए प्रतिबद्ध ओमप्रकाश वाल्मीकि को उनकी साहित्यिक सेवाओं के लिए भारतीय दलित साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली द्वारा सन् 1993 में डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार दिया। 'परिवेश सम्मान - 1995' में प्राप्त हुए। उन्होंने 1993 में नागपुर में सम्पन्न हुए प्रथम दलित साहित्य लेखक सम्मेलन की अध्यक्षता भी की।

ठाकुर का कुआँ

चूल्हा मिट्टी का
मिट्टी तालाब की
तालाब ठाकुर का।
भूख रोटी की
रोटी बाजरे की
बाजरा खेत का
खेत ठाकुर का।
बैल ठाकुर का
हल ठाकुर का
हल की मूठ पर हथेली अपनी
फ़सल ठाकुर की।
कुआँ ठाकुर का
पानी ठाकुर का
खेत-खलिहान ठाकुर के
गली-मुहल्ले ठाकुर के
फिर अपना क्या?
गाँव?
शहर?
देश?

छोटी कविताएँ अक्सर सोचने के लिए बड़ा कैनवास दे जाती हैं। जब कविता ओमप्रकाश वाल्मीकि की हो तो यह कैनवास थोड़ा और बड़ा हो जाता है। इस दृष्टि से 'ठाकुर का कुआँ' कविता का महत्व अधिक हैं। 'ठाकुर का कुआँ' उस वंचित तबके के दर्द की नुमाइंदगी करती है, जो खेत, गांव, शहर और देश में वह चीज़ तलाश रहा है, जिसे वह अधिकार और गर्व के साथ अपनी कह सके।

'ठाकुर का कुआँ' कविता दलित साहित्य में ही अपना विशेष महत्त्व रखती है। इस कविता सामंतीव्यवस्था या पूंजीवाद व्यवस्था में निहित शोषण का पर्दाफाश करती है। जीवन के संसाधनों का उत्पादन करनेवाले मेहनतकश वर्ग सदियों से रोटी, कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी चीज़ों से वंचित है। संसाधनों पर स्वामित्व के अभाव में यह वर्ग ब्राह्मणवादी विचारधारा का गुलाम हो रहा है। जिसके तहत समस्त संसाधन ठाकुर अथवा जमींदार के पास है। उनका अपना कुछ भी नहीं। इसपर कविता सवाल उठाती है, सब कुछ ठाकुर का है तो हमारा क्या?

हल की मूठ पर हथेली अपनी
फ़सल ठाकुर की।
कुआँ ठाकुर का
पानी ठाकुर का
खेत-खलिहान ठाकुर के
गली-मुहल्ले ठाकुर के
फिर अपना क्या?

भारतीय समाज की यह बदकिस्मती है कि दलितों को डुबो देने की यह वृत्ति आज़ादी के बाद भी कम नहीं हुई है। बल्कि दलित उत्पीड़न के नये नये रास्ते और तरीके निकल आये हैं। पहले सिर्फ 'कुआँ' था अब बहुत से नाले, नहरें बनायी गयी हैं। इसी के परिणाम स्वरूप हाड़तोड़ मेहनत करनेवाले इस कर्मठ मानव की किस्मत में जीवन की प्राथमिक जरूरतें (रोटी, कपड़ा और मकान) भी नहीं है। तात्पर्य यह है कि दलित का अस्तित्व ठाकुर जैसे पूंजीपतियों के आराम भरी ज़िन्दगी देने के लिए मात्र रह गए हैं। दिनरात मेहनत करने पर भी वे नंगे, भूख एवं गरीब है।

वाल्मीकिजी की इस कविता के संदर्भ में डॉ. मेनेजर पाण्डेय का कहना है कि- 'ठाकुर का कुआँ', 'कुआँ' नहीं बल्कि सारा हिन्दू समाज है। जिसमें अछूतों को डूब मरने की तो सुविधा है। पीने के लिए पानी लेने की नहीं।'

Critical Overview / अवलोकन

'ठाकुर का कुआँ' ओमप्रकाश वात्मीकी की दलित चेतना से ओतप्रोत कविता है। दलित समाज सदियों से

पीड़ित एवं प्रताड़ित है। भद्र समाज ने उसका पूरा नूर छीन लिया है। समाज ने सदा ही इनकी उपेक्षा की है। कवि ने जाति के नाम पर हो रहे अन्याय एवं शोषण के खिलाफ अपना प्रतिरोध प्रकट किया है। मेहनत के लिए दलित का उपयोग करते हैं। किन्तु उससे प्राप्त संपत्ति पर उनका अधिकार नहीं है। इस अमानवीयता पर भी 'ठाकुर का कुआँ' कविता प्रहार करती है।

Recap / पुनरावृत्ति

- कवि और कथाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि का परिचय प्राप्त करता है।
- उनकी प्रमुख कविता 'ठाकुर का कुआँ' है।
- दलित चेतना से ओतप्रोत कविता है।
- 'ठाकुर का कुआँ' उस वंचित तबके के दर्द की नुमाइंदगी करती है।
- इस कविता सामंतीव्यवस्था या पूंजीवाद व्यवस्था में निहित शोषण का पर्दाफाश करती है।
- ब्राह्मणवाद के खिलाफ प्रतिरोध है।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. "ठाकुर का कुआँ', 'कुआँ' नहीं बल्कि सारा हिन्दू समाज है" किसका कथन है?
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म कब और कहाँ हुआ?
3. वाल्मीकि के पिता का नाम क्या था?
4. वाल्मीकि के माता का नाम क्या था?
5. वाल्मीकि की आत्मकथा कौनसी है?
6. 'जूठन' का प्रकाशन वर्ष?
7. ओमप्रकाश वाल्मीकि का पहला कविता संग्रह कौन सा है?
8. 'ठाकुर का कुआँ' कहानी किसकी रचना है?

Answers / उत्तर

1. डॉ. मेनेजर पाण्डेय
2. जनपद मुजफ्फरनगर (उ.प्र.) के बरला गाँव में 30 जून 1950 को
3. छोटनलाल
4. श्रीमती मुकन्दी देवी
5. 'जूठन'
6. 1997
7. सदियों का संताप
8. प्रेमचंद

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. 'ठाकुर का कुआ' कविता पर टिप्पणी लिखिए।
2. ओमप्रकाश वाल्मीकी की कविताओं में चित्रित दलित-जीवन पर टिप्पणी लिखिए।
3. 'ठाकुर का कुआँ', 'कुआँ' नहीं बल्कि सारा हिन्दू समाज है।' समर्थन कीजिए।
4. ओमप्रकाश वाल्मीकी की कविताओं अभिव्यक्त प्रतिरोध पर विचार प्रकट कीजिए।
5. 'ठाकुर का कुआँ' कविता के शीषर्क की सार्थकता पर टिप्पणी लिखिए।

Reference

1. दलित साहित्य का सैन्दर्यशास्त्र - डॉ. शरणकुमार लिंबाले
2. दलित साहित्य के प्रतिमान - डॉ. एन. सिंह
3. दलित चेतना साहित्य एवं सामाजिक सरोकार - रमणिका गुप्ता
4. दलित चिंतन का आधुनिक परिदृश्य - डॉ. किरन हजारिका
5. दलित विमर्श समकालीन साहित्य चिन्तन - डॉ. पंडित गायकवाड
6. भारतीय दलित समस्याएँ एवं समाधान - डॉ. रामगोपाल सिंह
7. गाँधी और दलित, भारत-जागरण - श्री. भगवान सिंह

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

इकाई 4

जाति की बू

- असंगघोष

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- दलित कवि असंगघोष के बारे में समझता है
- जाति की बू कविता के बारे में समझता है
- जाति की बू कविता के दलित प्रतिरोध को समझता है
- समाज में व्याप्त जातीय जटिलता के बारे में जानकारी प्राप्त करता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

अस्पृश्यता-उन्मूलन का आंदोलन सम्यक परिवर्तन का आंदोलन है। मात्र राजनीतिक, सामाजिक अथवा धार्मिक परिवर्तन से अस्पृश्यता नष्ट नहीं होती। मानसिक स्वीकृति भी इसकेलिए अनिवार्य है। असंगघोष की जाति की बू शीर्षक कविता समाज में व्याप्त जातीय जटिलता को उजागर करती है। यह कविता लिखने की प्रेरणा कार्यक्षेत्र में अनुभूत जातीय भेदभाव से है। असंगघोष को यूनियन का पदेन पदाधिकारी होने के बावजूद भी प्रतिदिन के कार्य में जातिगत भेदभाव का सामना करना पड़ता था। वे जिस बैंक में कार्यरत था वहां एक पंण्डित चपरासी को उन्हें पानी पिलाने में भी बड़ी परेशानी होती थी। उस चापरासी को उनकी ब्राह्मणवादी सोच ने दलित को पानी पिलाने को रोक रहा था। इस मानसिक भेदभाव को कवि ने बडी संवेदनात्मक ढंग से अभिव्यक्त कर सामाज में व्याप्त जातीयता पर प्रहार किया है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

असंगघोष, जाति की बू, श्रेष्ठताबोध, मानसिक भेदभाव, दलित प्रतिरोध

Discussion / चर्चा

असंघोष की कविताओं में दलित की पीड़ा है। इसको उनकी कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त की है। वह एक ऐसे कवि हैं जो समाज में व्याप्त हर भेदभाव को तोड़कर मनुष्यता के पक्ष में खड़ा होने का आग्रह करते हैं। 'जाती की बू' उनके द्वारा लिखी गयी कविता है। जिसमें दलित को सहनेवाली आत्मग्लानि को व्यक्त किया गया है।

डॉ. असंगघोष

असंगघोष दलित साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उनका जन्म 29 अक्तूबर 1962 को मध्य प्रदेश के एक छोटे क़स्बे जावद में एक ग़रीब दलित परिवार में हुआ। उनके पिता जूते बनाने का कार्य करते थे। आर्थिक विपन्नता से भरे जीवन में पिता का सहयोग करते हुए उन्होंने भी जूते बनाए, साथ में पढ़ाई भी की। आरंभिक शिक्षा क़स्बे में ही हुई, फिर एक लंबे अंतराल के बाद पी.एच.डी. तक की उच्च शिक्षा प्राप्त की। शिक्षा पूरी कर आरंभ में बैंक की नौकरी की, फिर प्रशासनिक सेवा से संबद्ध हुए। आरंभ में उनका जुड़ाव मार्क्सवादी आंदोलन से रहा था और बाद में आंबेडकरवादी आंदोलन से जुड़े। इसी क्रम में रचनात्मक प्रतिबद्धता के साथ दलित कविता में उनका प्रवेश हुआ। कविता लिखने के बारे में असंगघोष का वक्तव्य इसप्रकार है। "मेरी कविता लेखन में जो

शुरुआत है वह लगभग 1979 से हैं। कविताएँ भी वही, जो सामान्यता लोग लिखते हैं। शुरुआत में जो कविताएं लिखी जा रही थी वो कविताएँ प्रेम-मोहब्बत की कविताएं होती थीं। एक किशोर जब कविताएँ लिखता है तो वह प्यार-मोहब्बत की कविताएँ लिखता है, शुरुआत भी वहीं से होती है इसमें कविताएँ अक्सर तुकबंदी की हुआ करती थी और यहीं से सामान्यतः कविताएँ लिखने की शुरुआत हो जाती है। यह उन्यासी अस्सी, लगभग एक डेढ़ साल तक इस प्रकार की कविताएँ लिखी। 1982 ई. में जब मार्क्सवाद के साथ जुड़ाव हुआ तो मेरा मार्क्सवाद और जनवाद की ओर अधिक झुकाव रहा। लेकिन मैंने नौकरी में आकर उस दर्द को फेस किया तो फिर मैं अंबेडकरवाद की ओर आ गया।"

उन्हें हिन्दी दलित कविता के प्रमुख कवियों में से एक माना जाता है। अब तक असंगघोष के 8 कविता-संग्रह आ चुके हैं जिनमें 'ख़ामोश नहीं हूँ मैं', 'हम गवाही देंगे', 'मैं दूँगा माक़ूल जवाब', 'समय को इतिहास लिखने दो', 'हम ही हटाएँगे कोहरा', 'ईश्वर की मौत', 'अब मैं साँस ले रहा हूँ', 'बंजर धरती के बीज' शामिल हैं। इसके अतिरिक्त उनका एक कविता-संचयन भी 'तुम देखना काल' शीर्षक से प्रकाशित है। वह जबलपुर से प्रकाशित दलित साहित्य की प्रखर पत्रिका 'तीसरा पक्ष' के संपादक के रूप में भी योगदान कर रहे हैं। उनकी कविताओं को विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है और उनकी कविताओं पर शोध-कार्य भी हो रहे हैं। उन्हें मध्य प्रदेश दलित साहित्य अकादमी के पुरस्कार, सृजनगाथा सम्मान, गुरू घासीदास सम्मान, उर्वशी सम्मान, मंतव्य सम्मान आदि से नवाज़ा गया है।

जाती की बू

बन्द दरवाज़े की बगल में
गाँधी टोपी लगाए
स्टूल पर अकड़कर बैठा
यह सफ़ेद कपड़ो में लिपटा
आदमी !
कभी अर्दली,
कभी दरबान,
कभी चपरासी
कभी भृत्य कहाता है।
लटकाता है वह
अपनी सफ़ेद कमीज़ पर
एक लाल कपड़े की पट्टिका
कन्धे से नीचे उतरती हुई
पुरातन चपड़ास !
और ख़ुद को कलक्टर
से कम नहीं समझता।

जब भी बजती है
घण्टी
वह दरवाज़ा ढकेल अन्दर आ
सिर झुका
खड़ा हो जाता है
आदेश लेने।

फ़ाइलें उठाता है
बाहर से अन्दर
अन्दर से बाहर
लाता-ले जाता है,
जब मैं कहता हूँ
पानी पिलाओ !
तो मुझे महसूस होने लगती है
इसके चेहरे पर
झलकती हुई कोफ्त।

इसे नागवार लगता है
मुझे पानी पिलाना
यह हुक़्म-उदूली से
ख़ुद को बमुश्किल
बचाता हुआ
ज़ोर से पटक देता है
मेरी मेज़ पर
एक गिलास
पानी !
कुछ छलकता,
ढुलता है

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

मेरी मेज़ के काँच पर फैलता है
बहकर बनता है
भारत के नक़्शे की तरह,
फ़ाइलों को भिगोता हुआ
मेरे मन में कटार-सा उतरता है
पानी।

जानता हूँ
गिलास में बचा पानी !
मेरे लिए ज़हर का घूँट है
फिर भी
मैं इसे पीता हूँ
उसकी इस उद्दण्डता पर
मैं उसे दण्डित भी नहीं करता,
ताकि मेरे हर बार पानी पिलाने का कहते ही
इसकी श्रेष्ठता पर
लगती रहे चोट
कचोटता रहे उसका मन
कि उसे ये भी दिन देखने थे।

सारांश

असंगघोष ने हाशिये के समाज को एक नई अभिव्यक्ति दी है। आज के समय में देश में संविधान लागू होने के बाद भी हाशिये के समाज की स्थिति सुधर नहीं पायी है। कवि ने इनकी अंतर्वस्तु को अपनी विशिष्ट शैली में अभिव्यक्ति दी है। असंगघोष की दलित चेतना से ओतप्रोत 'जाति की बू' कविता भारत के कार्यालयों के निम्न जाति के कर्मचारियों के साथ हो रहे जातीय भेदभाव का यथार्थ अंकन है।

वस्तुतः 'जाति की बू' कविता कवि का स्वनुभूति है। इसके बारे में कवि का वक्तव्य इसप्रकार है- 'उस समय मन की जो पीड़ा थी मार्क्सवाद में रहते हुए दूर नहीं हुई एक यूनियन का पदेन पदाधिकारी होने के बावजूद मुझे प्रतिदिन के कार्य में भी जातिगत भेदभाव का सामना करना पड़ता था यहां तक कि मैं जिस बैंक में कार्यरत था वहां एक चपरासी को पानी पिलाने में भी बड़ी परेशानी होती थी उसे बार-बार पानी लाने के लिए कहना पड़ता था। दस बार कहने पर पानी का गिलास मेरी टेबल पर लाकर पटकता था क्योंकि जो चपरासी था वह एक पंडित था उसे एक दलित को पानी पिलाना नागवार गुजरता था। इन सब चीजों को देखकर के में अंबेडकरवाद की ओर अग्रसर हुआ। और कालान्तर में अम्बेडकरवाद का प्रभाव अधिक पड़ा लेकिन उस दौरान बहुत सी चीजों को लेकर मालवा और राजस्थान में भी काफी बहस हो रही थी और इसी समय दलित साहित्य का जो उठाव हैं। यह अस्सी के दशक में था।"

अस्पृश्यता सामाजिक यथार्थ है। अस्पृश्यता या भेदभाव का जड़ मानसिक है। लोगों को मानसिक सुधार की ज़रूरत है। 'ब्राह्मणवादी विचारधारा में अडिग व्यक्ति या समूह आज भी दलित को अपने में से एक मानने के लिए तैयार नहीं। यहाँ तक उन्हें मानव रूप में स्वीकार करने के लिए भी असहमत है। ब्राह्मणवादी सोच में दलित आज भी निम्न एवं घृणित हैं। असंगघोष की 'जाति की बू' कविता सवर्णो के इस श्रेष्ठताबोध को व्यक्त करती है। समाज में जाति, कुल आदि पर अकड़ रखनेवाला मानसिकता पर करारा चोट भी है। साथ ही दलितों की स्थिति में हुई बदलाव को भी व्यक्त करती है। वैज्ञानिक, सामाजिक एवं शैक्षिक विकास के माध्यम से समाज में दलितोद्धार हुआ है, यानी दलित आजीवन दलित नहीं रहे। किन्तु अधिकांश लोग मानसिक तौर पर दलित को स्वीकार करने केलिए तैयार नहीं है। इस मनोभाव को कविता व्यक्त करती है।

दलित को वास्तविक मुक्ति सामाजिक स्वीकृति से ही प्राप्त हो सकती है। इस कविता में पढ लिखकर अधिकारी पद में बैठे दलित को न स्वीकार करनेवाली सवर्ण उद्दण्डता को उजाकर किया गया है। इसतरह कविता सवर्णों की अपकर्षता एवं श्रेष्ठताबोध से समाज में व्याप्त जाती की बू से प्रदूषित मानवियता को शब्दबद्ध करती है। साथ ही दलित प्रतिरोध को भी व्यक्त करते है- 'ताकि मेरे हर बार पानी पिलाने का कहते ही / इसकी श्रेष्ठता पर/ लगती रहे चोट/ कचोटता रहे उसका मन/ कि उसे ये भी दिन देखने थे।'

Critical Overview / अवलोकन

असंगघोष ने 'जाती की बू' कविता के माध्यम से समाज में व्याप्त जातीय जटिलता को व्यक्त किया है। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, वैज्ञानिक एवं शैक्षिक

प्रगति के बाद भी दलित को सामाजिक स्वीकृति नहीं मिली। सवर्ण मानसिकता में निहित श्रेष्ठताबोध के कारण उत्पन्न दलित की आन्तरिक पीड़ा को कवि अपनी स्वनुभूति के साथ अभिव्यक्ति देते हैं। वास्तव में यह कविता समाज में जाति, कुल आदि पर अकड़ रखनेवाला मानसिकता पर करारा चोट है। साथ ही दलितों की स्थिति में हुई बदलाव को भी व्यक्त करती है। वैज्ञानिक, सामाजिक एवं शैक्षिक विकास के माध्यम से समाज में दलितोद्धार हुआ है, यानी दलित आजीवन दलित नहीं रहे। किन्तु अधिकांश लोग मानसिक तौर पर दलित को स्वीकार करने केलिए तैयार नहीं है। इस मनोभाव को कविता व्यक्त करती है। साथ ही अस्पृश्यता के खिलाफ प्रतिरोध एवं मानसिक सुधार की मांग कविता करती है।

Recap / पुनरावृत्ति

- असंगघोष प्रमुख दलित कवि है।
- असंघोष की प्रमुख कविता है 'जाती की बू'।
- यह कविता कवि का स्वनुभूति है।
- असंगघोष के 8 कविता-संग्रह अब-तक प्रकाशित है।
- 'जाती की बू' कविता समाज में व्याप्त जातीय जटिलता को उजागर करती है।
- असंगघोष जुड़ाव मार्क्सवादी आंदोलन से रहा था, बाद में अम्बेडकर वाद से।
- भारत के कार्यालयों के निम्न जाति के कर्मचारियों के साथ हो रहे जातीय भेदभाव का यथार्थ अंकन है।
- अस्पृश्यता सामाजिक यथार्थ है।
- सवर्णों के श्रेष्ठताबोध को भी कविता व्यक्त करती है।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. जाति की बू किसकी कविता है?
2. 'जाति की बू' कविता किस संग्रह में संकलित है?
3. असंगघोष का जन्म कब हुआ?
4. असंगघोष के कितने कविता-संग्रह प्रकाशित हैं?
5. 'हम ही हटाएँगे कोहरा' किसका कविता संग्रह हैं?
6. 'गिलास में बचा पानी ! मेरे लिए ज़हर का घूँट है। फिर भी मैं इसे पीता हूँ।' ये किस कविता की पंक्तियाँ हैं?
7. असंघोष किस दलित साहित्य पत्रिका के संपादक के रूप में काम किया?
8. 'छप्पर फाड़ कर देना' किसकी कविता है?

Answers / उत्तर

1. असंगघोष
2. ईश्वर की मौत
3. 29 अक्तूबर 1962
4. 8
5. असंघोष

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

6. जाती की बू
7. ‘तीसरा पक्ष’
8. असंगघोष

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. ‘जाति की बू’ कविता पर टिप्पणी लिखिए।
2. असंगघोष की कविता में चित्रित दलित जीवन पर टिप्पणी लिखिए।
3. दलित समस्याएँ एवं समाधान पर टिप्पणी लिखिए।
4. ‘जाति की बू’ कविता के शीषर्क की सार्थकता पर टिप्पणी लिखिए।
5. असंगघोष की कविता में अभिव्यक्त दलित प्रतिरोध पर टिप्पणी लिखिए।

Reference

1. दलित साहित्य का सैन्दर्यशास्त्र - डॉ. शरणकुमार लिंबाले
2. दलित साहित्य के प्रतिमान - डॉ. एन. सिंह
3. दलित चेतना साहित्य एवं सामाजिक सरोकार - रमणिका गुप्ता
4. दलित चिंतन का आधुनिक परिदृश्य - डॉ. किरन हजारिका
5. दलित विमर्श समकालीन साहित्य चिन्तन - डॉ. पंडित गायकवाड
6. भारतीय दलित समस्याएँ एवं समाधान - डॉ. रामगोपाल सिंह
7. गाँधी और दलित, भारत-जागरण - श्री. भगवान सिंह

BLOCK - 06

आदिवासी साहित्य - कविता

इकाई 1

'स्टेज' - वाहरू सोणवणे

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- आदिवासी काव्य की वैचारिकी को समझ सकता है
- आदिवासी लेखन में कविता विधा के विविध रूपों को समझ सकता है
- आदिवासी समाज की भाषा संस्कृति और जीवन शैली को परिचित करता है
- आदिवासी काव्य लेखन से अवगत होने का अवसर मिलता है
- आदिवासी काव्य लेखन की आंतरिक संरचना को जानने का अवसर मिलता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

भारतीय समाज की संरचना यहाँ पायी जाने वाली विभिन्न जातियों, धर्मों, वर्गों एवं समूहों से मिलकर हुई है। भौगोलिक दृष्टि से भारतीय समाज को वन्य ग्राम और शहरी क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है। सभ्यता की विकास यात्रा वन्य क्षेत्रों से प्रारम्भ होकर महानगरों में आकर रुकती है। इस विकास क्रम में अभी भी ऐसे वन्य क्षेत्र है जहाँ के रहने वाले आदिवासियों को 'जनजाति' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। सभ्यता के विकास के बावजूद आज भी वे अपनी आदिम संस्कृति को जीने में संतोष व गर्व का अनुभव करते हैं।

Keywords / मुख्य बिन्दु

दलित साहित्य, लोकतांत्रिक, आत्मकेन्द्रित

Discussion / चर्चा

भारत में आदिवासी जनजातियों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एक वे जो वन क्षेत्रों के विकास होने के बाद सभ्य समाज के सम्पर्क में आए। दूसरे वे जो अभी भी विकास की राह देखते हुए आदिम जीवन ही जी रहे हैं। तथाकथित सभ्य समाज के सम्पर्क में आए आदिवासी जन अब केवल संस्कारों से ही आदिम हैं लेकिन अविकसित वन क्षेत्रों में अभी भी ऐसे स्थान है जहाँ इनका आदिम रूप विद्यमान है। भारत में पाए जाने वाले आदिवासियों के ऐसे अनेक कबीले अभी भी विद्यमान हैं जो अपनी रूढ़ियो, परम्पराओं और विश्वासों से जुड़े है। उनके अपने तीज-त्योहार है, उनका अपना खानपान और रहन-सहन है और इसके साथ ही उनकी अपनी समस्याएँ भी है।

आदिवासी कविता

आदिवासी समाज भारत का मूलनिवासी है उसी तरह उसका साहित्य भी इस धरती का है। यह समाज अति प्राचीन काल से ही अपनी जीवन शैली और सांस्कृतिक परम्पराओं के साथ अपना जीवन जंगलों में व्यतीत करता आ रहा है। आदिवासी समाज में साहित्य की परम्परा प्राचीन काल से ही वाचिक रही है। यह परम्परा गेय परम्परा के नाम से भी जानी जाती है। देश में सरकार द्वारा 20 वी सदी के अंतिम दशक में आर्थिक उदारीकरण और खुले व्यापार की नीतियाँ अपनायी गई। उस समय

से व्यवस्थित आदिवासी काव्य लेखन हिन्दी एवं हिन्दीतर भाषाओं में मिलना प्रारम्भ हुआ है। उदारीकरण की नीतियों से आदिवासी समाज के शोषण की नीतियों में तेजी आयी और इस शोषण के प्रतिरोध स्वरूप आदिवासी अस्मिता एवं अस्तित्व की रक्षा के लिए जो लड़ाई प्रारंभ हुई उसी से आदिवासी साहित्य सामने आया।

आदिवासी साहित्य में काव्य लेखन पर सबसे अधिक बल दिया गया था। आदिवासी समाज में आत्म की बजाय समूह पर ध्यान अधिक दिया जाता है। पर दूसरी तरफ दलित साहित्य में आत्म पर बल दिया जाता है। दलित साहित्य आत्मकन्द्रित होने के कारण उनके साहित्य में आत्मकथा प्रमुख विधा के रूप में उभरी है। आदिवासी साहित्यकार समूह में रहता है और समूह पर ही बल देता है इसीलिए आदिवासी साहित्य में कविता पर ज्यादा लेखन हुआ है। कविता में कभी भी आत्म की बात नही हो सकती है बल्कि समूह की बात अधिक विश्वसनीयता के साथ होती है। आदिवासी समाज में आत्म की बात घर नही कर पाई इसलिए जल, जंगल, ज़मीन का शोषण और उसका प्रतिरोध सामूहिकता में दिखलाई पड़ता है।

साहित्य की अन्य विधाओं की तरह जब हम कविता के सन्दर्भ में समाज के किसी विशेष वर्ग को लेकर चर्चा करते हैं तो सवाल उठ सकता है कि कविता तो कविता ही है, आदिवासी और गैर-आदिवासी कविता का यह भेद क्यों? आदिवासी के सन्दर्भ में यह बात महत्त्वपूर्ण है कि अन्य मानव समूह भी समाज की मुख्यधारा के ही अंग रहे हैं, चाहे वह हाशिए पर पड़ते रहते आये हों। इसके विपरीत आदिवासी मुख्यधारा के इर्द-गिर्द न रहकर सदैव से भौगोलिक स्तर पर अलग-थलग ही नहीं बल्कि दूर-दराज के जंगली पहाड़ी क्षेत्र का वाशिंदा रहा है। और दूसरी बात भाषा के स्तर पर भी वह शेष जगत से पृथक रहता आया है। इसीलिए यह जरूरी है कि आदिवासी जीवन के हर क्षेत्र पर पृथक से विमर्श होना चाहिए, चाहे वह कविता ही क्यों न हो।

आदिवासी कविता में अपनी संस्कृति, समाज और जीवन मूल्यों के प्रति गहरा लगाव व्यक्त होता है। इनकी कविताओं में आई प्रकृति परम्परागत प्रकृति से भिन्न है तथा आदिवासी जीवन और संस्कृति का मूलाधार है। इनकी कविताओं में अपने युग की पीड़ा, प्रकृति प्रेम, अपने अस्तित्व को बचाये रखने की समस्या, अपने पूर्वजाति के प्रति पूज्यभाव-ईश्वरवादी भावना से मोहभंग दिखाई देता है। इसी बात को राजेन्द्र अंकरे के शब्दों में कहे तो “कुल मिलाकर आदिवासी कविता से स्वतंत्रता, समानता, बंधुता, भूख, वर्ण जाति का अंत, मानवता आदि मूल्यों का विकास धीरे-धीरे हुआ दिख रहा है।” वर्तमान समय की सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में भी आदिवासी कविता का स्वर आता जा रहा है। जरूरत सिर्फ इस बात की है कि हम उसे कितना सही तरीके से समझ पाते हैं। रमणिका गुप्ता कहती हैं कि “यह (कविता) उनकी अस्मिता का विकास ही नहीं बल्कि उनके बदले हुए आदिवासी स्वर का द्योतक है।” इस प्रकार स्पष्ट है कि ये आदिवासी स्वर की कविताएँ केवल आदिवासी जीवनानुभव में सीमित रचनाएँ ही नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण मानवीय सरोकारों की अभिव्यक्ति हैं।

उद्देश्य एवं साहित्य समीक्षा

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। लोकतांत्रिक व्यवस्था मात्र एक राजनीतिक शब्द नही है इसका अपना एक सामाजिक स्वरूप एवं दायित्व होता है। सम्पूर्ण देश के सम्पूर्ण वर्गों का सर्वांगीण विकास लोकतंत्र की सफलता का मूल मंत्र है। लेकिन देश का आदिवासी आज अशिक्षा, शोषण, भूखमरी, उत्पीड़न, अत्याचार, बेदखली, बेकारी, बेरोजगारी, बंधुआ मजदूर, पलायन और विस्थापन जैसी समस्याओं से जूझते हुये अपने अस्तित्व के लिए लड़ रहा है जिसमें वह नितांत अकेला है। विकास की दौड़ में वह मीलों दूर रह गया है। उसकी व्यथा-कथा की आवाज़ शासन-प्रशासन तक पहुंचाने वाला कोई नही है। दिक्कूओं के लिए आदिवासी केवल वासना और पर्यटन की वस्तु मात्र है तो मीडिया के लिए सुर्खियां मात्र। ऐसे में आदिवासी साहित्य ही उनकी अभिव्यक्ति का एक मात्र माध्यम है। कवि वाहरू सोणवणे ने अपनी कविता के माध्यम से आदिवासी समाज की समस्याओं को जस का तस हमारे सामने रख दिया है। आदिवासी जीवन संवेदना अनुभूतियों, समस्याओं, संघर्ष और चेतना को समझने के लिए कवि वाहरू सोणवणे की कविता का अध्ययन बेहद आवश्यक प्रतीत होती है। सोणवणे ने कविता के माध्यम से आदिवासी जीवन की समस्याओं और अनुभूतियों को उजागर करने का प्रयास किया है।

प्रमुख आदिवासी कवि

आदिवासी रचनाकारों ने विगत तीन दशको की अपनी लेखनी के माध्यम से साहित्य जगत में पहचान बना ली है। आदिवासी साहित्यकारों ने प्रारम्भिक दौर में अपनी बोली एवं भाषा में लेखन कार्य किया था लेकिन आज आदिवासी लेखक हिन्दी भाषा में भी काव्य लेखन करके अपना प्रतिरोध दर्ज कर रहा है। आदिवासी काव्य लेखन की प्रमुख रचनाकारों में सुशीला सामद, रामदयाल मुंडा, वाहरू सोणवणे, हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो, वंदना टेटे, निर्मला पुतुल, सरिता बढाईक, ग्रेस कुजूर, सुषमा असुर, अनुज लुगुन, जसिता केरकेट्टा आदि है। इन सभी रचनाकारों ने अपने जीवन, संस्कृति, दर्शन और पुरखा साहित्य से प्रेरणा ग्रहण कर आदिवासी काव्यधारा को एक समृद्ध काव्यधारा के रूप में पहचान दिलाने के लिए प्रयासरत है। हिन्दी में कविता लेखन आदिवासीयों में सबसे पहले सुशीला सामद ने किया था इनका काव्य संग्रह 'प्रलाप' नाम से सन् 1934 ई में प्रकाशित हुआ था। हिन्दी में दूसरा आदिवासी काव्य संग्रह दुलायचन्द्र मुंडा का 'नव पल्लवन' नाम से सन् 1966 ई. में प्रकाशित हुआ था।

आदिवासी समाज आज के इस तथाकथित विकास के दौर में जल, जंगल, ज़मीन, भाषा, संस्कृति, परंपरा सहित अपने अस्तित्व के लिए जूझ रहा है। देश के विकासात्मक मॉडल में आदिवासी कही भी परिभाषित नही हैं। बाकी समाज और शासन-प्रशासन आदिवासी समाज के विकास से बेखबर है। सरकार और पूँजीपति औद्योगिक घराने उनकी ज़मीन, जंगल और जल को छीनते हुए उन्हें बेदखल करते जा रहे हैं। विकास की कई सीढियां पार कर चुका भारतीय समाज और राजनीति आदिवासियों के हित में नहीं सोच पा रहा है। आदिवासियों को समाज सुधार आन्दोलनों राजनीतिक चेतना तथा तमाम सुधारात्मक प्रयासों के क्षेत्र से बाहर रखा गया है। इसके कारण आज भी वह आत्मसम्मान और गौरव के भाव से दूर है।

वाहरू सोणवणे एवं उनकी कविता

वाहरू सोणवणे मूलतः मराठी भाषा के कवि है। इनकी कविताएं मराठी और भिलोरी भाषा से अनुदित होकर हिन्दी में आ रही हैं। वाहरू सोणवणे महाराष्ट्र के भील समुदाय के महत्वपूर्ण कवि हैं। शायद पहला आधुनिक कवि। इसलिए उनके पास कविता रचना में शामिल होने के लिए एक ऐसा विपुल संसार है जिस तक रचना की किरणें अब तक नहीं पहुंची हैं। उन्होंने मराठी में भी काफी कुछ लिखा है और इस भाषा में उनका नाम जाना पहचाना है। लेकिन उनका वास्तविक स्वर भिलोरी कविताओं में और भी उभर कर आया है जिसमें वे उन शब्दों से कविता रचना का उपक्रम करते रहे हैं। वे शब्द आज तक समुदाय की बोली बानी से ऊपर उठ कर किसी लिखित साहित्य का उपादान नहीं बन सके। कवि बाहरू अपनी हर कविता में संभावना का एक नया द्वार खोलते हैं। उनके पास एक निरन्तर जटिल होते समाज में जी रहे आदिवासी जीवन की भूख है, करूणा है और विडम्बनाएं भी। कहीं उनका संघर्ष सामने आता है, तो कहीं कवि विसंगतियों और उत्पीडनों से जूझने के लिए उन्हें ललकारता हुआ भी दिखता है।'

कवि वाहरू की कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे एक अत्यन्त पिछड़े समाज के सरल से लगने वाले सुख-दुःख को देशी मुहावरे में व्यक्त कर रहे हैं। उनके दृष्टिकोण न केवल आधुनिक है बल्कि एक बड़े 'विजन' क है। वे अधिकार की बात करती हैं, दुःख के लिए फुसफुसाती हैं, डराती है, धमकाती है, मारती भी हैं।

तो उनको डराया जाता है, धमकाया जाता है, मारा भी जाता है। वाहरू को दुःख इस बात का है कि आदिवासी का दुःख व्यवस्थाकारों के लिए अपना दुःख कभी नहीं बना। कवि वाहरू की कविता में आदिवासी समाज पूरी विद्रूपता और यथार्थ के साथ व्यक्त हुआ है। जो लोग देश का आदर्शवादी चेहरा सबके सामने लेकर घूम रहे है वे आदिवासी को समझते नहीं।

'स्टेज'

हम मंच पर गए ही नहीं,
और हमें
बुलाया भी नहीं गया,

उँगली के इशारे से
हमारी जगह
हमें दिखाई गई
हम वहीं बैठे रहे
हमें मिली शाबाशी !

और वे
स्टेज पर खड़े हो
हमारा दुःख-दर्द,
हम पर हो रहे अत्याचार
और हमारे शोषण
को बताते चिल्लाते रहे —

ऐ आदिवासी भाईयो !
अब दुःख-दर्द मत सहो।

हमारा दुःख-दर्द
हमारा ही रहा,
कभी उन सत्ताधारियों का
नहीं बना

हमारी शंकाएँ,
हमने बड़बड़ाईं
कान लगाकर सुनते रहे,
हमारा दर्द हमें ही

सुनाते-सुनाते चीख़ रहे हैं
पर कहीं
उनके भाषण में सुधार की कोई आशा नहीं

और निःश्वास छोड़ा तथा हमारे कान
पकड़ कर धमकाया
माफ़ी मांगो नहीं तो...?

तुम जंगल में
क्यों बसे हो ?
तुम्हें बेदखल किया जाएगा।

तुमने गुनाह किया है !
उसकी
कड़ी सज़ा मिलेगी,

यह बात हमसे
पालतू तीतर ने कही
जो सत्ता के पिंजरे में क़ैद है !

कवि वाहरू सोणवणे ने अपनी कविता के माध्यम से आदिवासियों की जर्जर ज़िन्दगी और उभरती चेतना को वाणी दी है। उनके पास कविता रचना में शामिल होने के लिए एक ऐसा विपुल संसार है जिस तक रचना की किरणें अब तक नहीं पहुंची है। कवि वाहरू की कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये एक अत्यन्त पिछड़े समाज के सरल से लगने वाले सुख-दुःख को देशी मुहावरे में व्यक्त कर रहे हैं। उनका दृष्टिकोण आधुनिक है। वे बड़े विज़न के कवि हैं। देश के आदिवासी जब अपने हक की बात करते हैं दुःख के लिए फुसफुसाते हैं, तो उनको डराया जाता है, धमकाया जाता है, मारा भी जाता है।

वाहरू को दुःख इस बात का है कि आदिवासी का दुःख व्यवस्थाकारों के लिए अपना दुःख कभी नहीं बना। वाहरू सोणवणे की कविता आदिवासी साहित्य लेखन में जबर्दस्त ढंग की महसूस होती है। क्योंकि अब तक साहित्य व चर्चाओं में आदिवासी उपेक्षित व गायब ही रहे हैं। बल्कि उनको अमानवीय ढंग से दूर रखा गया। केवल उसे भीड़ जुटाने का सामान समझा गया। मंच कविता में ये इस सच को उजागर करते है-

'हम मंच पर गये ही नहीं, और हमें बुलाया भी नहीं
ऊँगली के इशारे से हमें अपनी जगह दिखाई गयी
हम वहीं बैठ गये हमें शाबाशी मिली
और वे मंच पर खड़े होकर
हमारे दुःख हमसे ही कहते रहे।'

कवि वाहरू सोणवणे की कविता आदिवासी साहित्य चेतना के इतिहास में मील का पत्थर है। कविता का शिल्प विषय और अनुभूति की गहराई और वास्तविकता के कारण अपने आप चित्रों में चित्रबद्ध होकर ढल-सा गया है। जब वाहरू सोणवणे ने अपनी कविता को कविता से अनजान आदिवासियों को सुनाया तो उनकी प्रतिक्रिया थी कि 'सही है भाई बिल्कुल सही है। सच है कि ये कविता नहीं- यह तो हमारा जीवन है जिसे तुमने जस का तस उतार कर रख दिया है।' आदिवासी जीवन, समस्या, संघर्ष और चेतना को समझाने के लिए कवि

वाहरू सोणवणे की कविता बेहद आवश्यक प्रतीत होती है। दलित और आदिवासियों के सामने आज भी लोकतंत्र और आजादी का कोई अर्थ नहीं रह गया है। लोकतांत्रिक निर्माण प्रक्रिया में दलित-आदिवासी उपेक्षित होकर हाशिए पर धकेल दिये गये हैं। वह विकास की ओर कदम बढ़ाता भारत किसानों, दलितों और आदिवासियों को रौंदता हुआ आगे बढ़ रहा है। इनमें भी आदिवासियों के शोषण की कहानी आज नये-नये मोड़ लेती जा रही है। सरकार और पूँजीपति औद्योगिक घराने उनकी ज़मीन, जंगल और जल को छीनते हुए उन्हें बेदखल करते जा रहे हैं। विकास की कई सीढियाँ पार कर चुके भारतीय समाज और राजनीति आदिवासियों के हित में नहीं सोच पा रहे हैं। आदिवसियों को समाज सुधार आन्दोलनों, राजनीतिक चेतना तथा तमाम सुधारात्मक प्रयासों के क्षेत्र से बाहर रखा गया। इसके कारण आज भी वह आत्मसम्मान और गौरव के भाव से दूर है। वाहरू सोणवणे ने अपनी कविता के माध्यम से इन आदिवासियों की जर्जर जिन्दगी और उभरती चेतना को वाणी दी है।

Critical Overview / अवलोकन

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कवि वाहरू सोणवणे ने अपनी कविता में आदिवासी जीवन के दर्द, भारतीय लोकतंत्र की विफलता और व्यवस्था परिवर्तन की गंभीर बात कही है। उन्होंने आदिवासियों के संतापों और शोषण की गहराई को नापने की कोशिश के साथ ही शोषण के खिलाफ उठती विषम चिनगारी को भी आवाज़ दी है। ये लोग वर्षों से लोकतंत्र की छाया में भी उपेक्षित और शोषित जीवन जीने को क्यों विवश है? क्यों सामाजिक लोकतंत्र और आर्थिक स्वतंत्रता व आत्मनिर्भरता इनके लिए सपने की वस्तु बनी हुई है? देश में परिवर्तन की बात चारों ओर हवा बनकर उठ रही है। मानवाधिकार और सुशासन को कायम करने की बात जोर-शोर से कही जा रही है पर इनकी बदहाली ज्यों की त्यों बनी हुई है। इनकी आवाज शासन और प्रशासन के कानों तक नहीं पहुँच पाती है। जब ये ही लोग विवश होकर हाथ में हथियार लेते हैं या इनकी हिमायत कोई करता है तो उसे क्यों मार दिया जाता है या जेल की हवा क्यों खिला देते है? आदि ऐसे प्रश्न है जो वर्तमान व्यवस्था के लिए यश प्रश्न हैं। इनका समाधान हुए बिना भारत की लोकतांत्रिक निर्माण प्रक्रिया पूर्ण नहीं कही जा सकती। आदिवासी उसी तरह रहने जीने और विकास के हकदार हैं जैसे शेष नागरिक। आदिवासी अशिक्षित और बिखरा हुआ है 'उसका अपना कोई नेतृत्व नहीं है। नेतृत्व तो रहा था, वह मुख्यधारा के लोगों द्वारा उपेक्षित रहा। जैसे स्वाधीनता आन्दोलन में आदिवासियों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। बिरसा मुंडा जैसे लोगों के नाम तो सामने आते ही हैं। तमाम जगहों पर आदिवासियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। पर मुख्यधारा के लोगों को बडे नायक बनाए गये तथा उन्हें इतिहास में दर्ज भी किया गया।

Recap / पुनरावृत्ति

- आदिवासियों को 'जनजाति' के नाम से सम्बोधित किया जाता है।
- आदिवासी समाज भारत का मूलनिवासी है।
- आदिवासी साहित्य में काव्य लेखन पर सबसे अधिक बल दिया गया था।
- आदिवासी कविता में अपनी संस्कृति, समाज और जीवन मूल्यों के प्रति गहरा लगाव व्यक्त होता है।
- वाहरू सोणवणे की कविता आदिवासी साहित्य लेखन को जबर्दस्त ढंग से महसूस कराती है।
- आदिवासी जीवन, समस्या, संघर्ष और चेतना को समझाने के लिए कवि वाहरू साणवणे की कविता बेहद आवश्यक प्रतीत होती है।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वाहरू सोणवणे मूलतः किस भाषा के कवि है?
2. 'स्टेज' किसकी रचना है?
3. आदिवासियों को किस नाम से सम्बोधित किया है?
4. आदिवासी काव्य लेखन की प्रमुख रचनाकारों के नाम लिखिए?
5. आदिवासी साहित्य में किस विधा को अधिक बल दिया गया?
6. हिन्दी में आदिवासी कविता लेखन की शुरुआत किसने की?
7. हिन्दी का दूसरा आदिवासी काव्य संग्रह कौन-सा है?
8. हिन्दी का प्रथम आदिवासी काव्य संग्रह 'प्रलाप' कब प्रकाशित हुआ?

Answers / उत्तर

1. मराठी।
2. वाहरू सोणवणे।
3. 'जनजाति'।
4. सुशीला सामद, रामदयाल मुंडा, वाहरू सोनवणे, हरिराम मीणा, महादेव टोपो, वंदना टेटे, निर्मला पुतुल, सरिता बढाईक, ग्रेस कुजूर, सुषमा असुर अनुज लुगुन, जन्सिता केरकेट्टा आदि।
5. कविता
6. सुशीला सामद
7. नव पल्लवन
8. 1934

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. आदिवासी कविता के बारे में टिप्पणी लिखिए।
2. प्रमुख आदिवासी कवियों पर आलेख तैयार कीजिए।
3. वाहरू सोणवणे के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
4. आदिवासी कविताओं के उद्देश्य पर टिप्पणी लिखिए।
5. आदिवासी कविता की विशेषताएँ क्या है?

Reference

1. आदिवासी साहित्य - स्वरूप एवं विश्लेषण - डॉ. . शेख राहेनाज बेगम अहेमद।
2. हिन्दी साहित्य में आदिवासी एवं स्त्री विमर्श - डॉ. . सविता चौधरी।
3. आदिवासी साहित्य विविध आयाम - संपादक. डॉ. रमेश सम्भाजी कुरे, डॉ. मालती घोडोपंत शिंदे।
4. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी - सं. रमणिका गुप्ता।
5. मराठी साहित्य : परिदृश्य - चंद्रकांत बांदिवडेकर।
6. मराठी साहित्य और संस्कृति - डॉ. पंडित बन्ने।

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

इकाई 2

'मैं ने अपने आंगन में गुलाब लगाई'- निर्मला पुतुल

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- निर्मला पुतुल के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- आदिवासी जीवन के बारे में अवगत होता है
- निर्मला पुतुल की रचनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त होता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

वर्तमान युग के हिन्दी साहित्य में आदिवासी साहित्य एक विशेष पहचान बनाते हुए नज़र आता है। आदिवासी समुदाय में नए-नए साहित्यकार उभर कर सामने आ रहे हैं। इन साहित्यकारों में निर्मला पुतुल का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। निर्मला पुतुल आदिवासी महिला साहित्य जगत की सशक्त रचनाकार हैं। निर्मला पुतुल की कविताएँ समाज का दर्पण है। संथाली समाज के भोलेपन, मेहनत, और प्रकृति से जुड़ाव के पक्ष को लोगों के सामने रखा है। नशा, अशिक्षा और कई बुराईयों को समाज के सामने प्रस्तुत किया है। आदिवासी समाज के अनछुए पहलुओं को सबके सामने रखा है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

मानवाधिकार, पितृसत्तात्मकता, विस्थापन, भूमंडलीकरण, सत्ताधारी, समसामयिक समस्या

Discussion / चर्चा

कविता मानव मन के भावों की सशक्त अभिव्यक्ती का सार्थक माध्यम रही है। आदिवासी कविता से यह तात्पर्य है आदिवासी एवं आदिवासियों की संस्कृति, नृत्य, भाषा, संवेदना जैसे समग्र जीवन से अपना अहं संबंध रखने वालों द्वारा लिखी गयी कविता को हम आदिवासी कविता कह सकते हैं। आदिवासी कविता वह कविता है, जिस में आदिवासियों का जीवन, दुःख, संस्कृति एवं मान्यताओं की वास्तविकता को अभिव्यक्ति मिलती है।

निर्मला पुतुल

हिन्दी साहित्य की चर्चित आदिवासी कवयत्री निर्मला पुतुल का जन्म 8 मार्च 1972 को झारखंड दुमका जिले के दुधानी में हुआ। वे सिरिल मुर्मु और कांदिनी हांसदा की पुत्री थीं। उनकी पढ़ाई और नौकरी से संबंधित परेशानियाँ जारी थी। इसी बीच में उनकी शादी भी हुई थी, बच्चे भी हुए थे। मगर अफसोस है कि वह शादी ज्यादा दिन टिक नहीं पायी। उन्हें संथाली, अंग्रेजी, हिन्दी, खोरठा, बंगला, भोजपुरी, अंगिका, नागपुरी आदि भाषाओं का सम्यक ज्ञान है। लेखन, अध्यापन, संपादन, अनुवाद, पत्रकारिता, भाषाविज्ञान, तकनीक आदि में वे प्रवीण हैं। वे शिक्षा, सामाजिक विकास, मानवाधिकार और महिलाओं के उन्नमन हेतु व्यक्तिगत एवं संस्थागत स्तर पर कार्यरत हैं। फिर भी, उनके सृजनकार की अहमियत कभी फीकी नहीं पडी है। आदिवासी समाज की शोषित स्थिति को उन्होंने पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया। सामाजिक प्रतिबद्धता को निष्ठा बनाकर चलनेवाली कवयित्री निर्मला

पुतुल फिलहाल में 'जीवन रेखा' संस्थान का सचिव एवं निर्वाचित मुखिया हैं।

उनका शैक्षिक काल संघर्षमय रहा। उनके पिता और चाचा शिक्षक होने के बावजूद भी आर्थिक संतुलन के अभाव ने उनके शैक्षिक जीवन में बाधा डाली। फिर भी वे टिकी रही। उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा दुमका, दुधानी और कुरुवा से प्राप्त की थी। वे इंटरमीडिएट थी। उन्होंने राजनीतिशास्त्र में स्नातक डिग्री हासिल की और अपने परिवार को आर्थिक तनाव से बचाने खातिर नर्सिंग में डिप्लोमा की शिक्षा भी ली। वे नर्स बनकर कुछ अस्पतालों में सेवानिष्ठ थी।

कविता-लेखन की शुरुआत मातृभाषा संताली में की थी। फिर हिन्दी में भी लिखने लगी। उनकी कविताएँ अपनी विद्रोही स्वर और अपने समाज की यथार्थपरक अभिव्यक्ति के लिए प्रशंसित हुईं। उनका पहला कविता संग्रह 'अपने घर की तलाश में' संताली-हिन्दी द्विभाषिक संग्रह के रूप में 2004 में प्रकाशित हुआ। हिन्दी के बृहत चर्चा-प्रदेश में उनका प्रवेश 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' (2005) कविता-संग्रह के साथ हुआ। इसे पहली बार जंगल के बाहर शहर में किसी आदिवासी स्त्री द्वारा कविता के स्वर में अपने अस्तित्व का नगाड़ा बजाने की घटना की तरह देखा गया। एक आदिवासी स्त्री द्वारा उसके 'स्व' की तलाश, पुरुष व्यवस्था और पितृसत्तात्मकता के प्रति विद्रोह, आदिवासी समाज और आदिवासी स्त्री की वेदना, आदिवासी समाज व्यवस्था के गुण-दोष, तथाकथित सभ्य शहरी समाज पर व्यंग्य, मुक्ति की कामना जैसे बृहत विमर्श बिंदुओं में उनकी कविताओं का पाठ हुआ। उनका तीसरा कविता-संग्रह 'बेघर सपने' 2014 में प्रकाशित हुआ।

निर्मला पुतुल मूलतः संथाली भाषा की कवयित्री हैं। उनका प्रसिद्ध काव्यसंग्रह 'नगाड़े की तरह बजते शब्द आदिवासी जीवन का जीवंत दस्तावेज' है। जिसका हिन्दी रूपांतर अशोक सिंह ने किया है। निर्मलाजी की कविताएँ सवाल पूछती और प्रश्नचिन्ह उपस्थित करती हुई आगे बढ़ती हैं। साहित्य की समग्र विधाओं में कविता ही एक ऐसा माध्यम है जो कम शब्दों में संपूर्ण इतिहास को उजागर करता है। पुतुल की कविता को झारखंड के इतिहास और उसके जनजीवन से अलग करके नहीं समझ सकते क्योंकि इन कविताओं में उनका इतिहास नगाड़े की चोट पर बोलता है।

उनकी कविताओं का अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषाओं में हुआ है। उनकी कविताएँ पाठ्य-पुस्तकों में भी शामिल की गई हैं। विभिन्न विश्वविद्यालयों में उनकी कविताओं पर शोध-प्रबंध लिखे गए हैं। उनके जीवन पर आधारित फ़िल्म 'बुरू-गारा' को वर्ष 2010 में राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कार प्राप्त हुआ।

निर्मला पुतुल की रचनाएँ

1. नगाड़े की तरफ बजते शब्द (प्रथम काव्य संग्रह)
2. अपने घर की तलाश में
3. बेघर सपने
4. ईवाक (संथाली में प्रकाशन)
5. ओइक सेदरा रे (संथाली में प्रकाशन)
6. ओनोड सेदरा रे (संथाली में प्रकाशन)
7. नगाड़े की तरह बजते शब्द (मराठी भाषा में अनूदित)
8. फूटेगा एक नया विद्रोह

सम्मान

1. साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा भाषा सम्मान।
2. झारखंड सरकार द्वारा राजकीय सम्मान।
3. नागरी लिपि परिषद, दिल्ली द्वारा विनोबा भावे सम्मान।
4. हिमाचल प्रदेश हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित।
5. भारतीय भाषा परिषद कोलकत्ता द्वारा युवा सम्मान।
6. सेंटर फॉर दलित लिटरेचर एंड आर्ट द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय दलित अस्मिता सम्मान।

'मैं ने अपने आंगन में गुलाब लगाई'

इस उम्मीद से कि उसमें फूल खिलेंगे
लेकिन अफ़सोस कि उसमें काँटें ही निकले
मैं सींचती रोज़ सुबह-शाम
और देखती रही उसका तेज़ी से बढ़ना।

वह तेज़ी से बढ़ा भी
पर उसमें फूल नहीं आए
वो फूल जिससे मेरे सपने जुड़े थे

जिससे मै जुड़ी थी

पर लम्बी प्रतीक्षा के बाद भी
उसमें फूल का नहीं आना
मेरे सपनों का मर जाना था।

एक दिन लगा कि मैं
इसे उखाड़कर फेंक दूँ
और इसकी जगह दूसरा फूल लगा दूँ

पर सोचती हूँ बार-बार उखाड़कर फेंक देने
और उसकी जगह नए फूल लगा देने से
क्या मेरी ज़िन्दगी के सारे काँटें निकल जाएंगे?

हक़ीकत तो यह है कि
चाहे जितने फूल बदल दें हम
लेकिन कुछ फूलों की नियति ही ऐसी होती है
जो फूल की जगह काँटें लेकर आते हैं
शायद मेरे आँगन में लगा गुलाब भी
कुछ ऐसा ही है मेरी ज़िन्दगी के लिए।

निर्मला पुतुल आदिवासी लेखिकाओं में एक सशक्त एवं सफल रचनाकार हैं। अपनी इस सफलता, प्रेरणा और शक्ति का श्रेय वह तस्लीमा नसरीन की कविताओं को मानती हैं। उनकी कविताओं से ही प्रेरित होकर निर्मला ने कविताएँ लिखी। निर्मला ने अपनी कविताओं में आदिवासी समुदाय तथा आदिवासी स्त्री की संवेदना को बड़ी शिद्दत से व्यक्त किया है। उनकी कविताएँ ज़मीन से जुड़ी हुई हैं। उनकी कविताओं में एक आदिवासी स्त्री की तड़प साफ़ दिखाई देती है। साथ में उपेक्षित आदिवासी जीवन की व्यथाएँ भी वर्णित है। इन्होंने आदिवासी समाज की विसंगतियों को तल्लीनता से उकेरा है। आदिवासी समाज की कड़ी मेहनत के बावजूद अशोचनीय स्थिति, अंधविश्वास, पुरुष वर्चस्व, स्वार्थ के लिए पर्यावरण की हानि, आदिवासी समाज का दिक्कूओं के द्वारा शोषण आदि निर्मला पुतुल की कविताओं के केंद्र में है।

निर्मला पुतुल की कविताएँ आदिवासी जीवन के अनछुए पहलुओं से रूबरू कराती हैं। उनकी काव्य संवेदना में युग परिवेश की यथार्थ आवाज़ गूंजती है। उन्होंने अपने समय और समाज को उसकी सारी विभीषिकाओं के साथ अनुभव किया है। उनकी काव्य संवेदना अपने समय की सामाजिक व्यवस्था और समस्याओं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है।

नागपुरी पत्रिका 'गौतिया' के संपादक वीरेंद्र कुमार महतो निर्मला पुतुल की कविताओं पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं 'निर्मला पुतुल का एक-एक शब्द दिल पर चोट करता है, हमें सोचने को मजबूर कर देती है, जितनी भी उनकी कविताओं की तारीफ़ की जाए कम होगी।' निर्मला पुतुल ने अपने यथार्थ जीवन अनुभव एवं परिवेश को अपनी लेखनी के माध्यम से व्यक्त किया है। उन्होंने एक संवेदनशील कवयित्री के रूप में अपनी मार्मिक अंतर्दृष्टि और अनुभव संसार के वैविध्य से आदिवासी समाज और स्त्री जीवन को अपनी रचनाओं में समेटने का प्रयास किया है।

उनकी कविताएँ आदिवासी समाज की पीड़ा, विस्थापन का दर्द, आदिवासी स्त्रियों की दशा का चित्रण करती हैं तो दूसरी ओर पाठक के हृदय में छिपी हुई संवेदना को गहराई से प्रभावित करती हुई भी दिखाई देती है। उनकी काव्य संवेदना आदिवासी समुदाय के प्रति अधिक संवेदनशील दिखाई देती है। भूमंडलीकरण के कारण सभी देश एक-दूसरे के करीब आ रहे हैं परंतु देश का मूलनिवासी आज भी पहाड़ी जंगलों में रहने के लिए मजबूर है। विकास की कोई सड़क उन तक नहीं पहुँच पाती। शिक्षा, बेरोज़गारी, विस्थापन, स्त्री का दर्द, भुखमरी, शराब आदि की समस्या को निर्मला ने अपनी कविताओं में प्रकट किया है। रेखा सेठी निर्मला पुतुल की कविताओं के बारे में कहती हैं- "निर्मला पुतुल का काव्य ससार एक अलग दुनिया खोलता है। वास्तविकता और वैचारिकता के अंतर को यहाँ शिद्दत से महसूस किया जा सकता है। अधिकांशतः स्त्री कविता की पहचान पितृसत्तात्मक व्यवस्था से मुक्ति की आकांक्षा में रची एवं पढ़ी जाती है किंतु यहाँ आदिवासी समाज का हाशिएकरण उसे एक अतिरिक्त आयाम देता है। निर्मला पुतुल अपनी कविताओं में आदिवासी समाज के अन्तर्विरोध को गिनते हुए यह स्थिति के प्रतिकार के लिए कविता का अभियान छोडती है"।

हरेक साहित्यकार अपने वातावरण और परिवेश से

गहरा प्रभावित है। पुतुलजी आदिवासी की जिन्दगी अपने परिवेश में खुद जी रही है और उसे नजदीक से देख रही है। आदिवासी सुरक्षा के नाम पर कई योजनाओं की घोषणा होते हुए भी जंगलों में रहने वालों को उतना हक़ अभी तक नहीं मिला जितने को वे हकदार हैं। सारी योजनाएँ बाहरी समाज के सत्ताधारी और व्यावसायिक नेताओं को जंगल के खनिज, प्राकृतिक संपदाओं तक पहुँचाने का मार्ग मात्र है। पुतुलजी की कविताओं में चित्रित आदिवासी जनता अधिकतर संथाल परगना की है। कई कविताओं के पात्र जीवन के वास्तविक पक्ष से है, कल्पित नहीं। चुड़का सोरेन, सजोनी किस्कू, बाहामुनी जैसे पात्र हमारे दिल में भी चोट लगाती है। इनमें व्याप्त आदिवासी चेतना में संथाल समुदाय के साथ-साथ पूरे आदिवासी समाज आज भोग रही त्रासदी का उल्लेखन है। अतः उनकी लेखनी उत्तराधुनिक परिप्रेक्ष्य में पीड़ित एक जनविभाग की विवशता और निराशा की वाणी बन जाती है। जंगलों में निरंतर शोषण के शिकार बने, जल, जंगल, ज़मीन, पहाड़ जैसी अपनी प्राकृतिक देवताओं को संरक्षण प्रदान कर, अशिक्षित और वंचित एवं क़ानून के कागजों में होते हुए भी सत्ताधारियों की दृष्टि से हमेशा दूर रही एक वर्ग की वेदना है। उन्हें बसने को घर नहीं हैं, पढने को स्कूल नहीं है, अतः स्कूल होते तो उसमें उनकी अपनी भाषा नहीं है। अच्छे अस्पतालें नहीं है, अपनी शिकायतें निस्संदेह कहने को कोई नेता नहीं है। ये सब उनके लिए प्रस्तुत वादाओं में और पारित कानूनों में है। बल्कि सरकारी निधि केवल एजेंटों तक आते हैं और संविधान से पारित कई आरक्षण-संरक्षण से वे आज भी वंचित रहते हैं। पुतुलजी ऐसे एक समाज की सच्चाइयों को ज़ोर से कहना चाहती है। उसके समाधान स्वयं खोज लेती है। अपनी पीढ़ी को जागृति प्रदान कर कई सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं में कार्यरत उनकी समाज सेवी लेखनी, प्रकृति और मानव के प्रति अपनी क्रांतदर्शिता प्रकट करती हैं। अपने समाज के अनसुलझे सवालों को, सांस्कृतिक उन्मूलन को, राजनीतिक शोषणों को, आर्थिक अभावों को और इन सबके प्रति अपनी विद्रोहात्मक चेतना को वे खुलकर प्रकट करती है। आदिवासी समाज के बाहर जाकर नगरीय समाज की सुविधाओं में स्वयं भूले गए कई आदिवासी उनके चारों ओर है। विस्थापन या रोज़गार के नाम पर महानगरों की ओर पलायन करने को विवश होकर आज भी वहाँ हाशिए की नरक तुल्य ज़िन्दगी बिता रहे अनेक हैं। अन्न से लेकर सारी बुनियादी आवश्यकताओं से वंचित एक समूह की त्रासदी की पेश से उनकी कविताएँ जीवंत हो उठती हैं।

उत्तराधुनिक युग में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक चेतना के संबंध में उदित सारे बदलावों का सक्रिय आधार विद्रोहात्मकता है। युगीन माँगों के अनुरूप विचारधारा को सामाजिक मूल्य और दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने के लिए तर्कशील व्यवहारों से साहित्यिक प्रतिनिधियों ने अपना लिया। आज की अस्मितावादी साहित्यिक कृतियों से इसका असर पाठक वर्ग में विद्रोहात्मक चेतना का प्रसारण करके क्रांति का आह्वान करते रहते हैं। परिवेश गत कुंठा और समसामयिक समस्याओं के प्रति विरोध करने की छटपटाहट से इसकी गतिशीलता उत्तरोत्तर बढ़ रही है। पुनरुत्थान के अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक आन्दोलनों के इतिहास वाली, विशेषकर भारत के सुदूर जंगलों में संथाल परगना में आज भी शोषण एवं अभावों के बीच दैनिक जीवन भोगते आदिवासी समाज के युगीन सत्य को पुतुलजी अपनी लेखनी से दुनिया के सामने अवतरित करती हैं। असल में उनकी कविताओं में चित्रित सारा कथ्य खुद भोगी कुरीतियों के प्रति विरोध ही है। वास्तविक अनुभवों के अंगारे से उदित वही विरोध और प्रतिरोध कभी विद्रोह का स्वर अपनाते हैं तो कभी आक्रोशजन्य भाषा के माध्यम से प्रतिरोध का। अरुण कमल के शब्दों में 'यह ऐसी कविता है जिसमें एक साथ आदिवासी लोकगीतों की सान्द्र मादकता, आधुनिक भावबोध की रूक्षता और प्रतिरोध की गंभीर वाणी गुम्फित है।'

Critical Overview / अवलोकन

निर्मला पुतुल जी ने आदिवासी साहित्य और स्त्री विमर्श पर प्रचुर मात्रा में लिखकर अपनी पहचान बनाई है। इनकी रचनाओं में आदिवासी समाज (विशेषकर आदिवासी स्त्री) की पीड़ा, पर्यावरण को बचाए रखने की चिन्ता प्रतिबिंबित होती है। निर्मला पुतुल जी की कविताओं को पढते हुए आदिवासी समाज की सहजता जीवंतता के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। निर्मला पुतुल आज स्त्रियों और विशेष रूप से आदिवासी स्त्रियों की पीड़ा को प्रतिरोध के साथ उजागर करती है।

निर्मला पुतुल अपनी कविताओं के ज़रिये विकास और

प्रगति की पूरी धारणा पर सवाल उठाती हैं। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज के उन पक्षों को आगे लाने की कोशिश की है जो आमतौर पर लोगों की नज़रों से ओझल हो जाता है। उनकी कविताओं में आदिवासी महिलाओं की पीड़ा एवं समस्याएँ स्पष्ट रूप से नज़र आती हैं। निर्मला की कविताओं में झारखंड तथा आदिवासी समुदाय की संस्कृति का सौंदर्यपूर्ण चित्रण भी साफ़ दिखता है। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से आदिवासी समाज के अनछुए पहलुओं को सबके सामने रखा है।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि निर्मला पुतुल संवेदनशील कवयित्री हैं। उनकी रचनाओं में व्यवस्था के प्रति कड़वाहट एवं आदिवासी स्त्री का संघर्ष दिखाई देता है। अपनी कविताओं में उन्होंने जीवन अनुभव को सहजता से व्यक्त किया है। उनकी संवेदना में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, आदिवासी स्त्री आदि के विचार भाव को यथार्थ रूप में स्पष्ट किया है। निर्मला ने इन दुखों को खुद भोगा है और बहुत क़रीब से देखा भी है इसीलिए उनकी कविताएँ सीधे हृदय पर चोट करती है। निर्मला पुतुल की कविताओं की ज़मीन स्वानुभूति की अपनी ज़मीन है। आदिवासियों के हक की ज़मीन है। पुतुल की लड़ाई केवल तथाकथित समाज के विरुद्ध ही नहीं बल्कि अपने समुदाय में पनप रहे महाढोंगियों के विरुद्ध भी है। निर्मला पुतुल की कविता आदिवासी जीवन के दुःख-दर्द को बयान करती है।

Recap / पुनरावृत्ति

- हिन्दी साहित्य की चर्चित आदिवासी कवयित्री है निर्मला पुतुल।
- निर्मला पुतुल की कविताओं का अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषाओं में हुआ है।
- निर्मला पुतुल जी ने आदिवासी साहित्य और स्त्री विमर्श पर प्रचुर मात्रा में लिखकर अपनी पहचान बनाई है।
- निर्मला पुतुल की कविताएँ पाठ्य-पुस्तकों में भी शामिल की गई हैं।
- निर्मला पुतुल जी ने अपनी कविताओं में आदिवासी समुदाय तथा आदिवासी स्त्री की संवेदना को बड़ी शिद्दत से व्यक्त किया है।
- निर्मला पुतुल जी की काव्य संवेदना अपने समय की सामाजिक व्यवस्था और समस्याओं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है।
- निर्मला पुतुल जी ने अपनी कविताओं में उन्होंने जीवन अनुभव को सहजता से व्यक्त किया है।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निर्मला पुतुल का जन्म कब हुआ?
2. निर्मला जी की किस फिलिम को राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कार प्राप्त हुआ।
3. निर्मला जी का प्रथम काव्य संग्रह कौन सा है?
4. निर्मला पुतुल को झारखंड सरकार द्वारा किस सम्मान प्राप्त हुआ?
5. 'मैं ने अपने आंगन में गुलाब लगाई'- किसकी रचना है ?
6. निर्मला जी की मराठी भाषा में अनूदित रचना क्या है?
7. निर्मला जी कविता-लेखन की शुरुआत किस भाषा में की थी?
8. निर्मला पुतुल मूलतः किस भाषा की कवयित्री हैं।

Answers / उत्तर

1. 8 मार्च 1972
2. 'बुरू-गारा' को वर्ष 2010 में राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कार प्राप्त हुआ।
3. 'नगाड़े की तरफ बजते शब्द'
4. झारखंड सरकार द्वारा राजकीय सम्मान प्राप्त हुआ।
5. निर्मला पुतुल
6. नगाड़े की तरह बजते शब्द (मराठी भाषा में अनूदित)
7. कविता-लेखन की शुरुआत मातृभाषा संताली में की थी।
8. निर्मला पुतुल मूलतः संथाली भाषा की कवयित्री हैं।

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. निर्मला पुतुल के व्यक्तित्व और कृतित्व पर टिपण्णी तैयार कीजिए।
2. निर्मला जी की प्रमुख रचनाएँ लिखिए।
3. हिन्दी साहित्य की चर्चित आदिवासी कवयित्री निर्मला पुतुल के बारे में अपना विचार व्यक्त कीजिए।
4. निर्मला पुतुल और आदिवासी कविता।

Reference

1. आदिवासी साहित्य - स्वरूप एवं विश्लेषण - डॉ. शेख राहेनाज बेगम अहेमद।
2. हिन्दी साहित्य में आदिवासी एवं स्त्री विमर्श - डॉ. सविता चौधरी।
3. आदिवासी साहित्य विविध आयाम - संपादक. डॉ. रमेश सम्भाजी कुरे, डॉ. मालती घोडोपंत शिंदे।
4. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी - सं. रमणिका गुप्ता।
5. मराठी साहित्य : परिदृश्य - चंद्रकांत बंदिवडेकर।
6. मराठी साहित्य और संस्कृति - डॉ. पंडित बन्ने।

Model Question Paper Sets

SGOU

Model Question Paper

Set - 01

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

QP CODE: ……… Reg. No : ……….................

Name : …………………...

FOURTH SEMESTER BA HINDI LANGUAGE AND LITERATURE EXAMINATION

DISCIPLINE SPECIFIC ELECTIVE COURSE

B21HD02DE - हिन्दी साहित्य में आदिवासी और दलित विमर्श

(CBCS - UG)

2022-23 - Admission Onwards

Time:3 Hours Max Marks: 70

SECTION - A

किन्हीं दस प्रश्नों के उत्तर एक या दो शब्दों में लिखिए।

1. 'दलितों का मसीहा' नाम से विख्यात कौन हैं?
2. बी.आर. अम्बेडकर ने किस वर्ष बौद्ध धर्म अपनाने का फैसला किया?
3. भारत का सबसे बडा आदिवासी समूह कौन-सा है?
4. मुण्डा विद्रोह का नेतृत्व किसने किया?
5. ओम प्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा का नाम लिखिए?
6. अक्करमाशी का हिन्दी अनुवाद किसने किया?
7. दलित ब्रह्मण किसका कहानी-संग्रह है?
8. ओमप्रकाश वाल्मीकि का प्रथम कहानी संग्रह कौन-सा है?
9. मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा का नाम लिखिए?
10. जयप्रकाश कर्दम के पहले उपन्यास का नाम लिखिए?
11. 'सुनो ब्राह्मण' कविता का प्रकाशन वर्ष कब है?
12. 'नीला आकाश' किसका काव्य-संग्रह है?
13. ओमप्रकाश वाल्मीकि का पहला कविता-संग्रह का नाम लिखिए?
14. बाहरू सोणवाणे मूलतः किस भाषा के कवि हैं?
15. निर्मला पुतुल मूलतः किस भाषा की कवियत्रि हैं? (1x10=10)

SECTION -B

किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर दो या दो से अधिक वाक्यों में लिखिए।

16. दलित शब्द का अर्थ क्या है?
17. दलित विमर्श से तात्पर्य क्या है?
18. आदिवासी समुदायों के कुछ नाम लिखिए ?
19. दलित आत्मकथाओं का लक्ष्य क्या है?
20. 'तलाश' कहानी के लेखक कौन हैं?
21. 'दलित ब्रह्मण' कहानी के पात्रों' का नाम लिखिए?
22. 'सुनो ब्राहमण' कविता-संग्रह में कितनी कविताएँ संकलित है?
23. 'जाती की बू' कविता की विशेषताएँ लिखिए?
24. निर्मला पुतुल की रचनाएं लिखिए?
25. प्रमुख आदिवासी कवियों के नाम लिखिए? (2 x 5 =10)

SECTION -C

किन्हीं छ:प्रश्नों के उत्तर एक परिच्छेद में लिखिए।

26. दलित साहित्य में अम्बेडकर के योगदान पर टिपणी लिखिए?
27. दलित साहित्य की भाषा पर टिपणी लिखिए?
28. पुरखा साहित्य क्या है?
29. कोल विद्रोह पर टिपणी लिखिए?
30. दलित आत्मकथाओं की भाषा पर विचार प्रकट कीजिए?
31. हिन्दी दलित आत्मकथा पर आलेख तैयार कीजिए?
32. 'आवाजें' शीर्षक कहानी की सार्थकता पर प्रकाश डालिए?
33. 'सलाम' कहानी की समस्या पर विचार प्रकट कीजिए?
34. ओमप्रकाश वाल्मीकी के प्रतिरोधी स्वर पर टिपणी लिखिए?
35. 'जाती की बू' कविता में अभिव्यक्त दलित जीवन पर टिपणी लिखिए?
36. 'स्टेज' कविता पर टिपणी लिखिए?
37. आदिवासी कविता के बारे में टिपणी लिखिए? (5 x 6 =30)

SECTION -D

किन्हीं दो प्रश्नों के उत्तर 200 शब्दों के अन्दर लिखिए।

38. दलित साहित्य के उद्देश्य पर विचार प्रकट कीजिए?
39. विविध आदिवासी आन्दोलनों पर चर्चा कीजिए?
40. असंगघोष की कविता में चित्रित दलित जीवन विषय पर टिपणी लिखिए?
41. निर्मला पुतुल की कविताओं में चित्रित आदिवासी जीवन पर आलेख लिखिए? (10 x 2 =20)

Model Question Paper

Set - 02

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

QP CODE: ……… Reg. No : ……….................

Name : ………………....

FOURTH SEMESTER BA HINDI LANGUAGE AND LITERATURE EXAMINATION

DISCIPLINE SPECIFIC ELECTIVE COURSE

B21HD02DE - हिन्दी साहित्य में आदिवासी और दलित विमर्श

(CBCS - UG)

2022-23 - Admission Onwards

Time:3 Hours Max Marks: 70

SECTION - A

किन्हीं दस प्रश्नों के उत्तर एक या दो शब्दों में लिखिए।

1. शरणकुमार लिंबाले की आत्मकथा का नाम लिखिए?
2. 'आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह' किसकी रचना है?
3. किस दिन को विश्व आदिवासी दिवस मनाते हैं?
4. 'अक्करमाशी' का मतलब क्या है?
5. हिन्दी का प्रथम दलित आत्मकथा का नाम लिखिए?
6. 'घुसपैठिये' का प्रकाशन वर्ष कब है?
7. 'हैलो कामरेड' मोहनदास नैमिशराय के किस विधा की रचना है?
8. 'तलाश' कहानी के लेखक कौन हैं?
9. 'अछूत की शिकायत' कविता का प्रकाशन वर्ष?
10. 'बागी' किसका उपनाम है?
11. 'छप्पर फाड़ कर देना' किसकी कविता है?
12. 'नगाडे की तरह बजते हैं शब्द' किसकी रचना है?
13. हिन्दी का प्रथम आदिवासी काव्य संग्रह 'प्रलाप' का प्राकाशन वर्ष?
14. 'स्टेज' किसकी रचना है?
15. भारतीय संविधान में 'अनुसूचित जाति' शब्द किस केलिए प्रयुक्त हैं? (1x10=10)

SECTION -B

किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर दो या दो से अधिक वाक्यों में लिखिए।

16. दलित साहित्य से तात्पर्य क्या है?
17. दलित साहित्य को 'लिटरेचर आफ एक्शन' क्यों कहा जाता है?
18. 'विश्व हिन्दी आदिवासी दिवस' कब और क्यों मनाया जाता है?
19. आदिवासीयों की विशेषताएं लिखिए?
20. 'दलित ब्रहमण' कहानी की विशेषताएँ लिखिए?
21. जयप्रकाश कर्दम के कविता-संग्रहों का नाम लिखिए?
22. दलित कवि मलखान सिंह की रचनाओं का नाम लिखिए?
23. 'सुनोब्रास्मण' कविता में चित्रित शोषण पर टिप्पणी लिखिए?
24. आदिवासी कविता पर टिप्पणी लिखिए?
25. 'स्टेज' कविता के बारे में लिखिए? (2 x 5 =10)

SECTION -C

किन्हीं छःप्रश्नों के उत्तर एक परिच्छेद में लिखिए।

26. दलित का अर्थ एवं परिभाषा लिखिए।
27. दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र' से तात्पर्य क्या है?
28. आदिवासी साहित्य पर विचार प्रकट कीजिए?
29. आदिवासी समस्याओं पर टिप्पणी लिखिए?
30. दलित आत्मकथाओं के मूल स्वर पर विचार कीजिए?
31. 'अक्करमाशी' शीर्षक आत्मकथा के आधार पर दलित स्त्री जीवन पर टिप्पणी लिखिए?
32. 'सलाम' कहानी की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए?
33. 'तलाश' कहानी में अभिव्यक्त समस्या पर विचार कीजिए?
34. 'कबीर तुम जिन्दा हो' कविता के शीर्षक की सार्थकता पर विचार कीजिए?
35. आदिवासी कविता का सामान्य परिचय दीजिए?
36. 'स्टेश' कविता में अभिव्यक्त समस्या पर विचार कीजिए?
37. ओमप्रकाश वाल्मीकी की कविता में अभिव्यक्त प्रतिरोध पर विचार प्रकट कीजिए? (5 x 6 =30)

SECTION -D

किन्हीं दो प्रश्नों के उत्तर 200 शब्दों के अन्दर लिखिए।

38. 'अक्करमाशी' में चित्रित दलित जीवन पर टिप्पणी लिखिए?
39. 'तलाश' कहानी में चित्रित दलित समस्याओं पर प्रकाश डालिए?
40. 'ठाकुर की कुआं' में अभिव्यक्त दलित प्रतिरोध पर विचार प्रकट कीजिए?
41. निर्मला पुतुल की कविताओं में चित्रित आदिवासी समस्या पर टिप्पणी लिखिए? (10 x 2 =20)

Model Question Paper

Set - 01

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

QP CODE: ………   Reg. No : ………...............

Name : ………………...

FOURTH SEMESTER BA HINDI LANGUAGE AND LITERATURE EXAMINATION

DISCIPLINE CORE COURSE

B21HD04DC - हिन्दी पद्य साहित्य आदिकाल से आधुनिक काल तक

(CBCS - UG)

2022-23 - Admission Onwards

Time:3 Hours   Max Marks: 70

SECTION - A

किन्हीं दस प्रश्नों के उत्तर एक या दो शब्दों में लिखिए।

1. आदिकालीन श्रंगारी कवि कौन है?
2. कीर्तिलता किसकी रचना है?
3. पृथ्वीराज रासो ग्रन्थ किसने पूरा किया?
4. अष्टछाप के संस्थापक कौन है?
5. तुलसीदास के गुरु कौन है?
6. मीरा बाई किसको अपना पति मानती हैं?
7. रामनरेश त्रिपाठी की कविता-संग्रह का नाम लिखिए
8. मैथिलीशरण गुप्त ने कितनी महाकाव्यों की रचना की हैं?
9. पथिक किस विधा की रचना है?
10. महादेवी वर्मा के किस काव्य ग्रंथ को ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला है?
11. जयशंकर प्रसाद ने कितने उपन्यास लिखे है?
12. मुक्तिबोध का पूरा नाम क्या है?
13. 'कलगी बाजरे की' कविता किस काव्य संग्रह से लिया गया है?
14. 'पत्थर की बेंच' के कवि कौन हैं?
15. अरुण कमल की समकालीन प्रतिनिधि कविता कौन-सी है?   (10 x 1 =10)

SECTION -B

किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर दो या दो से अधिक वाक्यों में लिखिए।

16. विद्यापति कौन है?
17. 'पृथ्वीराज रासो' में अलंकारों का प्रयोग किया गया है।
18. कबीरदास के कृतित्व का परिचय दीजिए।
19. सूरदास के समय की सांस्कृतिक परिस्थितियाँ कैसे थे
20. प्रयोगवाद के आविर्भाव के मुख्य कारण क्या है?
21. रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सम्पादित पुस्तकों के नाम बताइए।
22. द्विवेदी-युग से पूर्व कविता के क्षेत्र में मुख्य विषय क्या थे?
23. महादेवी वर्मा की भाषा शैली कैसी थी?
24. पंत के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय दीजिए।
25. 'प्यासा कुआँ' शीर्षक कविता वर्तमान स्थिति में कैसे संबंध रखती है? (2 x 5 =10)

SECTION -C

किन्हीं छःप्रश्नों के उत्तर एक परिच्छेद में लिखिए।

26. पृथ्वीराज रासो के भाव पक्ष का परिचय दीजिए।
27. विद्यापति के बारे में संक्षिप्त परिचय दीजिए।
28. मीरा बाई की भक्ति भावना किस प्रकार की है?
29. कृष्ण के प्रति सूर की भक्ति कौन-सी है?
30. प्रकृति के सुकुमार कवि पंत पर विचार प्रकट कीजिए।
31. 'हम अनिकेतन' कविता पर टिप्पणी लिखिए।
32. 'फूल झर गए' कविता का संदेश लिखिए'।
33. मैथिलीशरण गुप्ता के राष्ट्रभावना पर चर्चा कीजिए।
34. 'पत्थर की बेंच' कविता में चित्रित प्रतीकों पर चर्चा कीजिए।
35. 'मिलन' खण्डकाव्य की विशेषताएँ लिखिए।
36. 'प्यासा कुआँ' में कवि कौन-सी विचार प्रकट करते है?
37. हिन्दी 'नई कविता' में मुक्तिबोध की जगह निर्धारित कीजिए। (5 x 6 =30)

SECTION -D

किन्हीं दो प्रश्नों के उत्तर 200 शब्दों के अन्दर लिखिए।

38. हिन्दी साहित्य में तुलसीदास का स्थान निर्धारित कीजिए।
39. विद्यापति पदावली की काव्यगत विशेषताएँ लिखिए।
40. मनुष्यता कविता में निहित संदेश पर टिप्पणी लिखिए।
41. जयशंकर प्रसाद के काव्यसौष्ठव पर विचार प्रकट कीजिए। (10 x 2 =20)

Model Question Paper

Set - 02

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

QP CODE: ....

Reg. No : ....

Name : ....

FOURTH SEMESTER BA HINDI LANGUAGE AND LITERATURE EXAMINATION

DISCIPLINE CORE COURSE

B21HD04DC - हिन्दी पद्य साहित्य आदिकाल से आधुनिक काल तक

(CBCS - UG)

2022-23 - Admission Onwards

Time:3 Hours Max Marks: 70

SECTION - A

किन्हीं दस प्रश्नों के उत्तर एक या दो शब्दों में लिखिए।

1. आदिकाल के पहला महाकाव्य का नाम बताइए।
2. पृथ्वीराज रासो किस प्रकार की रचना है?
3. मैथिल कोकिल नाम से जाने वाले कवि कौन है?
4. पृथ्वीराज रासो में किस भाषा का प्रयोग है?
5. कबीर की भाषा क्या है?
6. मीरा बाई की भक्ति भावना किस प्रकार की है?
7. सूरदास किस सम्प्रदाय का कवी है?
8. द्विवेदी-युगीन काव्य की भाषा कौन-सी थी?
9. पंत की किस रचना पर ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला है?
10. कवि सुमित्रानंदन पंत का यथार्थ नाम क्या है?
11. आधुनिक मीरा कौन है?
12. प्रयोगवाद के संस्थापक कवि कौन हैं?
13. कँकरीले मैदान का अर्थ क्या है?
14. धूमिल का वास्तविक नाम क्या है?
15. 'बेजगह' कविता का विषय क्या है? (1x10=10)

SECTION -B

किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर दो या दो से अधिक वाक्यों में लिखिए।

16. विद्यापति के जन्म कब और कहां है?
17. कबीरदास के भक्ति संबंधी दृष्टिकोण क्या है?
18. तुलसी दास की रचनाएँ लिखिए।
19. मुक्तिबोध का जन्म कब, कहाँ हुआ है?
20. चन्दबरदाई कौन है?
21. मैथिलीशरण गुप्त ने कितनी महाकाव्यों की रचना की हैं? नाम लिखिए।
22. रामनरेश त्रिपाठी का जन्म कब और कहाँ हुआ?
23. धूमिल के व्यक्तिगत जीवन का परिचय दीजिए।
24. सूर्यकांत त्रिपाठी का उपनाम क्या है?
25. छायावादोत्तर युग की सामाजिक स्थिति कैसी थी? (2 x 5 =10)

SECTION -C

किन्हीं छःप्रश्नों के उत्तर एक परिच्छेद में लिखिए।

26. विद्यापति पदावली की विशेषताएँ लिखिए।
27. पृथ्वीराज रासो के युद्ध वर्णन का दीजिए।
28. पृथ्वीराज रासो के कला पक्ष का परिचय दीजिए।
29. कबीर की गुरु महिमा संबंधी विचारों को प्रकट कीजिए।
30. पठित पद के आधार पर स्पष्ट कीजिए कि सूर एक अग्रणी कृष्ण भक्त कवि हैं?
31. 'मुक्ति' कविता में चित्रित पिता की ग्लानि और विवशता अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए।
32. 'प्रथम रश्मी' कविता पर टिप्पणी लिखिए।
33. हिन्दी 'नई कविता' में मुक्तिबोध की जगह निर्धारित कीजिए।
34. भारतीय स्त्री आज़ादी के अधिकारी है– इस पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
35. 'मिलन' खण्डकाव्य की विशेषताएँ लिखिए।
36. कवि और कविता पर टिप्पणी लिखें 'कँकरीले मैदान'
37. राष्ट्रकवि के रूप में रामधारी सिंह दिनकर। (5 x 6 =30)

SECTION -D

किन्हीं दो प्रश्नों के उत्तर 200 शब्दों के अन्दर लिखिए।

38. पृथ्वीराज रासो की साहित्यक विशेषताएँ व्यक्त कीजिए।
39. 'मुरझाया फूल' नामक कविता के अनुसार महादेवी के छायावादी विचारों को स्पष्ट कीजिए।
40. रामनरेश त्रिपाठी की ख़व्ड कव्यों की विशेषता क्या है ?
41. समर्थन कीजिए कि मीरा बाई विरह की गयिका है। (10 x 2 =20)

സർവ്വകലാശാലാഗീതം

വിദ്യയാൽ സ്വതന്ത്രരാകണം
വിശ്വപൗരരായി മാറണം
ഗ്രഹപ്രസാദമായ് വിളങ്ങണം
ഗുരുപ്രകാശമേ നയിക്കണേ

കൂരിരുട്ടിൽ നിന്നു ഞങ്ങളെ
സൂര്യവീഥിയിൽ തെളിക്കണം
സ്നേഹദീപ്തിയായ് വിളങ്ങണം
നീതിവൈജയന്തി പാറണം

ശാസ്ത്രവ്യാപ്തിയെന്നുമേകണം
ജാതിഭേദമാകെ മാറണം
ബോധരശ്മിയിൽ തിളങ്ങുവാൻ
ജ്ഞാനകേന്ദ്രമേ ജ്വലിക്കണേ

കുരീപ്പുഴ ശ്രീകുമാർ

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Regional Centres

Kozhikode
Govt. Arts and Science College
Meenchantha, Kozhikode,
Kerala, Pin: 673002
Ph: 04952920228
email: rckdirector@sgou.ac.in

Thalassery
Govt. Brennen College
Dharmadam, Thalassery,
Kannur, Pin: 670106
Ph: 04902990494
email: rctdirector@sgou.ac.in

Tripunithura
Govt. College
Tripunithura, Ernakulam,
Kerala, Pin: 682301
Ph: 04842927436
email: rcedirector@sgou.ac.in

Pattambi
Sree Neelakanta Govt. Sanskrit College
Pattambi, Palakkad,
Kerala, Pin: 679303
Ph: 04662912009
email: rcpdirector@sgou.ac.in

हिन्दी साहित्य में आदिवासी और दलित विमर्श

COURSE CODE: B21HD02DE

Sreenarayanaguru Open University
Kollam, Kerala Pin- 691601, email: info@sgou.ac.in, www.sgou.ac.in Ph: +91 474 2966841

ISBN 978-81-970238-0-4
9 788197 023804